FOREWORD

I have pleasure in writing the foreword for this excellent book of my friend Shri Bhagwati Prasad. He is a careful and keen Student of the modern knowledge on the science of nutrition and maintenance of good health.

We are extremely short of food. Our country and Pakistan is inhabited by one-fifth of humanity but we produce only one-tenth of cereals turned out by the cultivators of the world. The world production of cereals stands today at 600 million tons per annum and if this amount is equitably distributed amongst all human beings, each one of us could have 3400 calories per day from cereals alone. Unfortunately we do not live in one world and being poor, the powerful nations do not care to help us. Hence our people are half fed. We must learn how to eat a fair meal from the insufficient amount of cereals available.

This book also deals with the value of food materials other than cereals and if more attention is paid to all kinds of vegetables that are easily grown we can have a balanced and healthy diet.

The writer has taken pains and has collected accurate data and information about food and nutrition and has presented the matter very well in this book, which is sure to be very useful for our country men and women.

Chemistry Department
Allahabad University
26-4-50.

N. R. Dhar

प्रथम संस्करण की भूमिका से—

"अब मैं अपने इतने दिनों के अनुभव के आधार पर कह सकता हूँ कि आहार और संयम स्वास्थ्य की दो "सुनहरी कुंजियाँ" हैं। औषधि केवल एक सहारे की लकड़ी है। और तभी तक कुछ उपयोगी हो सकती है जब तक कमजोर टाँगों की स्थानापन्न न बनाकर केवल उनकी सहायक रहे।

औषधि का अधिक आश्रय मनुष्य को धन, सहन-शक्ति, आत्म-विश्वास और विचार-बल हीन बना देता है। जहाँ मनुष्य ने रोग का कारण अपने को छोड़ कर ईश्वर को समझा और उसके निवारण का उपाय डाक्टर के हाथ में समझा वहाँ उसने पुरुषार्थ को हाथ से गँवाया और अकथनीय दुर्दशा अपने सर पर लादी, बल्कि "जिन्दा दर गोर" हो गया। और यदि कारण अपने को और उपाय अपने हाथ में समझ कर केवल अपनी अयोग्यता भर सहायता डाक्टर से चाही तो बिना विशेष हानि के सुधर गया। अपनी उक्त राय के समर्थन में निम्नलिखित उक्तियाँ और लिखूँगा :—

रोग दो प्रकार के होते हैं, एक तो वे हैं जो रहन-सहन के कुसंयमों तथा खान-पान की त्रुटियों के कारण पैदा हो जाते हैं, जैसे कब्ज, मन्दाग्नि, मधुमेह, पाण्डु रोग, स्कर्वी (इसमें मसूढ़े मवाद देने लगते हैं), रिकेट (इसमें हड्डियाँ टेढ़ी और लुचलुची

हो जाती हैं) आदि, और ये कालान्तर में शरीर के अवयवों को और भी दुर्बल कर अधिक भयानक रूप धारण कर लेते और अन्य अनेकों रोग पैदा कर देते हैं। दूसरे वे जो बाहर से आते हैं, जैसे मलेरिया, मोतीझरा, राजयक्ष्मा, विषूचिका, चेचक, कोढ़ आदि। अब इनमें से प्रथम श्रेणी के रोग तो शायद इन विशेष अवस्थाओं को छोड़कर जब कि वे बहुत बढ़ गये हों, केवल खान-पान तथा रहन-सहन के संयम सँभालने से ही ठीक हो जाते हैं, और दूसरी श्रेणी के रोगों में भी संयम का महत्वपूर्ण स्थान है, विशेषकर राजयक्ष्मा, मलेरिया, कोढ़ आदि में। क्योंकि इनका आना न आना तथा साध्य, कष्ट-साध्य, या असाध्य हो जाना बहुत कुछ शारीरिक स्वास्थ्य पर निर्भर है जो उत्तम भोजन तथा सुसंयमित जीवन पर निर्भर है। औषधि वहीं सहायता करती है जहाँ इन रोगकारक त्रुटियों की पूर्ती तथा बाहरी विष का मुकाबिला खान-पान तथा रहन सहन संभालने से नहीं हो सकता, अथवा उस समय तक ठहरने की शक्ति नहीं है जब तक में आहार इन्हें पूरा कर सके। परन्तु जहाँ मनुष्य ने कारण को दूर करने की अपेक्षा पेट को औषधालय बनाने की चेष्टा की वहीं रोग घटने की जगह उल्टा बढ़ने लगा या एक स्थान या रूप से दूसरे स्थान या रूप में बदल गया। इसके अतिरिक्त रोग का आधिपत्य भी मनुष्य के मन पर हो जाता है जिसके कारण शारीरिक रोग के वेग के दुगने वेग से भय और भ्रम का रोग बढ़ता है जो निश्चय ही मृत्यु को निकट बुला देता है। अतः मेरी समझ में पहले अपने खान-पान को सुधारने तथा विचार

बल लगाने पर भी यदि रोग की वृद्धि में रुकावट न पड़े तब डाक्टर की सहायता का विचार करना चाहिए, पहले नहीं। साधारण रोग तो इन उपचारों के सामने ठहर ही नहीं सकते। यही कारण है कि अमीरों की अपेक्षा गरीब कम रोगी होते हैं और अधिक सहन-शक्ति रखते हैं।"

द्वितीय संस्करण की भूमिका

यह प्रसन्नता की बात है कि इस पुस्तक का द्वितीय संस्करण एक ऐसे समय में प्रकाशित हो रहा है जब कि देश में खाद्य पदार्थों की समस्या ने अद्वितीय महत्व प्राप्त कर लिया है। एक महान् संसार-युद्ध के पश्चात की कठिनाइयों को देश के बटवारे ने और भी पेचीदा कर दिया है। एक ओर जन-संख्या बढ़ती जा रही है और दूसरी ओर पैदावार के लिये भूमि तथा अन्य साधन घट गये हैं। वर्तमान दशा यह है कि देश का औसत नागरिक संतुलित भोजन की कौन कहे पेट भर अन्न भी नहीं पाता। सब से हानि-कारक प्रभाव इसका हमारे नवयुवक वर्ग पर पड़ रहा है। अभी हाल में उत्तर प्रदेश की सरकार ने बदायूं और गोरखपूर के स्कूलों के विद्यार्थियों के आहार की पौष्टिकता की जांच कराकर देखा कि उनका भोजन आवश्यकता से कम है। स्वतंत्र देश के महान् उत्तरदायित्व का भार वह कैसे उठा सकेंगे विचारणीय प्रश्न है।

इस परिस्थित के सुलझाने का पहला उपाय यह है कि हमारे वर्तमान साधनों का पूरा पूरा उपयोग हो। जनता में इस विषय का प्रचार हो कि उत्तम और संतुलित भोजन क्या है और अपनी आय के अन्दर प्रत्येक व्यक्ति उसे कैसे प्राप्त कर सकता है। स्त्री समाज में इस ज्ञान के प्रचार की अत्यधिक आवश्यकता है क्योंकि परिवार का पोषण और स्वस्थ नागरिकों का पालन मुख्यतः उनका ही क्षेत्र है। एक अंग्रेजी कहावत है, Food properly chosen, properly cooked is half the battle of life अर्थात् उचित रूप से चुना हुआ और उचित रूप से पकाया हुआ भोजन आधा

जीवन संग्राम है। भारतवर्ष में व्यक्ति, परिवार और राष्ट्र की आधी समस्या यही है।

इसी दृष्टि से पुस्तक को व्यावहारिक बनाने के लिये वर्तमान संस्करण में यथा स्थान काफ़ी परिवर्तन तथा परिवर्धन कर दिया गया है। अनेक नये आंकड़े तथा चित्र बढ़ा दिये गये हैं। संतुलित भोजन सम्बन्धी परिच्छेद में बच्चों तथा युवानों के लिये यथोचित सुझाव तथा आंकड़े बढ़ा दिये गये हैं। मुझे आशा है कि इस रूप में पुस्तक घर-गृहस्थों तथा विद्यार्थियों दोनों के लिये अधिक उपयोगी प्रमाणित होगी।

अन्त में मैं उन लेखकों और प्रकाशकों के प्रति जिनकी पुस्तकों से मैंने इस पुस्तक के लिखने में सहायता पाई है, और जिन्होंने अपने चित्र इसमें प्रकाशित करने की स्वीकृति दी है, हृदय से कृतज्ञता प्रगट करना चाहता हूँ। मैं इलाहाबाद यूनीवर्सिटी के विज्ञानाचार्य श्रीयुत डाक्टर एन० आर० धर का विशेष आभार मानता हूँ जिन्होंने अपना बहुमूल्य समय निकाल कर इस पुस्तक को प्राक्कथन लिखने का कष्ट किया है।

पुस्तक में छापे की कुछ भूलें रह गई हैं। पृष्ठ १५ के आँकड़ों में पानी ६१% की जगह ६·१% छप गया है तथा प्रोटीन १८% की जगह १·८% छप गया है। ऐसी और भी भूले रह गई होंगी जो अभी निगाह में नहीं आईं। आशा है पाठक-पाठिकाएं उन्हें सुधार कर पढ़ेंगे।

कटरा इलाहाबाद
ता० २६-९-५०

भगवती प्रसाद

विषय-सूची

विषय पृष्ठ

भाग ३

भाग ४

भाग ५

१—आहार का महत्त्व

मनुष्य का शरीर हाड़-मांस का एक अद्भुत यन्त्र है, जिसके बनाने की सामग्री मुख्यतः भोजन से और थोड़ी बहुत जल से पहुँचती है और जल, वायु और प्रकाश इन तीन की सहायता से यह शरीर के तत्वों का रूप धारण कर शरीर को उन्नति देती है। इसी उन्नतिशील अवस्था को स्वास्थ्य कहते हैं। परन्तु यदि भोजन, तथा जल में उपयोगी अंश का अभाव हुआ अथवा उनके विकृत होने या जल, वायु, या प्रकाश के दूषित होने के कारण शरीर में इस सामग्री के ग्रहण करने की शक्ति न रही तो शरीर अवनति करने लगता है। इसी को अस्वस्थता कहते हैं। और यह एक मामूली बात है कि ऐसे शरीर में रोगों का सामना करने की शक्ति नहीं रहती। अतएव स्वास्थ्य चाहने वालों का इन सबके उपयोगी अंशों तथा उनके शरीरोपयोगी अवस्था के सम्बन्ध में पूरी जानकारी प्राप्त करना मुख्य कर्तव्य है।

प्राचीन काल में साधारण आदमियों को इस विषय के अध्ययन की कोई जरूरत न थी क्योंकि उस समय के लोग प्राकृतिक पदार्थों पर जीवन व्यतीत करते थे, देहात की खुली हवा और रोशनी में

रहते थे—क्योंकि उस समय इतने घने शहर ही न थे—जांत का पिसा आटा खाते थे, घर का या अधिक से अधिक गाँव का हाथ का कुटा चावल खाते थे, घर का घी, दूध, मक्खन खाते थे, देहाती पांस की तरकारियाँ खाते थे, मिठास के लिये गुड़, शक्कर या हाथ की बनी चीनी काम में लाते थे, प्रति दिन ताज़ी नीम या बबूल की दातून से दाँत साफ करते थे और ब्रह्मचर्य का पालन करते हुये खुले स्थानों में जीवन व्यतीत करते थे। बस सौ बर्ष की आयु प्राप्त करने के लिये और चाहिये क्या? अब भी स्वास्थ्य, पौरुष, दीर्घ आयु, और बुढ़ापे में भी स्वस्थ अंग रखने वालों का उदाहरण देखना हो तो उन मनुष्यों तथा जातियों में देखे जा सकते हैं जिनको रहन-सहन और खान-पान प्रकृति के अनुकूल हैं, और जिनके स्वाद ने स्वास्थ्य की आवश्यकताओं पर अभी विजय नहीं पायी है।

परन्तु आजकल की दशा भिन्न है। वर्तमान सभ्यता ने वर्तमान समाज को जीवन के सरल मार्ग से हटा दिया है। अहार तथा मिल कारखानों में बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध पैदा कर दिया है। जनता के स्वास्थ्य पर पूंजीपतियों के स्वार्थ को प्रधानता दे दिया है और लोगों को तेज़ चाल की मिलों का पिसा आटा, मिलों का कुटा चावल, कारखानों की बनी सफेद चीनी, नक़ली घी, मिलावटदार तेल, शहर के पांस की फल तरकारियाँ, तथा डब्बों में मुहर छाप से बन्द अन्य अनेकों, सालों पुराने, पदार्थों के खाने पर मजबूर कर दिया है, और परिणाम-स्वरूप उनके स्वाद और रुचि को भी बदल दिया है। अतः स्वभावतः आहार के स्वाद और सूरत

के सामने उसकी पोषण-शक्ति गौण हो गई है। बल्कि बने को भी बिगाड़ कर खाना सभ्यता में शामिल हो गया है। शहरों की घनी बस्तियों में शुद्ध वायु और सूर्य-प्रकाश भी आवश्यकता भर नहीं मिल पाते। परिणाम यह है कि रोग, रोगी और डाक्टरों की दिनों दिन वृद्धि होती जाती है। क़ब्ज़, मन्दाग्नि, प्रमेह आदि रोगों ने यहाँ घर सा कर रखा है। राजयक्ष्मा और बालमृत्यु दिनोंदिन बढ़ती जाती है, और लोगों की जीवन-शक्ति (Vitality) और औसत जीवन इतना कम हो गया है कि सारी जाति नाकारी सी हो गई है। "लीडर" पत्र के १३ फरवरी सन् १९३२ के अङ्क में राजयक्ष्मा (तपेदिक़) रोग के विशेषज्ञ, श्रीयुत डाक्टर माठू की विज्ञप्ति प्रकाशित हुई थी, जिसमें वे लिखते हैं, "यूरोप, अमरीका आदि देशों में क्षय रोग धीरे-धीरे घटता जाता है परन्तु भारतवर्ष में बढ़ता जाता है। मेरा अनुमान है कि यहाँ हर साल दस लाख मनुष्य इस रोग से मरते हैं। और भारतवासियों का औसत जीवन भी २५ वर्ष से घटकर २२ ही वर्ष रह गया है। इसके विपरीत न्युज़ीलैण्ड में ६५ वर्ष हैं, इङ्गलैंड में ४९ वर्ष से बढ़कर ५० वर्ष हो गया है, और अमरीका में ५६ से बढ़कर ५८ वर्ष हो गया है। लोगों के जीवन-शक्ति (Vitality) की कमी जो राजयक्ष्मा का एक मात्र कारण है कुपथ्य भोजन, गन्दे घर और पड़ोस, और सामाजिक कुरीतियाँ, और कुसंयमी जीवन के परिणाम हैं जो जाति में पतन का क्रम आरम्भ कर देते हैं और पीढ़ी दर पीढ़ी जारी रखते हैं। हमें यह बात भली भाँति जान लेना चाहिये कि

राजयक्ष्मा का आरम्भ लड़कपन ही में होता है और विशेष कर भारतवर्ष में। क्योंकि वहाँ बहुधा बच्चों का आहार ठीक नहीं होता और वे पर्याप्त मात्रा में दूध नहीं पाते जो उनका मुख्य भोजन है। मेरी राय में राजयक्ष्मा के रोकने के उपाय दो हैं। प्रथम यह कि लोगों को और विशेषकर बच्चों को उत्तम भोजन, जिसमें दूध तथा अन्य पौष्टिक पदार्थ काफ़ी हों दिये जाने चाहिये। दूसरे यह कि रहन-सहन की सफ़ाई और वैज्ञानिक आहार का प्रचार होना चाहिये।" अर्थात् आहार के अतिरिक्त संयम भी मनुष्य शरीर को स्वस्थ और रोग रहित रखने का एक महत्वपूर्ण साधन है और आहार का मुख्य सहायक है।

अमेरिका के प्रोफ़ेसर मेककालम और साइमण्ड अपनी पुस्तक "दि न्युअर नालेज आफ न्यूट्रिशन" में लिखते हैं—"बहुत से लोगों को इसमें सन्देह है कि क्षयरोग आहार की खराबी से होता है। इसके अनेक प्रमाण हैं कि इन दोनों में बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। अनुभव से भी पता चलता है कि उत्तम भोजन की अपेक्षा कोई भी अन्य उपाय इस रोग के दूर करने का नहीं है। अब यदि उत्तम आहार से आया हुआ रोग अच्छा हो जाता है तो यह कहना कि रोग से बचने के लिये उत्तम आहार कम महत्त्व रखता है एक भूल होगी। लेब्रेडर और न्युफाउण्डलैण्ड में राजयक्ष्मा का बड़ा जोर है। यद्यपि वहाँ के निवासी साल में लगभग ६ महीने घर से बाहर स्वास्थ्यवर्धक वायु में व्यतीत करते हैं और वहाँ के घर भी इतने फैले बने हैं और हवा इतनी तेज चला करती

है कि अन्दर के कपड़े हर समय हिला करते हैं परन्तु उनका आहार अवश्य खराब है। इससे सिद्ध है कि कुपथ्य भोजन, शुद्ध वायु की अपेक्षा राजयक्ष्मा का अधिक महत्वपूर्ण कारण है।"

आहार का महत्त्व इतने ही पर नहीं खतम हो जाता। पुराने जमाने से हमारा विश्वास चला आता है कि आदमी की लम्बाई चौड़ाई नसल पर निर्भर है। इसकी कमी-बढ़ती आदमी के वश की बात नहीं। परन्तु आजकल के आहार विशेषज्ञों ने अब यह ठीक तरह से साबित कर दिया है कि किसी हद तक तो यह बात ठीक है परन्तु बिल्कुल ठीक नहीं है। उत्तम भोजन और जल-वायु के सेवन से इसमें वृद्धि हो सकती है। इस सम्बन्ध में अमेरिका के वेसार कालेज के विद्यार्थियों पर उत्तम आहार का निम्नलिखित प्रभाव देखा गया।

सन् १६११ से सन् १६१५ अर्थात् ४ वर्ष तक जितनी लड़कियाँ २० वर्ष से कम अवस्था की दाखिल हुईं उनकी औसत ऊँचाई ६३ इंच और औसत वजन ११७ पौण्ड रहता था। परन्तु सन् १६२३ से १६२७ तक में दाखिल होने वाली कुछ कम ही उम्र की लड़कियों की औसत उँचाई ६५ इंच और औसत वजन १२४ पौंड पाया गया। इसका कारण यह मालूम हुआ कि अमेरिका में लड़ाई के बाद आहार में उन्नति हो गई है। ऐसी जाँच और कई जगहों पर भी की गई और यही परिणाम निकला।

अमेरिका में रहने वाले जापानी स्वयम् जापान में रहने वाले जापानियों से अधिक ऊँचे और तगड़े होते हैं। देखा गया

है कि एक ही माता-पिता की उस सन्तान में जो जापान ही में पैदा हुई और वहीं पली और उसमें जो जापान में पैदा होकर अमेरिका में आकर पली शरीर की लम्बाई-चौड़ाई की दृष्टि से बड़ा अन्तर है। अमेरिका निवासी अधिक लम्बे, चौड़े, और तगड़े होते हैं और इसका कारण नियमित व्यायाम तथा अमेरिका का उत्तम आहार है।

सर राबर्ट मैक्केरिसन ने जो दक्षिण भारत में स्थित कुनूर के सरकारी पुष्टिकारक भोजन की अन्वेषणशालाओं (गवर्नमेंट न्यूट्रिशनल रिसर्च लैबोरटरीज) के प्रमुख वैज्ञानिक थे, सन् १६३५ में जब कि वे विदा हो रहे थे भोजन के महत्त्व के सम्बन्ध में कहा था "मेरी चेष्टा सदैव यह रही कि मैं जान सकूँ कि बीमारियाँ कैसे होती हैं। विशेषकर यह कि सन्तुलित भोजन किस प्रकार शरीर को सब तरह स्वस्थ और सबल रखता है और असंतुलित भोजन उसे कैसे दुर्बल और रोगी कर देता है।"

"कुनूर में जहाँ मेरी प्रयोगशालायें स्वस्थ वातावरण में काफी अच्छी हालत में हैं मैं। करीब एक हजार चूहे अपने प्रयोगों के लिये रखता हूँ। ये बड़े हवादार और प्रकाशदार पिंजड़ों में रहते हैं। इन चूहों को वही भोजन दिया जाता है जो उत्तरी भारत की वह जातियाँ खाती हैं जिनमें शारीरिक गठन के कई श्रेष्ठ उदाहरण पाये जाते हैं। इनका आहार मक्खन चुपड़ी रोटियाँ, दाल, अंकुरे हुए चने, कच्चा दूध, ताजे हरे गाजर, करमकल्ले आदि शाक हैं और सप्ताह में एक बार कच्चा माँस भी दिया

जाता है। पीने और धोने के लिये काफी पानी दिया जाता है। अब चार वर्षों से इन चूहों को कोई रोग नहीं हुआ। बड़ों की स्वाभाविक मृत्यु नहीं हुई। जो हुई वह आकस्मिक घटनाओं के कारण हुई। बच्चों में भी कोई नहीं मरे। रोगों को तो जैसे बहिष्कृत कर दिया गया है और वह केवल तीन बातों की सावधानी के कारण—सफाई, आराम और संतुलित भोजन।

"मेरी दूसरी प्रयोगशाला में भी पिंजड़े, सफाई और रोशनी का उसी प्रकार ध्यान रक्खा जाता है लेकिन वहाँ भोजन ऐसा दिया जाता है जिसमें एक न एक त्रुटि रहती है जैसे किसी में विटामिन की कमी हो तो किसी में लवण की और किसी में दोनों की। ये उसी नमूने पर रखे जाते हैं जैसा भोजन भारत के साधारण लोग अधिक व्यवहार में लाते हैं। गत चार वर्षों में करीब तीन हजार से अधिक इस प्रकार के असंतुलित भोजन करने वाले चूहों की परीक्षा उनके मृत्यु के बाद की गई है और नीचे लिखे रोग उनमें पाये गये हैं—निमोनिया तथा अन्य फेफड़े के रोग, नाक और उसकी नली के रोग, कान के रोग और उनमें पीव भरने की बीमारी, गदूद (Adenoids), नेत्र रोग जो अन्धापन तक ला सकते हैं, उदर या आंत के रोग जैसे पेट में सूजन, आंत में घाव, पथरी की बीमारी, बच्चे की अकाल मृत्यु, अकाल प्रसव या उदर में ही मृत्यु, चर्मरोग, बालगिरना फोड़ा, फुंसी, घाव, पाण्डु रोग, जलन्धर, गिल्टियाँ निकलना, गण्ड-माला, गठिया, नसों में दर्द, बेरीबेरी और हृदय रोग।"

"जब सुअरों को असंतुलित भोजन दिया गया तो उन्हें शरीर में चकत्ते पड़ जाने की बीमारी, दाँत और मसूढ़े की बीमारी, हड्डियों का मुलायम और कमजोर हो जाना, पेट के रोग जैसे शूल आदि भी होने लगे।"

"इसके अतिरिक्त अस्वस्थ भोजन करने वाले चूहे स्नायु-संस्थान की कमजोरी के कारण अक्सर घबड़ाये हुये उग्र, चिड़चिड़े और क्रोधी होते थे और यदि एक समूह में रहते तो अक्सर ताकतवर चूहे कमजोर चूहों को अपना शिकार बना लेते थे। परन्तु स्वस्थ भोजन करने वाले शांत खुशमिजाज और सहज ही में वश करने योग्य रहते थे।"

"यदि पशुओं को ऊपर लिखे तरीके से रोग रहित रखा जा सकता है तो निश्चय ही मनुष्यों को भी उसी प्रकार निरोग रखा जा सकता है। जब मैं अपुष्टिकारक भोजन करने वाले बच्चों में वही बीमारियाँ पाता हूँ जो मेरे अस्वस्थ भोजन करने वाले चूहों में पाये गये हैं, तो मैं यह निश्चयपूर्वक कहता हूँ कि बच्चों की बीमारियाँ भोजन की त्रुटि के कारण ही हैं।"

२—आहार का प्रयोजन

जैसे छोटी-छोटी कोठरियों से मिलकर बर्र या मधुमक्खी का छत्ता बनता है अथवा बालू या मिट्टी के नन्हें-नन्हें कणों से ईंट या मिट्टी की विशाल दीवार बनती है वैसे ही नन्हीं-नन्हीं असंख्य सजीव कोठरियों से मिल कर मनुष्य का शरीर बना है। यह कोठरियाँ जिन्हें कोषाणु या सेल्स भी कहते हैं इतनी छोटी-छोटी होती हैं कि मनुष्य के साधारण नेत्र को बिना सूक्ष्मदर्शी यंत्र के दिखाई नहीं दे सकतीं।

जैसे कहा जा चुका है कि इन सेल्स के ज्ञान और समझ होती है। यह अपना-अपना काम समझते और उन्हें करते हैं बल्कि यों कहिये कि मनुष्य-शरीर का सारा व्यापार इन्हीं कोषाणुओं द्वारा हुआ करता है। और इन्हीं की सामुहिक वृद्धि को शरीर की बाढ़, इन्हीं की पुष्टि को शरीर की पुष्टि, इन्हीं की अवनति को शरीर की अवनति और क्षीणता को शरीर की दुर्बलता कहते हैं। अतः

जिन जिन तत्वों से यह सेल्स बनते अथवा क़ायम रहते हैं उन्हें शरीर के अन्दर पहुँचाना आहार का प्रथम प्रयोजन है।

इसके अतिरिक्त कोषणुओं से बने हुये इस शरीर में निरन्तर अनेकों व्यापार हुआ करते हैं। फेफड़ा वायु खींचा-फेंका करता है, पाकाशय खाना पचाया करता है, दिल धड़का करता है, रक्त दौड़ा करता है और शरीर की गर्मी लगभग ९८.४° बराबर बनी रहती है, इत्यादि; और शारीरिक परिश्रम जो किये जाते हैं वे ऊपर से। अतएव शरीर को शक्ति देना आहार का दूसरा प्रयोजन है।

आहार का प्रयोजन समझने के लिये शरीर की उपमा एक रेल के इञ्जन से भी दी जा सकती है। इञ्जन लोहे के बने हुये पुर्जों का एक ढाँचा है। साधारणतः उसमे चलने की शक्ति नहीं होती परन्तु यदि उसमें कोयला पानी भरकर आग जला दी जाय और भाप बनने लगे तो उसमें चलने की शक्ति आ जाती है। इसलिये ड्राइवर उसमें सदैव आग जलते रहने और भाप बनते रहने की योजना किया करता है अर्थात कोयला पानी डाला करता है और आग बुझने नहीं देता। इतना ही नहीं। निरन्तर काम करते रहने के कारण उसके जो भाग घिसा टूटा करते हैं उन के मरम्मत की सामग्री अर्थात कल पुर्जे भी बदला करता है। ठीक उसी प्रकार शरीर प्रोटीन और लवण के बने हुये अवयवों (अङ्गों) का एक ढाँचा है और प्रत्येक मनुष्य का काम उस

में काम करने की शक्ति पैदा करने की सामग्री और प्रतिदिन की क्षति या हानि (wear and tear) की पूर्ति के लिये सामग्री पहुँचाना है, जो दोनों आहार द्वारा प्राप्त होते हैं। अतएव हमें खाना केवल पेट भरने या स्वाद लेने के लिये नहीं वरन् शरीर के कोषाणुओं का मसाला—प्रोटीन और लवण—पहुँचाने और उस में शक्ति अर्थात् ताप उत्पन्न करने के लिये खाना चाहिये।

३—आहार के अंश

जिन तत्वों से हमारे शरीर के कोषाणु या सेल्स बने हैं वे २८ हैं। परन्तु उन में से निम्न-लिखित मुख्य हैं।

आक्सीजन	६२%
कार्बन	२१%
हाईड्रोजन	६%
नत्रजन	३%
केलशियम (चूना)	२%

फास्फोरस
पोटेशियम
सोडियम
गन्धक
आयोडीन
क्लोरीन
लोहा
तांबा
मेन्गीज
इत्यादि
} ३%

अपने आहार द्वारा इन्हीं तत्वों को पाकर एक सेर भर का बच्चा दो मन का आदमी बन जाता है और प्रतिदिन के परिश्रम से होने वाली क्षतियों को पूरा करता हुआ भी काफी समय तक उतना ही बना रहता है। इसलिये इन तत्वों को शरीर वर्धक तत्व कहते हैं। इन में से प्रथम चार के रासायनिक मिलावट को प्रोटीन या माँस वर्धक पदार्थ कहते हैं क्योंकि यह शरीर में मांस बढ़ाने का काम करते हैं। और शेष दस को खनिज लवण या लवणोत्पादक मौलिक कहते हैं। ये हड्डी, रक्त तथा शरीर के अन्य भागों के बनाने का काम करते हैं और रक्त के भीतर आहार को आक्सीजन के साथ मिलकर जलने में सहायता देते हैं।

मनुष्य के शरीर को प्रोटीन दो प्रकार का मिलता है। एक तो पशु शरीर से प्राप्त हुई चीजों से जैसे दूध, मांस, अण्डा से। इस प्रकार के प्रोटीन को पशु प्रोटीन कहते हैं। दूसरी प्रकार का प्रोटीन वह है जो वनस्पति से प्राप्त होता है जैसे अनाज तरकारी आदि से। ऐसी को वनस्पति प्रोटीन कहते हैं। खनिज पदार्थ भी दो प्रकार के होते हैं। एक तो शरीर में तेज़ाब पैदा करते हैं और दूसरे क्षार पैदा करते हैं। पहले को अम्लोत्पादक कहते हैं और दूसरे को क्षारोत्पादक।

उक्त दोनों शरीर वर्धक पदार्थ अर्थात् प्रोटीन और लवण

तो शरीर रूपी इंजन के पुर्जे बनाने वाले हुये। इन के अतिरिक्त तापोत्पादक पदार्थ भी होते हैं जिन्हें शक्तिवर्धक या ईंधन पदार्थ भी कहते हैं। इस ईंधन पदार्थ के भी दो भाग होते हैं एक कर्बोज जिसमें दो चीजें शामिल है, शर्करा (मीठा) और श्वेतसार (मांडी), और दूसरे वसा या चिकनाई। वसा भी दो प्रकार का होता है एक घी, मक्खन इत्यादि जो पशुओं से मिलता है और दूसरा तेल जो वनस्पति से मिलता है।

इन के अतिरिक्त जल एक तीसरा पदार्थ है और इन समस्त पदार्थों से अधिक और अधिक मात्रा में आवश्यक है।

इस प्रकार हमारे खाद्य पदार्थ में उपयोगी अवयव तीन होते हैं।

१. मांस और हाड़ वर्धक पदार्थ	१. प्रोटीन—पशु और वनस्पति २. खनिज पदार्थ—अम्लोत्पादक और क्षारोत्पादक
२. ईंधन या शक्तिवर्धक पदार्थ	३. वसा (चिकनाई)—पशु और वनस्पति ४. कर्बोज —शर्करा (मीठा) और श्वेतसार (मांडी),
३. जल,	

और उक्त अवयव साधारणतया निम्न लिखित अनुपात में पाये जाते हैं :—

पानी	६.१%
खनिज लवण	५.५%
प्रोटीन	१.८%
कर्बोज	०.१%
वसा	१५.४%

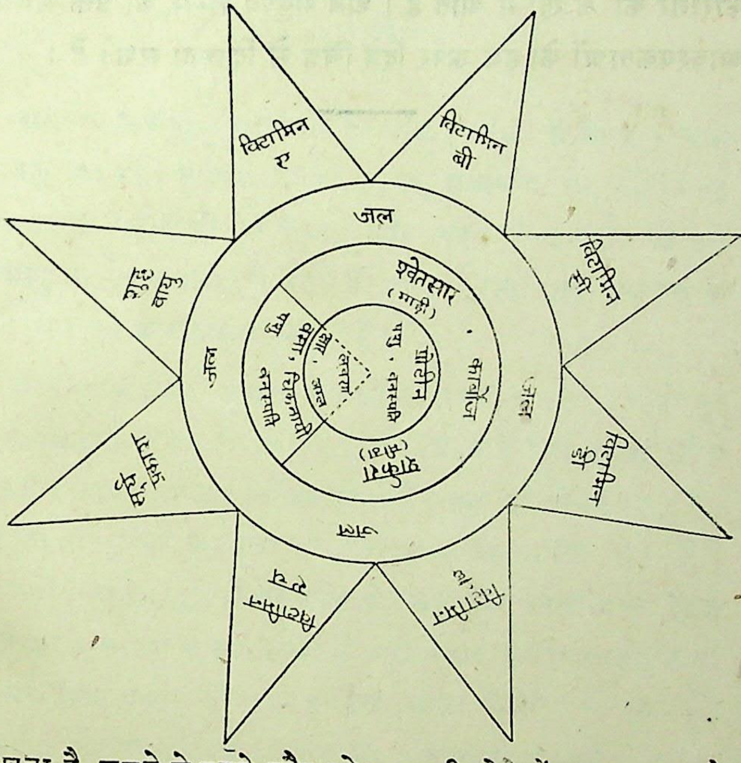
शरीर बनने और बढ़ने की उपमा डाक्टर मेकेरीसन ने घर बनने से भी दी है। घर बनवाने में पहले ईंट, पत्थर, लकड़ी आदि सामान की आवश्यकता होती है और फिर कारीगर जैसे राज, संगतराश, बढ़ई आदि की। जैसा मसाला हुआ या कारीगर हुये वैसा ही घर तैयार होता है। यदि कोई मसाला या किसी प्रकार का कारीगर ठीक न हुआ तो घर का उनसे सम्बन्ध रखने वाला भाग कमज़ोर रह जाता है और उसके कारण सारा का सारा घर कमज़ोर हो जाता है। बहुधा निरन्तर मरम्मत होते रहने पर भी सुधर नहीं पाता बल्कि शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। हमारे शरीर में मसाले का काम प्रोटीन, लवण, कर्बोज और वसा (चिकनाई) करते हैं। और कारीगरों का काम करने के लिये ईश्वर ने हमारे खाद्य पदार्थों में कुछ जीवितांश पैदा कर दिये हैं जिन्हें विटामिन कहते हैं। बिना इन विटामिनों के प्रोटीन, लवण आदि पदार्थ चाहे कितने ही उत्तम प्रकार के और कितने ही अधिक मात्रा में

क्यों न हों शरीर नहीं बना सकते जैसे बिना कारीगरों के ईंट, पत्थर, लकड़ी आदि पदार्थ चाहे वे कितनी ही अच्छे और अधिक क्यों न हो घर नहीं बना सकते।

घर बनाने वाले कारीगरों के समान यह विटामिन भी भिन्न भिन्न काम के लिये भिन्न भिन्न होते हैं। और जैसे बढ़ई लोहार के स्थान पर काम नहीं कर सकता, संगतराश राजगीर की जगह पर काम नहीं कर सकता वैसे ही एक विटामिन दूसरे विटामिन के स्थान पर काम नहीं कर सकता। परन्तु फिर भी जैसे बढ़ई की अयोग्यता से राजगीर के काम में बल पड़ जाता है, राजगीर की अयोग्यता के कारण छत के टपकने से सारा घर खराब जाता है और अन्य कारीगरों का भी काम बेकाम हो जाता है वैसे ही एक विटामिन की खराबी से दूसरे विटामिनों के काम में भी बल पड़ जाता है।

वैज्ञानिकों ने अभी तक ६ प्रकार के विटामिनों का पता लगाया है जिनको क्रमशः विटामिन ए, विटामिन बी, विटामिन सी, विटामिन डी, विटामिन इ और विटामिन एच, कहते हैं। इन में से विटामिन ए, हमारे आहार से वह अंश जिन से हमारे नेत्र, फेफड़े पाकाशय बनते और स्वस्थ रहते हैं खींच कर उन अंगों में पहुँचाता है, श्लेष्मक झिल्ली और त्वचा को मजबूत करता है, शरीर की वृद्धि में सहायता देता और रोगों के मुक़ाबिला करने की शक्ति देता है। विटामिन बी हमारे आहार से वह अंश जिनसे

हमारा मस्तिष्क, माँस पेशियाँ, नसें, हृदय और आंतों के पट्ठे बनने और मज़बूत होते हैं उन अङ्गों में पहुँचाता है। इसी प्रकार विटामिन सी रक्त को शुद्ध और रक्त की नालियों को मज़बूत



रखता है, मसूढ़े के पकने और चोट अच्छी होने में लाभ करता है। विटामिन डी दांत और हड्डियों का मसाला खींच कर उन्हें मज़-बूत बनाता है, विटामिन ई सन्तानोत्पादन शक्ति देता है, बिटामिन एच चर्म रोग (Psoriasis) दूर करता है और विटामिन के रक्त में जमने की शक्ति देता है और विटामिन पी नसों को पुष्ट करता है।

इन विटामिनों के अतिरिक्त सूर्य का प्रकाश शरीर बनाने में सबका मूल कारीगर है। और चूँकि यह वायु की उपस्थिति ही में काम कर सकता है इसलिये सूर्य का प्रकाश और वायु दो और कारीगर की श्रेणी में आते हैं। अब मनुष्य शरीर की उक्त समस्त आवश्यकताओं को हम ऊपर दिये चित्र से दिखला सकते हैं।

४—प्रोटीन

समस्त सजीव प्राणियों का मांस (मांस के सेल्स) चाहे वह पशु का हो, मनुष्य का हो, अथवा वनस्पति का, प्रोटीन या मांस-वर्धक पदार्थ ही से बनता और बढ़ता है। शरीर के नये कोषाणु या सेल्स इसी से बनते हैं और पुरानों की मरम्मत के लिये इसी की अवश्यकता पड़ती है।

प्रोटीन, नत्रजन, गन्धक, फासफोरस (स्फुर) आदि १८ तत्वों का जिन्हे एमाइनों एसिड (Amino-Acids) कहते हैं रासायनिक संमिश्रण है। इसकी बनावट विचित्र होती है। इस का प्रत्येक अणु १८ रंग विरंगी गुरियों के माला के तुल्य माना जा सकता है। जैसे अठारहों रंग की गुरियों को उलट फेर कर और उनकी मात्रा भिन्न भिन्न करके करोड़ों माला बनती हैं उसी प्रकार इन अठारहों तत्वों के भिन्न भिन्न प्रकार और भिन्न भिन्न मात्रा के योग से असंख्य प्रकार के प्रोटीन बनते हैं। या दूसरा उदाहरण लीजिये। प, ल, ट, तीन अक्षरों से पलट, पटल, लपट, लटप, टपल, टलप, ये ६ शब्द बनते हैं। यदि इन में पाइयाँ लगा दी जावें तो और कितने ही बनेंगे। वैसे ही १८ अक्षरों से करोड़ों शब्द बन सकते हैं और १८ रंग की गुरियों से करोड़ों प्रकार के माले अर्थात प्रोटीन बन सकते हैं।

पशु, पक्षी, वनस्पति आदि के प्रोटीन भिन्न भिन्न प्रकार के होते हैं। और इनमें भी प्रत्येक जाति के दूसरे से भिन्न। जैसे मनुष्य का बकरे से भिन्न और बकरे का मुर्गी से भिन्न, चौलाई का पालक से भिन्न और पालक का आलू से भिन्न। इसी प्रकार शरीर के भीतर के भिन्न भिन्न भागों का प्रोटीन भिन्न भिन्न प्रकार का होता है। जैसे पट्ठे के मांस के और फेफड़े के प्रोटीन एक दूसरे से भिन्न होते हैं। अर्थात् इन सब में प्रत्येक के माला की गुरियाँ (amino acids) और उन की मात्रा और क्रम निराले ढंग का होता है। इस लिये जो भी पदार्थ मनुष्य खाता है उस के प्रोटीन को अपने प्रोटीन में बदलने के लिये उस को उस के माला (प्रोटन अणु) को तोड़कर उन में से प्रत्येक प्रकार की पर्याप्त गुरियाँ (amino acids) लेकर अपने शरीर के माला के रूप में गूहना पड़ता है। और शेष गुरियाँ (तत्व) मल-मूत्र के साथ निकल जाती हैं। यदि किसी रंग की गुरियाँ (कोई तत्व) कम पड़ गईं तो शरीर का माला अर्थात् प्रोटीन भी ख़राब प्रकार का हो जाता है और यदि कोई बढ़ गईं तो वे मूत्र के साथ निकल जाती हैं।

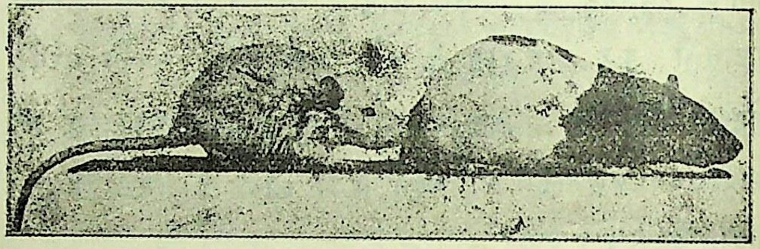
प्रोटीन दो प्रकार का होता है। (१) पशु प्रोटीन और (२) वनस्पति प्रोटीन। पशु पक्षी के मांस के प्रोटीन को पशु प्रोटीन कहते हैं और अनाज, तरकारी आदि के प्रोटीन को वनस्पति प्रोटीन। मनुष्य के शरीर का प्रोटीन पशु प्रोटीन और हरी पत्तियों के प्रोटीन, जैसे पालक आदि के प्रोटीन से मिलता-जुलता है। अर्थात् इन पदार्थों के प्रोटीन के अणुओं में वह सभी तत्व

जिन की अवश्यकता मनुष्य के प्रोटीन बनने के लिये पड़ती है लगभग ठीक उसी मात्रा में उपस्थित होते हैं। ऐसे प्रोटीन को जिसमें मनुष्य की आवश्यकता के समस्त तत्व आवश्यक अनुपात में उपस्थित हों **उत्तम प्रोटीन** कहते हैं। अन्य वनस्पति प्रोटीन में कुछ तत्व होते हैं और कुछ नहीं। उनको **मध्यम प्रोटीन** कहते हैं। जिन प्रोटीन अणुओं में मनुष्य-शरीर की आवश्यकता के तत्वों की बहुत कमी होती है उनको **निकृष्ट प्रोटीन** कहते हैं।

उक्त विवेचन से यह भी स्पष्ट है कि मध्यम अथवा निकृष्ट प्रकार का प्रोटीन सर्वथा व्यर्थ नहीं होता वरन् यदि उत्तम प्रोटीन का साथ पा जाय तो वह अपने गुणियों (तत्वों) की कमी सदृता पूरी करके उत्तम प्रोटीन के समान शरीरोपयोगी बन सकता है।

उत्तम प्रोटीन का बना हुआ शरीर उत्तम प्रकार का होता है, मध्यम का उससे खराब, और निकृष्ट का सर्वथा निकृष्ट। जैसे अच्छी मिट्टी या चिकनी मिट्टी की ईंट और अच्छी लकड़ी का घर बड़ा मजबूत और सुघड़ बनता है और जल्दी खराब नहीं होता। यदि किसी कारण उसके किसी भाग में कोई खराबी आ भी गई तो वह वहीं तक सीमित रहती है और उसकी मरम्मत शीघ्र और सस्ते में हो जाती है। परन्तु बलुही या लुनही मिट्टी या सेवड़ा ईंट और खराब लकड़ी का घर एक तो देखने ही में

भोंडा होता है और फिर इधर बना नहीं कि उस में घुन लगने लगा और आये दिन मरम्मत की आवश्यकता पड़ने लगी। बल्कि एक ओर मरम्मत होती जाती है और दूसरी ओर बिगड़ता जाता है।



इन दोनों चूहों में बड़े को उत्तम प्रकार का प्रोटीन खाने को दिया जाता था और छोटे को निकृष्ट प्रकार का प्रोटीन दिया जाता था। शरीर में अन्तर स्पष्ट है।

मनुष्य को, विशेष कर बचपन से लेकर २५ वर्ष की अवस्था तक उत्तम प्रोटीन की बड़ी आवश्यकता पड़ती है क्योंकि नये शरीर के बनने का यही समय है। यदि इस अवस्था में इसका अभाव हो गया तो शरीर ठिगना, ढीला, और लुचलुचा रह जाता है जो रोगों का सामना बिलकुल नहीं कर सकता और न कठिन परिश्रम सह सकता है और बुढ़ापा भी समय के पहले आ जाता है।

अमेरिका के प्रोफेसर शर्मन ने अपने प्रयोगों के आधार पर यह सिद्ध किया है कि शरीर की बाढ़ प्रोटीन की किस्म पर निर्भर है। प्रयोग चूहों पर किये थे। कुछ को उत्तम अन्न खिलाया

और कुछ को मध्यम और निकृष्ट। और जो जैसा अन्न पाते रहे उनका जीवन भी वैसा ही स्वस्थ, पुष्ट और दीर्घ रहा। और उनकी संतति भी उसी प्रकार की रही। ये प्रयोग नीचे दिये जाते हैं :—

	खराब अन्न वाले	अच्छे अन्न वाले
चूहे का वज़न ३० दिन बाद	२६८ माशा	३१५ माशा
पहला बच्चा कब हुआ	१५५ दिन में	११२ दिन में
कितने दिन तक बच्चे होते रहे	१८६ दिन तक	३२२ दिन तक
कितने बच्चे एक बार में हुये	६	१८
कुल वंश एक वर्ष में कितना बढ़ा	७७	३६८

अच्छे अन्न वालों की आयु भी प्र० श० १० बढ़ी।

इस से स्पष्ट है कि उत्तम अन्न अर्थात् उत्तम प्रकार के प्रोटीन वाले अन्न से उम्र ज्यादा हो गई, बच्चे ज्यादा संख्या में हुये, ज्यादा दिन तक हुये, कम समय में हुये और वंश भी पंचगुना बढ़ा।

इसी जाँच के लिये डाक्टर मान ने भी कुछ बच्चों पर प्रयोग किये। अन्न सब को एक ही दिया और इसके अलावा किसी को कुछ चीज दी और किसी को कुछ। फिर देखा कि जो बाढ़ दूध से होती है वह किसी से नहीं होती। अतः दूध का प्रोटीन सर्वोत्तम सिद्ध हुआ। प्रयोग निम्नलिखित हैं :—

अन्न	लड़कों की संख्या	एक बरस में उन्नति	
		वज़न में	ऊँचाई में
केवल अन्न	६१	३.८	१.८
अन्न + दूध	२१	७.०	४.६
„ + शक्कर	२०	५.०	२.०
„ + मक्खन	२६	६.३	२.२
„ + मार्गेरीन (नक़ली मक्खन)	१६	५-२	१.८
„ + दूध का छेना (केसीन)	३०	४.२	१.७

इस प्रयोग से प्रत्यक्ष है कि दूध से ऊँचाई और वज़न दोनों सबसे ज्यादा बढ़ते हैं।

इसी प्रकार कुत्तों और घोड़ों के शरीर में घाव करके और उन के आहार में प्रोटीन की मात्रा कम ज्यादा करके देखा गया है कि ज्यादा प्रोटीन से घाव शीघ्र भरते हैं और कम प्रोटीन से देर में। बड़े घावों में यह अन्तर साधारणतया ६-७ दिन का पड़ता है।

भारतवासियों के गिरते हुये स्वास्थ्य, डील-डौल और आयु, और बढ़ते हुये रोग और बाल और अकाल मृत्यु का बहुत कुछ कारण यही है कि उनके आहार में उत्तम प्रोटीन का अभाव है। डाक्टर मेक्केरीसन की राय में भारतवर्ष में हैजा, आमातिसार (आँव और दस्त), फसली ज्वर और कोढ़ के बढ़ने का कारण आहार में उत्तम प्रोटीन का अभाव है।

अपनी पुस्तक The Protein Element in Nutrition में मेक्के ने इस बात पर जोर दिया है कि शरीर की बाढ़, गठन, बल और रोगों के सामना करने की शक्ति प्रोटीन के क़िस्म पर निर्भर है। बल्कि मरदानगी, वीरता और युद्धप्रवृत्ति भी बहुत कुछ इसी पर निर्भर है। यह बात सिक्ख, राजपूत, पठान और महाराष्ट्र जातियों के आहार के प्रोटीन की तुलना बंगाली, मदरासी, कनाड़ी जातियों के आहार के प्रोटीन से करने से अथवा अपने ही यहाँ की ऊँची और नीची कही जाने वाली जातियों के भोजन और स्वास्थ्य की तुलना से बिलकुल सत्य जान पड़ती है।

उत्तम, मध्यम और निकृष्ट प्रोटीन वाले पदार्थों की तालिका निम्न लिखित है:—

उत्तम प्रोटीन वाले पदार्थ—दूध तथा दूध के अन्य पदार्थ जैसे दही, खोवा, छेना (फटे दूध की खुज्झी), मांस, मछली, अण्डा, हरी पत्तियों के शाक जैसे पालक, सलाद तथा अन्य शाकों की कोमल पत्तियाँ और गेहूँ का सूजी और चोकर का आटा।

इन सब में भी दूध का प्रोटीन सर्वश्रेष्ठ होता है और दूध में भी सर्वश्रेष्ठ माता के दूध का और फिर क्रमशः गाय और बकरी के दूध का। शाक, मांस और अण्डे का प्रोटीन दूध के प्रोटीन से हेठा होता है।

मध्यम प्रोटीन वाले पदार्थ—गेहूँ का बेछना (चोकरदार) आटा, मकरा (मडुआ), बजरा, जौ, कनादार चावल. दाल, चना,

मटर, सेम, गरीदार मेवे जैसे बदाम, मूँगफली, आलू, गाजर, शलजम, चुक़न्दर, साबूदाना, फल, तथा अन्य तरकारियाँ।

निकृष्ट प्रोटीन वाले पदार्थ—मैदा, मक्का, सफेद चावल।

प्रोटीन शून्य पदार्थ—गुड़, चीनी, तेल, घी।

द्वितीय और तृतीय श्रेणी के पदार्थों के साथ दूध के सेवन से उनकी पौष्टिकता बढ़ जाती है और पाचन में सरलता होती है। इसका कारण यह है कि दूध उनकी त्रुटियों को पूरा करता है। मक्का, चावल, बजरा आदि अन्नों के साथ दूध इसी कारण बड़ा उपयोगी माना जाता है। बल्कि खराब प्रोटीन वाले अन्नों का अनपच दूध, दही से ही दूर होता है।

बच्चों के लिये दूध और हरे शाकों का महत्व जैसा पूर्वोक्त कथन से स्पष्ट हो गया होगा, "अत्यधिक है। यदि यह पदार्थ उन्हें मिलते रहें तो वे किसी भी प्रकार का अन्न खाकर हृष्ट-पुष्ट रह सकते हैं। दूध प्रत्येक बच्चे का यदि एक सेर प्रतिदिन न मिल सके तो आध सेर अवश्य मिलना चाहिये। साबूदाना, चावल आदि मांड़ी वाले पदार्थों पर पोषण पाये बच्चे दूध के अभाव में अनेक प्रकार के रोगों से ग्रसित रहते हैं।

सयानों का भी इसकी काफी जरूरत रहती है क्योंकि उनके प्रतिदिन की क्षति (wear and tear) की पूर्ति के लिये प्रोटीन की आवश्यकता पड़ती है और डाक्टरों की इस राय के अनुसार कि ७ वर्ष में मनुष्य के समस्त कोषाणु धीरे धीरे बदल कर नये

हो जाते हैं वे भी इस अवधि तक उत्तम प्रोटीन वाले पदार्थों के सेवन से अपना शरीर बिलकुल बदल सकते हैं। भारत सरकार की बुलिटीन न० ८३ में सिफारिश किया गया है कि यह ध्यान रखते हुये कि बढ़ते हुये बच्चों को तथा गर्भिणी या माताओं को अधिक प्रोटीन चाहिये मोटे रूप में प्रोटीन की आवश्यकता आयु के अनुसार निम्नलिखित हो सकती है :—

	आयु	ग्राम प्रतिदिन
पुरुष	१६ से ६० वर्ष तक	६५
स्त्री	१८ से ६० ,,	५५
लड़का	१० से १७ ,,	८०
लड़की	१० से १७ ,,	७०
	आयु	*ग्राम प्रतिदिन
बच्चा	६ से ९ ,,	६०
बच्चा	२ से ६ ,,	४०—५०

यद्यपि पूर्ण स्वास्थ्य की दृष्टि से यह मात्रा कम है परन्तु लोगों की आर्थिक परिस्थित को ध्यान में रखते हुये यह पर्याप्त कही जा सकती है।

---

*२८·४ ग्राम=३० माशा अर्थात् १ ग्राम १ माशा से कुछ अधिक होता है।

५—लवण

यदि हम खाद्य-पदार्थों को आग में जला दें तो अन्त में कुछ ऐसी राख बच रहती है जो फिर नहीं जल सकती। इसे **खनिज लवण** कहते हैं। हमारे शरीर के भीतर इनका घुलनशील अंश रक्त में प्रवेश करके शरीर को बनाने का काम करता है।

हमारे शरीर में कुल ३२ लवणोत्पादक मौलिक हैं परन्तु उनमें से निम्नलिखित मुख्य हैं :—

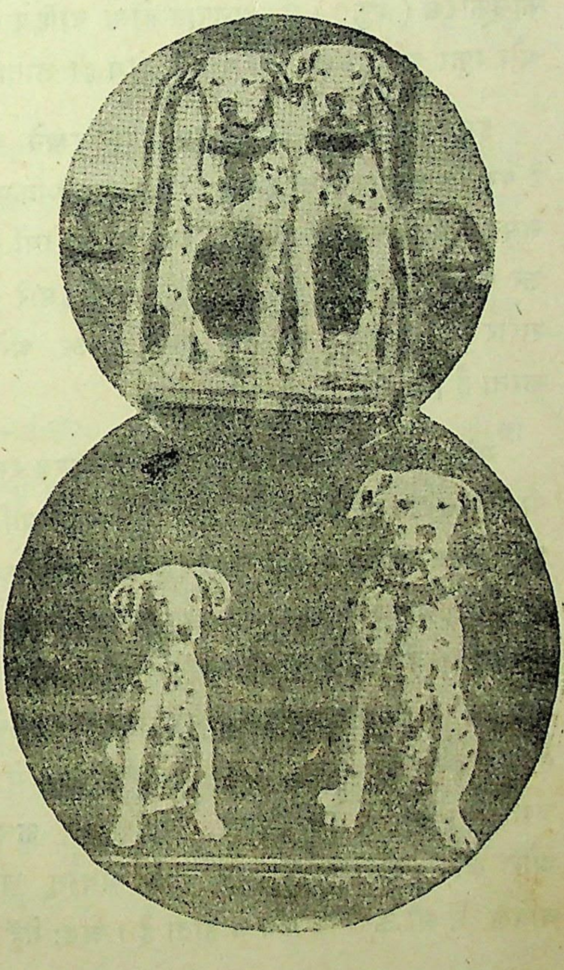
क्षारोत्पादक—केलशियम (खटिक), पोटेशियम, सोडियम, लोहा, ताँबा, मेगनीशियम,।

अम्लोत्पादक—फासफोरस (स्फुर), गन्धक, क्लोरीन, (हरिन) और आयोडीन (नैलिन)।

मनुष्य के शरीर का २१वाँ भाग लवण होता है। अर्थात् एक साधारण मनुष्य के शरीर में लगभग सवा दो सेर लवण होते हैं। दाँत और हड्डियाँ मुख्यतः इन्हीं से बनती हैं। इनहीं की उपस्थिति के कारण मांस पेशियाँ सुगठित रहती हैं, हृदय में गति हो सकती है, फेफड़ा, आँत, यकृति (जिगर) प्लीहा और गुर्दा अपना अपना काम भली भाँति कर सकते हैं और रक्त में दौरा हो सकता है।

लवणों के अभाव से अनेकों रोग हो जाया करते हैं जिनमें से दाँत और हड्डियों के रोग, खून की खराबी, खून की कमी, हर प्रकार की बाई, गठिया, मन्दाग्नि, अनपच, क़ब्ज़, अम्लपित्त, (खट्टी डकार आना) मतली, हृदय की दुर्बलता और घेघा मुख्य हैं।

[बगल के चित्र में दो भाई बहन हैं। बायें वाले के आहार से लवण निकाल दिये गये और उसकी बाढ़ रुक गई। पुनः दिये जानें लगे और वह भी बढ़ने लगा। ऊपर के चित्र में यह दाहिनी ओर दिखलाया गया है। देखा जा सकता है कि इसकी हड्डियाँ फिर भी कम चौड़ी है। इससे मालूम होता है। कि बचपन की त्रुटियाँ आहार सुधारने पर भी नहीं दूर होतीं।]



Scientific America 1933

लवणों की उपस्थिति के अतिरिक्त लवणों में अनुपात भी अत्यावश्यक है जैसे अम्ल २०% और क्षार ८०% होना चाहिये। रक्त के अम्लप्रधान हो जाने के कारण ज्वर तथा अन्य रक्त सम्बन्धी रोग हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त चूने (खटिक) और फास्फ़ोरस (स्फुर) में अनुपात होना चाहिये। यदि चूना ज्यादा और स्फुर कम हो गया तो पथरी रोग हो जाता है।

इस सम्बन्ध में हमें विशेष ध्यान रखने की जरूरत रहती है क्योंकि हमारा रक्त शरीर के भीतर की क्रियाओं के कारण हर समय अम्ल बनता रहता है। ज्वर आदि रोगों की दशा मे विशेष-कर अम्ल हो जाता है। इस लिये यदि हमारे आहार द्वारा क्षार शरीर में न गया तो रक्त अम्ल होकर अनेकानेक रोग पैदा करता है।

मांस, दाल, तथा अन्य अनाजों में अम्ल रस बहुत होता है। परन्तु गरीदार मेवे जैसे बदाम, गरी, मूंगफली आदि में तथा हरे शाकों और अन्य धरती के ऊपर की तरकारियों और फलों में क्षार अधिक होता है। धरती के नीचे की तरकारियाँ जैसे आलू, गाजर आदि में भी क्षार प्रधान रहता है परन्तु शाक से कम। थोड़ा-बहुत क्षार अनाजों में भी होता है परन्तु वह छिल्के के नीचे के भाग में होता है, जो आजकल मशीनों की कुटाई पिसाई में बिलकुल निकल जाता है। गेहूँ में मेग्नीशियम, पोटेशियम, फ़ास्फ़ोरस (स्फुर) और लोहा ऊपरी छिलके के नीचे अर्थात् चोकर मे रहता है। चावल में भी ऊपर के कने में होता है। अतः गेहूँ का आटा बेछना

और चावल बेछरा (कनादार) खाना चाहिए। और मांस, अनाज खाने वालों को शाक भाजी पर्याप्त मात्रा में खाना चाहिये।

खटाई सभी अम्लकारक होती है परन्तु नींबू का रस शरीर में क्षार बन जाता है। कुछ वैज्ञानिकों की राय में सेब, अंगूर और सन्तरा की भी खटाई क्षार उत्पन्न करती है परन्तु उस दशा में जबकि रक्त पहले से क्षार-प्रधान हो।

अम्लों में दो अम्ल अत्यन्त हानिकारक होते हैं। और वह है यूरिक एसिड और आक्जेलिक एसिड। बहुधा इन्हीं की अधिकता के कारण बहुत से रोग पैदा होते हैं। इस लिये जिन पदार्थों में यह अम्ल होते हैं या जिन से यह बनते हैं उनका सेवन कम करना चाहिये।

यूरिक एसिड—प्रोटीन जब रक्त में जलता है तब यूरिया नामी अम्ल शेष बचता है और वह मूत्र द्वारा बाहर निकल जाता है। कुछ प्रोटीन ऐसे होते हैं जिन से बचा हुआ यूरिया अधिक विषैले किस्म का होता है और आसानी से मूत्र द्वारा निकल नहीं सकता। इसी को यूरिक एसिड कहते हैं। अधिक हो जाने पर यह जोड़ों और गांठों में इकट्ठा होकर गठिया रोग पैदा कर देता है। पथरी, मूत्र सम्बन्धी अन्य रोग, मिर्गी, बेहोशी और चक्कर आने के दौरे, आलस्य, दिमागी खुशकी, जलंधर, शिर दर्द, पेट का फोड़ा भी इस के अधिकता के कारण पैदा होते हैं। मांस के प्रोटीन में यूरिक एसिड बहुत ज्यादा होता है। गठिया और गुर्दे के रोगियों

को पालक का साग भी बचा जाना चाहिये। इसमें भी कुछ युरिक एसिड होता है।

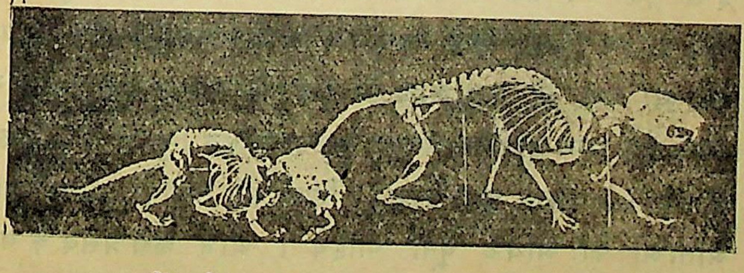
आक्जेलिक एसिड—इस अम्ल के पैदा होने का कारण है (१) अधिक साफ किये हुये पदार्थों का सेवन जैसे सफेद चावल, मैदा, सफेद चीनी, (२) अधिक भुने हुये पदार्थों का सेवन (३) जल्दी जल्दी भोजन करना और उसे पानी से उतार जाना। बाज तरकारियों में भी यह होता है जैसे टमाटर। जिन पदार्थों में युरिक एसिड नहीं होता वे निम्नलिखित हैं :—

(१) दूध तथा दूध के व्यंजन जैसे दही आदि।
(२) दलहन के अनाजों के अतिरिक्त अन्य अनाज।
(३) गरीदार मेवे।
(४) तरकारियाँ, जड़ की और पत्तो की।
(५) फल।
(६) सूखे मेवे।

उत्तम भोजन में उपयोगी सभी लवण होने चाहियें और उचित मात्रा में। परन्तु संसार में कोई भी पदार्थ ऐसा नहीं है जिस में यह सब उपस्थित हों। केवल दूध में लोहा और तांबा को छोड़ कर अन्य सब लवण उचित मात्रा में होते हैं। हरे शाकों तथा अन्य फल तरकारियों में भी क्षारोत्पादक सब लवण पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं। अतएव अनाज और मांस खाने वाले को लवणों के लिये कई पदार्थों के उपयोग की आवश्यकता पड़ती है जिन में दूध और शाक अवश्य होने चाहियें। यह उत्तम

स्वास्थ्य के लिये अनिवार्य पदार्थ है। डाक्टर मेक्कालम लिखते है—"केवल दूध और हरी पत्तियों के साग ही ऐसे बने हैं कि अनाज, मांस, दाल और धरती के नीचे की तरकारियों की त्रुटियों को पूरा कर सकते हैं।" डाक्टर मेक्केरीसन लिखते हैं—"हरी पत्तियों में वह लवण पर्याप्त मात्रा में होते हैं जिनका अभाव अनाज, मांस और गरीदार मेवों में होता है।"

खटिक (चूना)—मुख्यतः चूने ही से दांत और हड्डियाँ बनती और पुष्ट होती हैं, इसी के कारण हृदय की क्रिया ठीक रूप से होती है, रक्त में जमने की शक्ति रहती है, शरीर में संक्रामक रोगों के जैसे मलेरिया आदि के विरोध की शक्ति रहती है, शरीर के टूटे-फूटे सेलों की मरम्मत हो सकती है, पाचन स्वस्थ रहता है और परिश्रम करने पर शीघ्र थकान नहीं आती। बच्चों में कब्ज, रिकेट (ricket) तथा दांत निकलने में देरी या कष्ट माता तथा बच्चे के आहार में चूने की कमी का परिणाम है। जिन बच्चों या सयानों के आहार में खटिक की कमी होती है उनकी हड्डियाँ



आहार में चूने की मात्रा में अन्तर के कारण इन दोनों अस्थि-पंजरों में इतना अन्तर है।

मामूली चोट से टूट जाया करती हैं और अच्छी भी देर में होती हैं, मन्दाग्नि और धड़का रोग हो जाते हैं, छोटे छोटे घाव या नकसीर आदि रक्तपात में रक्त शीघ्र बन्द नहीं होता। बार बार जुकाम और खाँसी का रोग हो जाता है जिसका अन्त राजयक्ष्मा में होता है।

अधिक चूना वाले पदार्थ—असली दूध, क्रीम निकाला दूध, तथा दूध के बने अन्य पदार्थ, द्वि-दल अनाज जैसे चना, मूँग, उरद आदि, फल, हरे शाक, गरोदार मेवे और अंडे का पीला भाग।

इन सब पदार्थों में दूध—असली और क्रीम निकाले—में सब से अधिक खटिक होता है।

कम चूना वाले पदार्थ—अनाज, जैसे गेहूँ, जौ आदि, धरती के नीचे की तरकारियाँ जैसे आलू, अरवी, शलजम, मूली आदि, मांस, गुड़ और साबूदाना।

सयानों की अपेक्षा बच्चों को चूने की अधिक आवश्यकता पड़ती है क्योंकि यही अवस्था दाँत और हड्डियों के बनने की है। ३ से १३ वर्ष तक के बच्चों को कम से कम १ माशा चूना प्रति दिन चाहिये। अतः छोटे बच्चों को जो गाय का दूध पीते हों एक सेर या कम से कम आध सेर दूध और यथासम्भव पालक या अन्य कोई साग प्रतिदिन अवश्य मिलना चाहिये। पुरुषों के लिये कम से कम ·७५ माशा चूना चाहिये। स्त्रियों को विशेषर गर्भिणी तथा माताओं को अधिक चूना चाहिये। आज कल प्रसव के बाद अक्सर स्त्रियों को रक्त हीनता अथवा आदि रोग चूने और लोहे के अभाव के कारण हो जाते हैं।

साग का महत्त्व एक कारण से और भी है। गाय के दूध का सम्पूर्ण चूना बच्चे पचा नहीं सकते परन्तु "पालक और गाजर के रस दिये जाने पर यह चूना भली प्रकार पच जाता है।" जो लोग दूध नहीं दे सकते उन्हें गाजर और पालक जरूर देना चाहिये। परन्तु इन्हें दूध का स्थानापन्न कभी न समझना चाहिये। चूना के पानी के सेवन से भी शरीर को उपयोगी रूप में चूना मिलता है।

दूध के पकाने में उसके चूने का कुछ भाग बर्तन में चिपक कर रह जाता है इसलिये दूध स्वच्छ लोहे, फूल, या कलई के बर्तन में पकाना चाहिये और बर्तन में चपका भाग निकाल लेना चाहिये। साग का भी पानी फेंकना न चाहिये।

अनाजों में यह लवण ऊपर के छिलके में होता है जो चोकर निकालने से निकल जाता है। मांस में चूना दूध के लगभग बारहवाँ भाग होता है।

चूने की प्रति दिन की आवश्यकता

छोटे बच्चे	१ ग्राम
प्रौढ़ स्त्री या पुरुष	·७५ "
गर्भिणी	१·५ "
माता	१·५ " या अधिक
एक सेर दूध में लगभग	१·२ ग्राम चूना होता है।

१०० ग्राम आहार पदार्थों में कैल्शियम

दूध	•१२० ग्राम
अंडा	•१३७ "
अंडा की सफेदी	•०६७ "
सेम	•१६० "
बादाम	•२३६ "
सम्पूर्ण गेहूँ	•०४५ "
चावल रकनादार	•०८ "
गाजर	•०५६ "
सन्तरा	•०४५ "
आलू	•०१५ "
करमकल्ला	•०४५ "
सफेद चावल	•००६ "
मांस	•००७ "

स्फुर (फ़ास्फ़ोरस)—यह हड्डियाँ बनाने और उनको पुष्ट करने में चूने का अनिवार्य साथी है। यदि फ़ासफ़ोरस और चूने की मात्रा में अनुपात न रहे अर्थात् जितने खटिक के लिये जितना स्फुर चाहिये उससे कम ज्यादा हो जाय तो दाँत और हड्डियों का बढ़ना बन्द हो जाता है। स्फुर न हो तो शरीर का बढ़ना रुक जाता है।

स्फुर की प्रतिदिन की आवश्यकता :—

छोटे बच्चे	के लिये	१·५ ग्राम
प्रौढ़ स्त्री या पुरुष	,,	१·५ ,,
गर्भिणी तथा माता	,,	२·० ,,

एक सेर दूध में लगभग ·६ माशा स्फुर होता है।

अधिक स्फुर वाले पदार्थ—दूध तथा उस से बने पदार्थ, हरे शाक विशेष कर पालक, करेमुआ, गाजर, लौकी, मूली, खीरा, फूलगोभी, जौ, गेहूँ, दाल, गरीदार मेवे, मांस, मछली और अंडे।

कम स्फुर वाले पदार्थ—सफ़ेद चावल, मैदा, और शेष धरती के नीचे वाली तरकारियाँ।

लोहा—यह तीसरा लवण है जो शरीर के लिये अत्यावश्यक है। रक्त का लाल रंग उसमें लाल कण की उपस्थिति के कारण होता है। रक्त के इन कणों का काम है (१) सांस द्वारा अन्दर गई हुई वायु से आक्सीजन खींच कर शरीर के कोषाणुओं में पहुँचाना और उनके विकारों के जलने में सहायक बन कर उनके स्वास्थ्य और वृद्धि में सहायता देना और (२) आंतों से पच कर रक्त में गये हुये खाद्य पदार्थों के जलने में सहायता देना। रक्त के यह लाल कण लोहे से बनते हैं। शरीर में रक्त की कमी से साधारणतः आहार में लोहे की कमी समझना चाहिये।

अधिक लोहे वाले पदार्थ—हरी पत्ती वाले शाक जैसे चौलाई, चने का साग, मेथी, बथुआ, पालक, करमकल्ला, सरबूज़,

खीरा, टमाटर, प्याज़,मूली, गेहूँ, दाल, सूखी मटर, गाजर, मछली, अंडा, कलेजी और कच्चा मांस। इन सब में सर्वश्रेष्ठ पदार्थ मेथी का साग है, फिर बथुआ और फिर पालक का नम्बर है।

दूध में लोहे की मात्रा बहुत कम होती है परन्तु ज्यादा दूध से यह कमी पूरी हो जाती है। सफ़ेद चावल, मैदा, चीनी, घी, तेल—इनमें लोहे की मात्रा, बिल्कुल ही कम होती है।

तांबा और मेन्गनीज़—ऊपर बतलाया जा चुका है कि लोहे से रक्त बनता है, परन्तु लोहे के साथ तांबा या मेन्गनीज अवश्य होना चाहिये नहीं तो यह भी अनपचा मल के साथ निकल जाता है। मेन्गनीज के अभाव में रक्त अशुद्ध हो जाता है, मनुष्य में नपुंसकता आ जाती है और स्त्री में बच्चों के प्रति घृणा हो जाती है।

अधिक तांबा वाले पदार्थ—मूली, शलजम, खीरा, प्याज गाजर, फूलगोभी, टमाटर, आलू, पालक।

कम ताँबा वाले पदार्थ—अंगूर, सेब आदि फल।

मेन्गनीज—अनाज, के ऊपरी भाग में जैसे गेहूँ के चोकर में, चावल के कने में। बादाम, दलहन, गोभी, सलाद में भी अधिक होता है।

नमक—इससे ख़ून में सफ़ाई रहती है और नसों में पानी का दौरा ठीक होता है और पेट में नमक का तेजाब बनता है। नमक न खाने से पाचन दुर्बल हो जाता है और शरीर में झुर्रियाँ

आ जाती हैं और खाल के फटने का रोग हो जाता है। शाकाहारियों को मांसाहारियों की अपेक्षा अधिक नमक चाहिये। क्योंकि शाक-तरकारियों में नमक कम होता है। चावल खाने वालों को भी नमक कम खाना चाहिये। अधिक नमक हानिकारक है। गुर्दे के मरीजों को अर्थात् जिन्हें बहुमूत्र, शोथ, जलन्धर, गठिया आदि रोग हों उनहें अधिक नमक न खाना चाहिये। साधारण आवश्यकता के लिये एक चुटकी ६,७ माशा नमक काफी है।

हरिन (क्लोरीन)—यह पदार्थ नमक का एक अवयव है। इसी की सहायता से पेट में नमक का तेजाब (लवणाम्ल) बनता है जो आहार के पाचन का एक मुख्य रस है। यह भी हरी पत्तियों के साग, विशेष कर पालक, टमाटर, सलाद अजवाइन के पत्ते गोभी, खीरा, तथा गरी, खजूर, चोकर, केला, अनन्नास में बहुत होता है।

नैलित (आयोडीन)—यह भी शरीर के लिये एक आवश्यक लवण है। इसकी कमी से गले में घेघा निकल आता है, शरीर की बाढ़ रुक जाती है और चूना और वसा पूर्ण रूप से नहीं पचते। इस के अभाव में रक्त हीनता रोग हो जाता है। इसका केन्द्र समुद्र है। समुद्र से सुदूर स्थानों की धरती में इसकी कमी रहती है। इसी कारण पहाड़ी तराई के शाकतरकारियों में इसका अभाव रहता है। घेघा रोग भी उधर ही अधिक होता है। तालाबों या उसके निकट की धरती में पैदा होने वाले शाकों और फलों में यह मनुष्य

की आवश्यकता के लिये काफ़ी होता है। लहसुन में सब से ज्यादा आयोडीन होता है। प्याज़ का चौगुना और मूली और नीबू का पांच गुना होता है।

गन्धक—यह भी शरीर के लिये बड़ा ज़रूरी लवण है। गन्धक शरीर के प्रत्येक सेल का एक आवश्यकीय अंश है। परन्तु मस्तिष्क, बाल तथा नाखून की बनावट में इसका विशेष स्थान है। गन्धक के अभाव में बाल और नाखून शीघ्र टूटने लगते हैं। उचित मात्रा में होने से बालों में चमक लाता है। पाचन में भी सहायता देता है। अधिक गन्धक के कारण बाल लाल हो जाते हैं। अंडा, सेम, दाल, मूली, प्याज़, पालक, करमकल्ला, सलाद में काफ़ी गन्धक होता है।

उक्त विवेचन से प्रकट है कि दूध, दही, हरी पत्तियों के साग विशेषकर बथुआ, पालक, टमाटर, केला तथा अन्य फल मनुष्यों के स्वास्थ्य पर कितना प्रभाव डालते हैं, अतः सयानों और बच्चों के आहार में उनका होना कितना आवश्यक है।

शाक तरकारी पकाने में उनका पानी बाहर न फेंकना चाहिये, क्योंकि बहुत कुछ लवण उस जल के साथ निकल जाते हैं। आलू का लवण उसके छिल्के के नीचे के भाग में रहता है अतः आलू के मोटे छिल्के छीलने से यह सब निकल जाता है। इसलिये आलू पहले समूचे उबाल कर तब छीलना चाहिये, परन्तु इतना न उबाले कि वे फट जावें। आलू के लवण उसे काट कर उबालने से करीब करीब बिल्कुल ही निकल कर पानी में आ जाते हैं।।

उक्त लवणों की पर्याप्त मात्रा पाने के लिये, विशेषज्ञों की राय में यदि प्रतिदिन आध सेर दूध और कुछ हरी पत्तियों के शाक जैसे बथुआ, पालक, चौलाई, टमाटर आदि शाक-तरकारियाँ और चोकरदार आटा और हाथ का कुटा चावल खाया जाय तो किसी लवण की कमी न पड़े।

६—ईंधन पदार्थ

जैसा पहले लिखा जा चुका है मनुष्य के शरीर रूपी इंजन को भी साधारण रेल के इंजन की भाँति ईंधन की आवश्यकता पड़ती है। और जैसा कम ज्यादा काम होता है वैसे ही कम ज्यादा ईंधन पदार्थ भी चाहिये। इस ईंधन के अन्तर्गत दो प्रकार के पदार्थ आते हैं :—

(१) वसा अर्थात् चिकनाई जैसे घी, तेल पशुओं की चर्बी, वनस्पति आदि।

(२) कर्बोज—इसके अन्तर्गत भी दो प्रकार के पदार्थ है (१) शर्करा—जैसे शहद, गुड़, चीनी आदि, (२) श्वेतसार या मांडी जो मांडीदार पदार्थ जैसे साबूदाना, चावल, अरारूट आदि में पाई जाती है।

शरीर के मांसोत्पादन की आवश्यकता से अधिक प्रोटीन भी ईंधन का काम करता है परन्तु प्रोटीन देर में पचता है, यूरिक एसिड बनाता है, महँगा पड़ता है और इसके द्वारा प्राप्त उष्णता शीघ्र नष्ट हो जाती है और अधिक थकान लाती है। इसलिये प्रोटीन को इस काम में नहीं लाते।

ईंधन पदार्थ, कर्बोज और वसा दोनों, कार्बन, हाइड्रोजन और आक्सीजन से मिलकर बनते हैं। परन्तु इनमें तीनों तत्वों का

अनुपात भिन्न भिन्न होता है। यह शरीर में जाकर पूरी तरह जल जाते हैं और सांस के साथ कर्बोनिक एसिड गैस और पानी की भाप के रूप में बाहर निकल जाते हैं।

कर्बोज और वसा की उपमा लकड़ी की चैलियों और बड़े कुन्दों से दी जा सकती है। चैलियाँ जल्दी जलती हैं और कुन्दे देर में। आँच भी चैलो की हलकी होती है। परन्तु कुन्दो को जलाने के लिये चैलियाँ जरूरी हैं।

इन पदार्थों के जलने से जो शक्ति निकलती है उसकी नाप की इकाइ को उष्णांक (Calorie) कहते हैं जैसे थरमामेटर की नाप को डिग्री। जितनी उष्णता एक हजार माशा (१६३ छटांक) जल को एक डिग्री शतांश (सेन्टीग्रेड) बढ़ाती है उसको एक उष्णांक कहते हैं। इस प्रकार एक माशा शर्करा के रक्त में पूर्णतया जलने से ४ उष्णांक ताप छूटता है, एक माशा प्रोटीन से भी ४ उष्णांक ताप छूटता है और एक माशा वसा से ९ उष्णांक। मनुष्य को अपने शरीर की तौल और परिश्रम के हिसाब से ईंधन की आवश्यकता पड़ती है। पतले शरीर वाले को कम और भारी शरीर वाले या अधिक परिश्रमी को अधिक।

(अ) वसा (चिकनाई)

वसा दो प्रकार के होते हैं। पशु वसा जैसे घी, चर्बी, मछली का तेल और बनस्पति वसा जैसे तेल, कोकोजेम आदि।

ईंधन पदार्थों में वसा का विशेष स्थान है क्योंकि इनमें सबसे

अधिक ताप (उष्णता) होती है। इसके अतिरिक्त शरीर के लिये इसकी उपयोगिता निम्नलिखित कारणों से भी है—

(१) यह शरीर के भीतर इकट्ठा होकर उसके कोमल अङ्गों को, जैसे आँत, गुर्दे आदि को सर्दी, गर्मी से बचाता है क्योंकि इन अङ्गों के ऊपर इसकी तह जम जाने के कारण सर्दी, गर्मी का प्रभाव पहले इसी पर पड़ता है।

(२) पशु वसा में विटामिन ए पर्याप्त मात्रा में होता है और घी, मछली के तेल में विटामिन डी भी होता है जो भोजन से खटिक (चूना) और स्फुर (फास्फ़ारस) खींच कर और उनका अनुपात ठीक कर के हड्डी और दाँत बनने में सहायक होता है। अगर वसा की कमी होती है तो आहार का चूना अनपचा ही निकल जाता है।

(३) इसी के कारण आंतों में किसी भी तेज पदार्थ से हानि नहीं पहुँचती। यदि भोजन में काफी वसा न हो तो अधिक मीठा तथा श्वेतासार पदार्थ पेट में अम्ल बना कर आंतों में खराश (अतिसार) आदि रोग पैदा कर दें। और लाल मिर्च, राई आदि तेज पदार्थ भी हानिकार सिद्ध हों। इसी कारण तेज चीजों का प्रभाव घी खा लेने से हलका हो जाता है।

(४) वसा की कमी के कारण बहुधा हाथों पैरों में पानी उतर आता है और उनमें सूजन आ जाता है। बच्चे इसी कमी के कारण बहुधा दुर्बल और औसत तौल से कम होते हैं।

साधारण आवश्यकता से अधिक चिकनाई चर्बी के रूप में

शरीर में इकट्ठा हो जाती है परन्तु यदि इस से भी अधि क हुईतो अनपची निकल जाती है और अपने साथ सोडा, पोटाश और कैल्शियम भी लेती जाती है। इससे पाचन बिगड़ जाता है।

जैसा ऊपर लिखा जा चुका है पशु वसा विटामिनों की उपस्थित के कारण वनस्पत्ति वसा अर्थात तेल से श्रेष्ठ होता है। वनस्पति तेल में विटामिन करीब करीब बिल्कुल नही होते इसलिये यद्यपि उष्णता देने के लिये तेल काफ़ी है, बल्कि अधिक गरम होने के कारण कम ही मात्रा में पर्याप्त होते हैं, फिर भी विटामिनों के ख्याल से प्रतिदिन के अहार में कम से कम कुल का आधा पशु वसा होना चाहिये। अभाग्यवश आजकल शुद्ध घी अप्राप्य हो रहा है। अतः सयानों के लिये तेल और शाक, टमाटर आदि के सेवन से किसी हद तक यह त्रुटि पूरी की जा सकती है। बच्चों के आहार में विटामिन डी के कारण घी, मक्खन या मछली के तेल की बड़ी आवश्यकता रहती है। मांसाहारी थोड़ा मछली का तेल या अंडा खाकर यह कमी पूरी कर सकते हैं।

जिन लोगों को अधिक परिश्रम करना पड़ता है और विशेष कर बच्चों को जो अधिक खेलते हों अधिक वसा मिलना चाहिये। परन्तु बहुत अधिक होने से यह मन्दाग्नि पैदा कर देता है और अधपचा रह जाने के कारण शरीर में इकट्ठा होकर बादी का मोटा-पन लाता है।

वसा के पचाने के लिये कर्बोज की भी आवश्यकता होती है। बिना कर्बोज के वह अधपचा रह जाता है और उसमें एक

प्रकार का विष पैदा हो जाता है जो शरीर में सोख कर सिर दर्द तथा अन्य ऐसे रोग पैदा कर देता है। इसलिये दुबले मनुष्यों को अधिक व्रत न करना चाहिये क्योंकि व्रत के समय बाहर से कबोज नहीं पहुँचता और शरीर के भीतर की चर्बी जलने लगती है। ऐसी दशा में ऊपर लिखे विकार पैदा हो जाते हैं।

कम परिश्रम करने पर तथा सोते समय चिकनाई सब से कम पचती है। इसलिये बैठ कर काम करने वालों को तथा दुर्बल पाचन वालों को या साधारणतया रात्रि के समय कम घी, तेल खाना चाहिये।

चिकनाई के शुद्ध पाचन के लिये ४ चीजें आवश्यक हैं। विटामिन ए और बी, कबोज और आयोडीन। पशु वसा में केवल विटामिन ए होता है। शेष तीन चीजें नहीं होतीं। वनस्पति वसा में चारों चीजों की कमी होती है। अतएव अधिक घी, तेल खाने वालों को कबोज के अतिरिक्त शाक भी, जिनमें विटामिन और आयोडीन काफी होते हैं, अवश्य खाना चाहिये। जिन बच्चों को घी, मक्खन अधिक दिया जाता हो उनके आहार में भी यह पदार्थ बढ़ा देना चाहिये।

वसा में उत्तम वसा मक्खन, घी और मछली का तेल है, मध्यम गरी का तेल और मूंगफली का तेल है। अन्य तेल जैसे कडुआ तेल, तिल्ली का तेल तथा अन्य सब तेल करीब करीब बराबर हैं और तृतीय श्रेणी के हैं।

विशेषज्ञों की राय में एक औसत आदमी को १ छटाँक से अधिक चिकनाई नही खाना चाहिये। परन्तु यह ऋतु और परिश्रम

पर भी निर्भर है। जाड़ों में इसका पाचन अधिक होता है। अधिक परिश्रम करने वाले १½ छटाँक तक पचा लेते हैं। यह भी पाया गया है कि वसा चाहे जितना कम से कम खाया जाय कुछ न कुछ अनपचा निकल जाता है बल्कि ज्यादा खाने से कम निकलता है। इसका ज्यादा से ज्यादा पाचन साधारण आवश्यकता के अनुसार पूरी मात्रा खाने से होता है, न अधिक और न कम।

(ब) कर्बोज

ईंधन पदार्थों में कार्बोज का नम्बर दूसरा है। चीनी, गुड़, शहद तथा मांडीदार पदार्थ इस श्रेणी की मुख्य चीजें हैं। यह तापोत्पादन के साथ साथ प्रोटीन और वसा के पाचन में भी सहायता करता है। अतएव मनुष्य के प्रतिदिन के अहार में कर्बोज अवश्य होना चाहिये। परन्तु बहुत अधिक नहीं क्योंकि यदि उचित मात्रा में हुआ तब तो यह अन्य पदार्थों के पचाने के साथ ही आप भी पच जाता है परन्तु यदि अधिक हुआ तो पाचन पर जोर डालता है और वायुविकार करता है जिस से पेट फूलना, मन्दाग्नि, कब्ज, रक्तचाप (high blood pressure) शिर दर्द आदि रोग पैदा हो जाते हैं। अधिक कर्बोज प्रोटीन के पचने में बाधक होता है और चर्बी के रूप में इकट्ठा होकर रक्त को दूषित और शरीर को मोटा बनाता है। इससे जिगर पर भी बोझा पड़ता है और जिगर बढ़ जाता है। यदि वसा की कमी हुई तो अधिक कर्बोज आँतों को अधिक हानि पहुँचाता है। यही कारण

है कि अधिक मीठा और चावल खाने वाले देखने में मोटे परन्तु पाचन के कमज़ोर और संक्रामक रोग जैसे पेचिश, हैजा मलेरिया आदि तक के शिकार बन जाते हैं। पाचन की खराबी से मुँह की गन्दगी और दाँतों के रोग भी हो जाते हैं।

साधारण मनुष्य के आहार में १४–१५ औंस (७, ७½ छटांक) कर्बोज चाहिये। अधिक जरूरत पर घी, तेल बढ़ा देना चाहिये।

शर्करा पदार्थों की निम्नलिखित श्रेणियाँ हैं:—

(१) चीनी, शक्कर, गुड़, शहद—उष्णता की दृष्टि से उक्त तालिका क्रमानुसार है। परन्तु पाचन की दृष्टि से यह क्रम बिल्कुल उल्टा होना चाहिये। अर्थात् शहद प्रथम, गुड़ द्वितीय, शक्कर तृतीय और चीनी निकृष्ट स्थान रखते हैं। चीनी में कोई भो विटामिन नहीं होते, गुड़ और लाल शक्कर में कुछ विटामिन बी होते हैं और शहद में कुछ कुछ विटामिन ए और बी दोनों होते है। इसके अतरिक्त शहद क़रीब क़रीब पचा हुआ पहले ही से होता है। अतः पेट को इसके पचाने की आवश्यकता नहीं पड़ती, बल्कि यह सीधे रक्त में जाता है।

(२) साबूदाना और अरारूट

(३) सूखे मेवे (सिवाय गरीदार मेवों के)

(४) गेहूँ आदि अनाज (सिवाय दालों के)

(५) द्वि-दल अनाज (अरहर, मुँग, उड़द चना आदि)

(६) गरीदार मेवे (बादाम, मूंगफली आदि) और मटर

(७) गाजर, मूली आदि जड़दार तरकारियाँ ।

(८) ताजे फल ।

(९) हरे शाक ।

शरीर की आवश्यकतानुसार कर्बोज एक ही चीज से न लेकर कई चीजों से लेना अधिक उपयोगी होता है। शर्करा जैसे गुड़, चीनी की अपेक्षा मांड़ीदार पदार्थ जैसे अनाज, मेवे, आलू आदि से लेना अधिक लाभदायक होता है क्योंकि श्वेतसार (माँड़ी) शर्करा से कम हानि पहुँचाती है, और उसके साथ कुछ प्रोटीन, लवण और वसा भी मिल जाते हैं। इसलिए मीठा जैसे गुड़, चीनी के अधिक हो जाने से आँतों को हानि की सम्भावना रहती है ।

७–विटामिन ए

यह विटामिन हरी पत्तियों में सूर्य के प्रकाश के प्रभाव से बनता है। पशु-पक्षी में स्वतन्त्र रीति से यह नहीं बनता परन्तु जिनके आहार में हरी पत्तियाँ या हरी घास होती है उनके रक्त, माँस, चर्बी, और दूध में यह इकट्ठा हो जाता है। हरी घास खाने वाली गाय, बकरी आदि के दूध में यह विटामिन बहुत होता है। मछली के तेल में इसके अधिक होने का कारण यह है कि समुद्र में एक प्रकार की हरी घास होती है जिसको खाकर छोटी छोटी मछलियाँ यह विटामिन अपने शरीर में इकट्ठा करती हैं। फिर बड़ी मछलियाँ काड (Cod) और शार्क (Shark) इनको खा जाती हैं, और उनके तेल में यह बहुत आ जाता है। इस प्रकार पीली जड़ वाली तरकारियों में भी यह होता है। जैसे विलायती गाजर और शकरकन्द। परन्तु लाल या सफेद में कम होता है जैसे आलू, शलजम, मूली, चुकन्दर में कम होता है।

इस विटामिन का विशेष प्रभाव आँख, फेफड़ा आँत, चर्म, तथा शरीर के भीतर की कोमल झिल्लियों पर पड़ता है, क्योंकि यह हमारे खाद्य पदार्थों से वह अंश जो शरीर के इन भागों को बनाते, मरम्मत करते और रोग रहित रखते हैं खींचकर उन तक पहुँचाता है। अतः इसके अभाव से ये भाग दुर्बल रह जाते हैं, और उनमें तरह तरह के रोग हो जाते हैं। आँखों के रोग जैसे

रतौंधी, पलकों की मोटाई, पुतली में छीट, कान के परदे के रोग जिसके कारण अक्सर बहरापन आ जाता है, आँतों के रोग

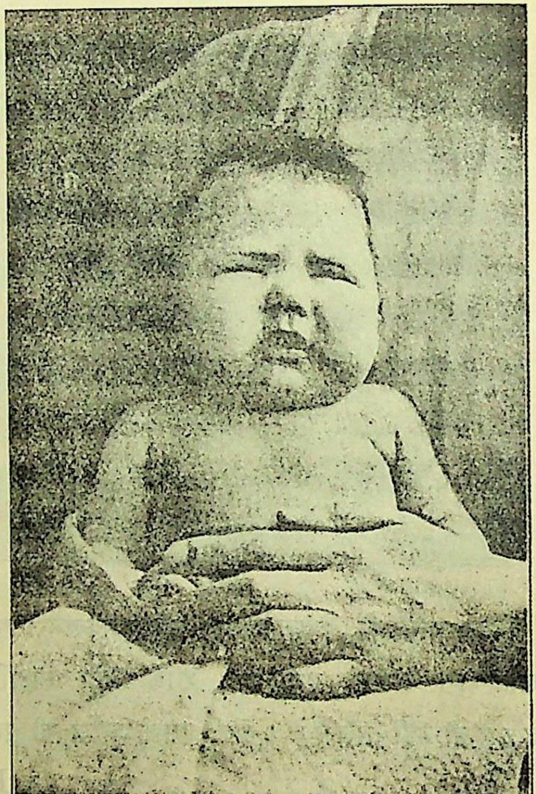


[इस बच्चे को केवल अनाज और मक्खन निकाला दूध खाने को मिलता था। असली दूध, घी, शाक आदि विटामिन ए वाले पदार्थ बिलकुल ही नहीं मिलते थे। अतः इसकी आँख की यह दशा हो गई ।]

Dr. C. E. Bloc.

जैसे दस्त, अतिसार, संग्रहणी, गुर्दे में पथरी और नसों में पानी उतरने आदि रोगों का कारण आहार में इसी विटामिन का अभाव है। कुछ समय तक यह विटामिन न मिले तो नये रक्त के कोषाणु बनने रुक जाते हैं, बच्चों की बाढ़ रुक जाती है, रक्त के अभाव के कारण हाथ, पैर, मुँह तथा अन्य भागों में सूजन आ जाती है,

शरीर के भीतर की श्लेष्मक झिल्लियाँ सूखने लगती हैं और फट



[इस बच्चे को भी विटामिन ए न मिलने के कारण यह रोग हो गया।]

Dr. C. E. Bloc.

जाती हैं, मुँह, आँख, नाक, आमाशय आदि से पानी निकलना बन्द हो जाता है और खुश्की पैदा हो जाती है जिसके कारण चमड़े

फटने लगते हैं। आँतों के फटने से खाने के साथ गये रोग के कीटाणु रक्त में प्रवेश करने का मार्ग पा जाते हैं।

इस सम्बन्ध में प्रोफेसर शरमन (१९२८) ने अपने एक प्रयोग का हाल लिखा है। वे लिखते हैं कि मैंने एक महीना के चूहों की दो टोलियाँ लीं। इनमें से एक टोली को बचपन ही से काफी विटामिन दिया और दूसरे को बस इतना दिया कि वह केवल जीवित रहें। इसके बाद दोनों टोलियों का विटामिन बिल्कुल बन्द कर दिया। इस प्रकार दो महीने तक वे साधारण विटामिन रहित भोजन पर रखे गये। पर पुनः उनकी परीक्षा की गई तो देखा गया कि पहली टोली में केवल २५ प्रतिशत संक्रामक रोगों से रोगी हुये थे परन्तु दूसरी में ७५ प्रतिशत रोगी हो गये थे। इन दोनों टोलियों में प्रयोग के पूर्व पहले की माताओं को यह विटामिन काफी मिलता था और दूसरे की माताओं को बहुत कम। इससे यह सिद्ध हुआ कि बचपन में इस विटामिन की कमी का बहुत ही हानिकारक प्रभाव पड़ता है और लगभग दो महीने बाद मालूम होता है चाहे दूध पीने की अवस्था में माता के आहार में यह विटामिन अधिक ही क्यों न हो, इस परिणाम के आधार पर प्रो० मेक्कालम और साइमण्ड लिखते हैं—"चूँकि चूहे के जीवन का १ साल मनुष्य के जीवन के ३० साल के बराबर होता है इसलिए संक्रामक रोगों का जो प्रभाव मनुष्य के दस-बारह वर्ष के बच्चों पर पड़ता है उसका कारण उनकी दो-तीन वर्ष की उम्र के आहार की त्रुटि समझी जा सकती है। और यह कहना कि बचपन की त्रुटियाँ आगे दुरुस्त की जा सकती हैं एक भ्रामक विचार है।"

इसी प्रकार डा० ग्रीन ने १४३ चूहे लिये। इनमें से ९३ के आहार से विटामिन बिल्कुल निकाल दिये। ५० के आहार में अन्य पदार्थ तो वही रहे परन्तु विटामिन के लिये कुछ को मक्खन, कुछ को मछली का तेल, कुछ को करमकल्ला का साग बढ़ा दिया और यह देखा कि दूसरी टोली के पचासों चूहे स्वस्थ बने रहे और पहली टोली के सारे के सारे रोगी होकर मर गये। मरने के बाद



विटामिन ए के अभाव से इस बच्चे की आँखों में फूली पड़ गई।

उन सब की परीक्षा की गई कि किसको क्या रोग था। और यह देखा गया कि दो तो केवल दुर्बलता के कारण मरे थे

और शेष ६१ किसी न किसी संक्रामक रोग के कारण। किसी के मूत्राशय में रोग था, किसी के जिह्वा और गले की गिल्टियों में मवाद आगया था, किसी को नाक, कान आँख या फेफड़े, के रोग हो गये थे।

परन्तु यहाँ यह भी जान लेना चाहिये कि यह विटामिन संक्रामक रोगों तथा अन्य बाहर से आये हुए विषैले रोगों की औषधि नहीं है। यह केवल रक्त में ऐसी शक्ति दे देता है और शरीर की कोमल झिल्लियों को इतना स्वस्थ कर देता है कि ऐसे रोगों के कीटाणु शीघ्र असर नहीं कर पाते या असर भी करते हैं तो उनका असर शीघ्र दूर किया जा सकता है। जो रोग इसी के अभाव के कारण पैदा होते हैं और बहुत पुराने नहीं हो जाते वे केवल इसी की कमी पूरी करने से अच्छे हो जाते हैं।

अधिक परिश्रम के साथ साथ इस विटामिन की भी अधिक आवश्यकता पड़ती है नहीं तो आयु कम हो जाती है।

अत्यधिक विटामिन ए वाले पदार्थ—मछली का तेल, हरेशाक जैसे धनियां, चौलाई की कोमल पत्तियाँ, चने का साग, सलाद, नीम की कोमल पत्तियाँ, पालक, पुदीना, पान, आम, करमकल्ला, मक्खन, अंडा और दूध।

अधिक विटामिन ए वाले पदार्थ—गाजर, टमाटर, शकरकन्द, पके टमाटर, मकाई, अँखुआदार चना, बजरा, अलसी।

कम विटामिन ए वाले पदार्थ—क्रीम निकाला दूध, द्विदल अनाज जैसे चना, मूंग, अरहर, मटर आदि, गेहूँ—

छिलका समेत—जौ, लाल और पीली सरसों, मिर्चा, गरी, गरी का तेल, सन्तरे का रस।

बहुत कम विटामिन ए वाले पदार्थ—पट्ठे का माँस, शहद, चावल, प्याज, आलू, शलजम, मूली, केला, गरीदार मेवे, मूँगफली का तेल, जैतून का तेल, अलसी का तेल।

विटामिन ए शून्य पदार्थ—सफेद चावल, मैदा, भुजिया चावल, तेल, वनस्पति।

यह विटामिन पालक में घी की अपेक्षा ३ गुना होता है और करमकल्ले के ऊपरी हरे पत्तों में भीतरी पीले पत्तों की अपेक्षा कहीं अधिक होता है।

खाना पकाते समय वायु के आक्सीजन के मेल से यह शीघ्र मर जाता है। इस लिये बन्द बर्तन में पकाने से इसकी हानि कम होती है! खुले बर्तन में और अधिक पकाये हुई तरकारियों के या घी, दूध के विटामिन बहुत कुछ मर जाते हैं।

८–विटामिन बी

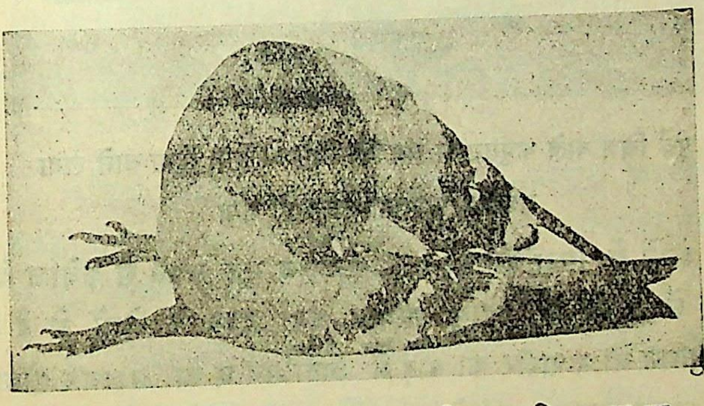
यह विटामिन पौधे उन पदार्थों से जो वह धरती या वायु से खींचते हैं बनाते हैं अतएव यह बीज और अँखुए में विशेष कर होता है, उससे कम पत्ती में होता है। और जैसे यह बीज में रह कर उसको वृक्ष का विशाल रूप देता है वैसे ही यह गाय, भैंस बकरी आदि के दूध में और पक्षियों के अण्डे में होने के कारण उनके बच्चों के शरीर को बढ़ाता और पुष्ट करता है। केवल भेद इतना है कि पौधे धरती और वायु से सीधे खींचते हैं परन्तु पशु-पक्षी वनस्पतियों से पाते और अपने शरीर में इकट्ठा करते हैं। अतः स्वभावतः जितना अधिक विटामिन बी खाने वाले पशु होंगे उतना ही अधिक यह उनके दूध और मांस में होगा।

पहले यह ख्याल था कि यह विटामिन एक ही तत्व है परन्तु अब पता लगा है कि इस के पाँच प्रकार हैं बी १, बी २ इत्यादि। लेकिन मुख्यतः बी १ और बी २ के लाभ हानि अधिक है।

शरीर के अन्दर जाकर यह विटामिन आमाशय, हृदय, यकृत, गुर्दा, छोटी-बड़ी आँतों और मस्तिष्क के उपयोगी अंशों को वहाँ पहुँचाती और उन्हें स्वस्थ बनाती हैं और शरीर की माँस-पेशियों

को पुष्ट और आँतों को स्वस्थ रखती हैं। एक्सरे (बिजली) द्वारा देखा गया है कि जिनके आहार में कुछ दिनों तक इस विटामिन का अभाव रहता है उनकी आँतों की ऊपरी झिल्लीपतली हो जाती है, आँतों की क्रिया ठीक नहीं रहती और वह भोजन को न तो भली भाँति पचा पाती हैं और न आगे ढकेल सकती हैं। इसलिये मन्दाग्नि, अनपच, अरुचि, कब्ज, पेट की पीड़ा, कुरुचि (जैसे मिट्टी खाने की रुचि), पेट बढ़ना आदि रोग अतिशीघ्र हो जाते हैं और पेट विकार के कारण अन्य रोग जैसे स्वभाव में चिड़चिड़ाहट, शरीर के पुट्ठों का ढीलापन आदि भी आ घेरते हैं। इनके अतिरिक्त हृदय की दुर्बलता तथा मस्तिष्क के रोग जैसे चक्कर, नझियान, थनक, एकाग्रता शक्ति का अभाव और बेरी बेरी हो जाता है बेरी बेरी में हाथों पैरों में, उनके जोड़ों में, बल्कि सारे शरीर में सूजन और दर्द हो जाता है। आंखों की पुतलिया फैल जाती हैं और रोशनी पर असर पड़ता है। रोग पुराने हो जाने पर रोशनी बिल्कुल गायब हो जाती है। हृदय में धड़के का रोग भी हो जाता है। शिकागो के प्रो० भार और दुसाई ने चूहों पर प्रयोग करके यह देखा है कि विटामिन बी पाने वाले चूहे अपने खाने को जो हटा-छिपा कर रख दिया जाता था औसत में ५२·३ बार कोशिश करके ढूँढ सके लेकिन न पाने वाले अवसत में १०७·४ बार प्रयत्न करने पर ढूँढ सके। समय में भी इसी प्रकार बहुत अन्तर पड़ा। मस्तिष्क के काम करने वालों को और विशेष कर बच्चों को इसकी बहुत कर जरूरत रहती है।

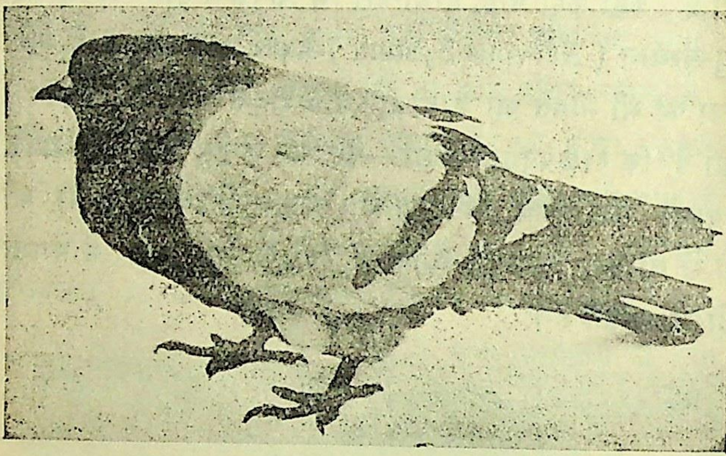
गर्भिणी के गर्भपात, रक्त पात (Hæmorrhage), शोथ, मरे बच्चे पैदा होने के कारणों में इस विटामिन का अभाव भी माना जाता है। कहीं कहीं बाई, हाथों-पैरों में कंपकंपी होने लगती है, स्नायु-संस्थान (Nervous System) बेकार होने लगता है और लकवा की भी नौबत आ जाती है। प्रो० शटक ने (सन् १९२८) लिखा है कि राजयक्ष्मा, केन्सर—पेट का फोड़ा, मधुमेह, गर्मी, नशेबाजी और बच्चों का सूखा रोग आहार में विटामिन बी की कमी से या कुछ ऐसी ही कारणों से जिससे यह शरीर में पचता न हो, हो सकते हैं।



इस कबूतर के आहार से विटामिन बी निकाल दिया गया था। जिस के कारण यह दशा हो गई

दिमागी खराबी, नींद न आना (Insomnia), चिड़चिड़ाहट माँस-पेशियों का कड़ा पड़ जाना, खाल मोटी पड़ जाना और फुन्सियाँ निकलना, पेलेग्रा रोग जिसमें खाल पर चकत्ते पड़ कर सड़ने लगते हैं, जीभ फट जाती है, भूख मर जाती है, मतली और

दस्त आते हैं और रोगी का दिमाग बिगड़ जाता है और अन्त में घातक सिद्ध होता है, इसी विटामिन के अभाव के कारण होता है।



पूर्व चित्र वाले कबूतर को जब विटामिन बी पुनः दिया जाने लगा तब वह पूर्णतया स्वस्थ हो गया

इनमें से विटामिन बी १ का सम्बन्ध भूख लगने से कर्बोज के रक्त में जलने से, स्नायु संस्थान तथा हृदय के रोगों से है। विटामिन बी २ शरीर की बाढ़ में विटामिन ए का सहायक होता है। पाचन, स्नायु, चर्म रोग इसके अभाव से होते हैं। होठों के किनारे सफेदी तथा फटना मुँह के छाले इस विटामिन के अभाव में होते हैं।

अनाजों में यह विटामिन बीज में अर्थात् उस भाग में जहाँ से अँखुआ निकलता है विशेष कर पाया जाता है, और इसके बाद भीतरी चोकर में। इसलिये गेहूँ का चोकर न निकालना

चाहिये। इसी कारण छिलकेदार दाल दली या धोई से श्रेष्ठ होती है। चावल में यह विटामिन कम होता है और जो थोड़ा बहुत होता भी है वह कना में होता है, जो छटने (कना निकालने) और मलकर धोने और माँड़ निकालने में बिल्कुल निकल जाता है। गुड़ में यह विटामिन थोड़ा होता है परन्तु चीनी में बिल्कुल नहीं। यही कारण है कि गुड़ पाचक और चीनी पाचन-शक्ति नाशक है। विटामिन बी १ और बी २ दोनों खमीर में बहुत होते हैं।

अत्यधिक विटामिन बी वाले पदार्थ—खमीर, गेहूँ का चोकर, चावल का कना, चौलाई, पालक, बथुआ, मूली, शलजम की कोमल पत्तियों का शाक।

अधिक विटामिन बी वाले पदार्थ—सम्पूर्ण अनाज का आटा, सम्पूर्ण दाल, गरीदार मेवे, अलसी, करमकल्ला, गाजर, प्याज, शलजम, अंडा, दूध, कलेजी, सिरी।

कम विटामिन बी वाले पदार्थ—कनादार चावल, भुजिया चावल, भांटा, आलू, अरुई, शकरकन्द, नींबू, केला, अंगूर, सन्तरा, पपीता, खजूर, तरबूज और मांस।

बहुत कम विटामिन बी वाले पदार्थ—मैदा, सफेद चावल, पशुवसा, मटर, गुड़, शहद।

विटामिन बी शून्य पदार्थ—सफेद चीनी, साबूदाना, धुला चावल और तेल।

बहुत देर तक खुले वर्तन में पकाने से यह विटामिन मर जाता है परन्तु प्रति दिन के रोटी, दाल आदि के पकाने में नहीं मरता। इसलिये यथासम्भव भोजन बन्द बर्तन और मामूली तेज आँच में पकाना चाहिये। इसी कारण कड़ाही के पकाये पदार्थ कम लाभदायक होते हैं।

विटामिन बी शून्य भोजन का अवगुण कम परिश्रम करने वालों में और भी वेग पकड़ते हैं। इसी लिये परिश्रमियों को विटामिन बी की कमी कम हानिकारक सिद्ध होती है।

पेट के रोगियों को अपने अन्य उपचारों के साथ साथ विटामिन बी का सेवन भी करना लाभदायक होता है। और यह आज कल टिकियों के रूप में विटामिन बी काम्प्लेक्स के रूप में भी मिलता है। ताजी ताड़ी में यह विटामिन बहुत अधिक होता है।

६—विटामिन सी

यह विटामिन ताजे फल, दूध, हरे शाक-तरकारी आदि में होता है परन्तु सूखे मेवे, अनाज, शाक आदि में नहीं। यह शरीर में जाकर यकृत (Liver) और रक्त में इकट्ठा होता है। इसी की उपस्थिति के कारण रक्त शुद्ध रहता है और अकारण ही रक्तनलिकाओं से बह नहीं निकलता। इसके अभाव से रक्त सम्बन्धी अनेक रोग हो जाते हैं। थोड़ी चोट में भी खून बन्द नहीं होता और घाव देर में अच्छे होते हैं। इनके अतिरिक्त यह आंतों को बल देने में विटामिन बी की सहायता करता है और संक्रामक रोगों के रोकने में विटामिन ए की सहायता करता है। इन्फ्लुयंजा आदि संक्रामक रोग ताजे फल, शाक खाने वालों में कम फैलते हैं और यदि फैलते भी हैं तो घातक नहीं होते। लड़ाई में घायलों को जिनके घाव अच्छे न होते थे ज्यों ही ताजे फल दिये जाने लगे वे चंगे होने लगे।

शरीर में इस विटमिन के अभाव के प्रथम चिन्ह निम्नलिखित हैं—चेहरे का रंग बिगड़ जाता है, सारे शरीर में झुर्रियाँ पड़ जाती हैं, खाल का रंग गन्दा हो जाता है, सारे शरीर में सुस्ती आ जाती है, खून की कमी हो जाती है, थोड़े परिश्रम से भी दम फूलने लगता है और थकान और आलस्य आ जाता है,

बल्कि शरीर हर समय आलसी बना रहता है, शरीर में लाल नीले चकत्ते पड़ जाते हैं, शरीर के जोड़ों में सूजन और पीड़ा आ जाती है जिसको लोग अक्सर गठिया मान लेते हैं, नन्हें नन्हें घाव भी भरने का नाम नहीं लेते और स्कर्वी (Scurvy) रोग हो जाता है जिसमें मसूढ़े पककर ख़ून और मवाद देने लगते हैं, मुँह से दुर्गन्धि आने लगती है, दाँत हिल जाते हैं, सिर में चक्कर आने लगता है और स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। बहुधा बच्चे इसके अभाव के कारण चिड़चिड़े हो जाते हैं। दाँतों में पायरिया रोग आहार में इसी विटामिन के अभाव से पैदा होता है। इसके अतिरिक्त डाक्टर फिडर्ल लिखते हैं कि हड्डी के भीतर का मांस कमज़ोर हो जाता है, जिससे शरीर में संक्रामक रोगों को रोकने की शक्ति नहीं रहती। डाक्टर कारलाउड लिखते हैं कि इसके अभाव में राजयक्ष्मा शीघ्र होता है, और डाक्टर मेक्कालम लिखते हैं कि मोतीझरा तथा अन्य संक्रामक रोग शीघ्र प्रभाव डालते हैं। जो बच्चे ऊपरी दूध पर रक्खे जाते हैं उनको फल और साग के रस देने से यह कमी पूरी हो जाती है।

पदार्थ जिनमें विटामिन सी बहुत अधिक होता है—
आँवला, ताज़ा कच्चा पालक, धनिया और करमकल्ले का शाक, टमाटर (डाल या पाल का पका), नींबू, सन्तरा, अँखुआदार चना।

पदार्थ जिनमें विटामिन सी अधिक होता है—
पत्तियाँ (कच्ची), शलजम के नरम पत्ते, कच्ची शकरकन्द, अँखुयेदार मटर और सेम, अनन्नास।

पदार्थ जिनमें यह विटामिन कम होता है—दूध, दही (हरी घास खाने वाले पशुओं के), उबाली तरकारियाँ जैसे करमकल्ला, प्याज, आलू, गोभी, शलजम, मूली, भिंडी, हरी मिर्च, कच्ची बड़ी गाजर, सरबूज, खरबूजा, सेब, केला, गन्ना, इमली, अमरूद, अनार, नाशपाती।

पदार्थ जिनमें यह विटामिन नहीं होता—मांस, अण्डा, समस्त अनाज, सूखे मेवे, फल, शर्करा, घी, तेल, टीन में बन्द बच्चों का दूध तथा अन्य डब्बों के खाने।

आँवले में यह विटामिन सब से ज्यादा होता है। उतने ही रस में आँवले में सन्तरे का २० गुना होता है। करम-कल्ले के रस में सन्तरे का दुगुना होता है। आँवले का विटामिन सी मामूली पकाने से या सुखाने से अधिक नहीं मरता। इस लिये यदि आँवले के छोटे छोटे टुकड़े काट कर घाम में सुखा कर रख लिये जायँ तो इसके विटामिन नहीं मरते। यह गुण केवल आँवले में होता है और किसी में नहीं।

कच्ची पालक में विटामिन ए और सी बहुत अधिक होते हैं और विटामिन बी, ए और सी की अपेक्षा कुछ कम होता है, फिर भी खमीर के दुगुने से लेकर तक तिगुने होता है। पालक को कड़ाही या खुली बटलुई में १० मिनट तक पाकने से इसके विटामिन ए और बी तो कम ही मरते हैं परन्तु विटामिन सी लगभग ६५% मर जाता है। क्योंकि आक्सीजन की उपस्थित में आँच पाने से

यह विटामिन जीवित नहीं रह सकता। इसी कारण धीमी आँच में देर तक पकाना ठीक नहीं होता। अँखुआदार चना भी २-३ मिनट से अधिक कभी न पकाया जाना चाहिये। टमाटर का यह विटामिन उसकी खटास के कारण अधिक आँच सह सकता है। परन्तु सोडा डालकर पकाने से यह तुरन्त मर जाता है।

प्रत्येक पदार्थ की प्रत्येक दिन की आवश्यकता निम्न लिखित तालिका से ज्ञात होगी :—

बड़े नींबू का रस ताज़ा	३० माशा
सन्तरे का रस ताज़ा	३० ,,
टमाटर का रस ताज़ा	४० ,,
टमाटर ५ मिनट का पका	१०० ,,
कागज़ी नींबू का रस	१०० ,,
पालक का रस (कच्चा)	२० माशा
१० मिनट का पका	बेकार
करमकल्ले का रस (कच्चा)	३० माशा
१ घन्टे का पका	३०० ,,
हरी मटर का रस (कच्चा)	४० ,,
२० मिनट का पका	१०० ,,

१०—विटामिन डी

यह विटामिन खाद्य पदार्थों पर सूर्य के प्रकाश के पड़ने से पैदा होता है। और आहार से खटिक और स्फुर खींचकर दाँत और हड्डी बनाता है। यदि खाने में यह विटामिन न हुआ तो चाहे खाने में कितना ही खटिक (चूना) या स्फुर (फास्फोरस) क्यों न हो वह शरीर में नहीं लगता और अनपचा ही निकल जाता है। परिणाम यह होता है कि दांत तथा हड्डी सम्बन्धी अनेक रोग हो जाते हैं। बच्चों के लिये इसका अभाव सयानों की अपेक्षा अधिक हानिकारक है क्योंकि यही अवस्था दाँत तथा हड्डी बनने की होती है। दांतों का देर में निकलना, कष्ट के साथ निकलना, बदरंग, बिखरे हुये, घने और एक दूसरे पर चढ़े हुए होना प्रकट करता है कि आहार में इस विटामिन की कमी थी। इसके अतिरिक्त इस विटामिन की कमी से हड्डी सम्बन्धी रोग भी हो जाते हैं जिनमें रिकेट मुख्य है। जिनमें रोग होने तक की नौबत नहीं आती उनमें चिड़चिड़ाहट, बेचैनी, सुस्ती, आँखों में हर समय झपकी, खेल के प्रति अरुचि, शरीर में रक्त की कमी और हाथों-पैरों के जोड़ों में सूजन और पीड़ा के चिन्ह दिखाई पड़ने लगते हैं, और कहीं कहीं कब्ज और पेट का बढ़ आना भी देखा गया है। बच्चों का देर में खड़ा हो पाना या

चलना, टाँग, कमर, रीढ़ की हड्डियों का टेढ़ा हो जाना, हड्डियों का माँस छोड़ कर पतली और लुचलुची हो जाना भी इसी के कारण होता है। रिकेट से बीमार होने के बाद बच्चों को कुकुरखंसिया, छोटी चेचक (measles) और जकड़ा बहुधा घातक सिद्ध होते हैं, और सयानी में राजयक्ष्मा होने की अधिक सम्भावना रहती है। सारांश यह कि इस विटामिन की कमी के कारण रोगी हुये बच्चों की सयानी दुर्दशा से बीतती है। सयानों को भी अक्सर हड्डी सम्बन्धी रोग हो जाते हैं, परन्तु उनको इतना भय नहीं रहता जितना बच्चों को।

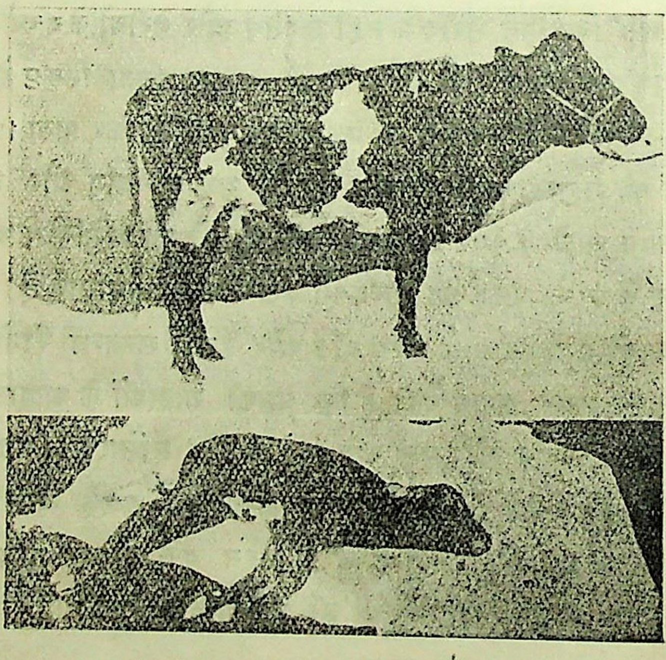
यह विटामिन सबसे अधिक मछली के तेल में होता है। उसके बाद दूध, क्रीम, मक्खन, घी, अंडा, कलेजी में होता है। इन पदार्थों को कुछ समय तक सूर्य के सामने रखने से इनमें यह विटामिन बढ़ जाता है। देर तक घाम लगने से काले तिल के तेल में भी यह विटामिन आ जाता है। घाम लगने से मनुष्य शरीर में भी यह विटामिन पैदा हो जाता है। इसलिये घाम में फिरने वाले बच्चे आप ही आप इस विटामिन को पाया करते हैं। इन्हीं कारणों से घाम में बैठालकर बच्चे के शरीर पर तेल मलना उनकी हड्डियों को पुष्ट करता है। और यही प्रथा निर्धन भारतवासियों के बच्चों को बहुत कुछ इस रोग से बचाती है। शाह और हचिन्सन महोदयों ने सन् १९२२ ई० में जिला नासिक (बम्बई) के २००० बच्चों की जाँच के बाद यह परिणाम निकाला है कि भारतवर्ष में रिकेट (Ricket) रोग अमीरों के बच्चों को तो इस कारण होता है कि (१)

माताएँ बहुधा मिठाई और पकवान अधिक खाती हैं (२) परदे में रहने के कारण भली भाँति घाम नहीं पातीं, अतः उनके दूध में यह विटामिन नहीं बन पाता (३) तीन-चार महीने तक बच्चों को बाहर का घाम नहीं मिलता और (४) जब ऊपर की चीजें दी जाने लगती हैं तो उनमें मिठाई अधिक होती है बल्कि दूध में भी बहुत अधिक चीनी दी जाती है। और चूँकि कर्बोज जब अधिक हो जाता है तो वसा तथा अन्य चिकनी चीज जैसे दूध के पाचन को कम कर देता है अतः उसके पौष्टिक अंश और विटामिन शरीर में नहीं लगते। और गरीबों के बच्चों को यह रोग इस कारण होता है कि उनका आहार इतना निकृष्ट होता है कि उसकी कमी को सूर्य का प्रकाश भी पूरा नहीं कर पाता। बड़े शहरों की गुञ्जान बस्ती गंदे और धुएँ से भरी हुई वायु और ऊँचे मकानों के नीचे के भाग में रहने वालों को तो यह असुविधा और अधिक है परन्तु फिर भी भारतवर्ष इस दृष्टि से भाग्यमान है।

बच्चों में रिकेट तथा अन्य दाँत और हड्डी सम्बन्धी रोगों के रोकने का सरल उपाय यही है कि उनकी माताओं के आहार में दूध, घी, हरे शाक और फल बढ़ा दिये जायँ। मांसाहारी मछली के तेल और अण्डे का उपयोग कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त माताएँ स्वयं और उनके बच्चे प्रतिदिन कुछ समय घाम में बैठें। दूध थान पर बँधे पशुओं की अपेक्षा बाहर घाम में चरने वाले पशुओं का खाया जाय।

११—विटामिन ई

इस विटामिन का प्रभाव सन्तानोत्पादन शक्ति पर पड़ता है। इस विटामिन की कमी से सन्तान उत्पन्न करने की शक्ति क्षीण हो जाती है और गर्भपात भी हो जाता है। अनाजों में यह सब से



विटामिन ए और ई की कमी के कारण यह मरा बच्चा पैदा हुआ।

अधिक गेहूँ में होता है और विशेष कर उसके "बीज" में अर्थात्

उस भाग में जहाँ से अँखुआ निकलता है। और चूंकि यह भाग बहुधा चोकर के साथ निकल जाता है इस लिये मैदा इस विटामिन से खाली होता है। इसके अतिरिक्त मांस, फल, मेवे और हरे शाकों में भी यह विटामिन अधिक होता है। इसी कारण माँस और शाकाहारियों के सन्तान अधिक होती है और केवल घी, मैदा खाने वालों के कम। दूध में यह मांस-शाक से कम होता है। और बजरे में गेहूँ से कम। घी, गरी के तेल तथा बिनौले के तेल में भी यह विटामिन पर्याप्त मात्रा में होता है।

विटामिन एच—यह विटामिन पानी में घुलन-शील है। यह साग और फलों में पाया जाता है। इस की कमी से सर में रूसी, गजांपन और चर्म रोग जिसमें खाल मोटी हो जाती है और छोटी-छोटी फुंसियाँ निकला करती हैं पैदा हो जाते हैं।

विटामिन के—यह विटामिन वसा में घुलन-शील है। यह पालक, करम-कल्ला, गोभी, टमाटर, आलू और गेहूँ के चोकर में पाया जाता है। यह खमीर में नहीं होता। यह खून के जमने के लिये जरूरी होता है। गर्भिणी तथा माताओं के लिये यह बहुत आवश्यक होता है।

विटामिन पी—यह लाल मिर्च में, नेबू के जाति के फलों में जैसे सन्तरा, अंगूर आदि में बहुत होता है, विशेष कर उनके छिलकों में। पशु पदार्थ जैसे दूध, मक्खन में यह नहीं होता। इससे रक्त शिराएँ मजबूत होती हैं।

१२—जल

जल मनुष्य शरीर के प्रत्येक भाग के प्रत्येक सेल का एक आवश्यक अंश है। इसकी अनुपस्थिति में उत्तम से उत्तम आहार बेकार जाता है। यह शरीर के भीतर के विषैले पदार्थों को जो अनपच आदि कारणों से तथा सेल्स के टूटने-फूटने से हर समय बना करते हैं मल, मूत्र, पसीना आदि मार्गों द्वारा बाहर निकालता है। यदि जल की मात्रा कम हुई तो यह विष मल-मूत्र द्वारा न निकल कर रक्त में मिल जाते हैं और अनेकों रोग पैदा करते हैं। यह शरीर के तापक्रम को भी समान रखता है और पाचन में दो प्रकार से सहायता देता हैं। प्रथम तो इसमें कुछ क्षार-लवण मिश्रित रहते हैं जो अम्ल को मारते और पाचन शुद्ध करते हैं और दूसरे, जैसा कि पहले प्रकरण में बतलाया जा चुका है, भोजन बिना जल के पाये रक्त में प्रवेश ही नहीं कर सकता। इनके अतिरिक्त स्नान द्वारा बाहरी उपयोग से शरीर में रक्त का दौरा तेज होकर रक्त शुद्ध हो जाता है, त्वचा के छिद्र खुल जाते हैं जिनसे रक्त का विष सरलता से निकल जाता है और सर्दी-जुकाम का प्रभाव नहीं पड़ता।

जो लोग पानी कम पीते हैं उनका रक्त गाढ़ा होता है। और उस के विकार भली प्रकार जल नहीं पाते। इससे उनका

पाचन बिगड़ जाता है और क़ब्ज हो जाता है। यूरिक एसिड शरीर से निकल नहीं पाता और गठिया और पथरी रोग हो जाते हैं।

जल की उपयोगिता समझने के लिये हम अपनी नालियों का उदाहरण लें। जितना ही पानी डाला जायगा वह साफ रहेगी नहीं तो बराबर गन्दगी जमा हुआ करेगी। सबेरे नेहार मुँह पानी पीकर जाने से पाखाना साफ होता है। मनुष्य को दिन में कम से कम २½-३ सेर पानी पीना चाहिये। इससे पाचन भी शुद्ध होता है और मूत्र तथा पसीने द्वारा रक्त-विकार बाहर निकल जाता है परन्तु पीने का जल शुद्ध होना चाहिये।

जल में तीन प्रकार की अशुद्धतयां होती हैं।

(१) अधिक निर्जीव पदार्थ अर्थात् खनिज लवण—थोड़ी मात्रा में लवण शरीरोपयोगी होते हैं परन्तु अधिक मात्रा में हानिकारक। यह आंतो को आवश्यकता से अधिक उत्तेजित कर उन में दुर्बलता लाते हैं, या यदि अनपच कण के रूप में हुये तो आंतों में रगड़ पैदा कर उन्हें घायल कर देते हैं और गुर्दे को हानि पहुँचाते हैं क्योंकि उन्हें निकालने में इन्हें अधिक परिश्रम करना पड़ता है। चूने की अधिकता के कारण कहीं-कहीं के जल में दाल नहीं पकती या साबुन झाग नहीं देता। ऐसे जल को 'कड़ा' जल कहते है। पहाड़ी जल बहुधा इसी कारण पाचन के लिये हानिकारक होता है। दुर्बल पाचन वालों को पहाड़ का पानी अनुकूल नहीं पड़ता।

(२) अधिक सजीव पदार्थ—जल जो धरती पर बहता है अपने साथ पशुओं तथा वनस्पतियों के सड़े-गले भाग बहाता जाता है और यह पदार्थ रोगों के कीटाणुओं के घर होते हैं। तालाब, नदी, नाले, गन्दे पास-पड़ोस के कम गहरे कुयें, खुले मुँह के कुयें, बावलियों आदि के जल जिनमें तरह-तरह की चीजें पड़ा और सड़ा करती हैं सजीव पदार्थों से भरे रहते हैं।

(३) हानिकारक कीटाणु—

अस्वच्छ जल पीने से हानि—विषूचिका (हैज़ा) मियादी बुखार, मोतीझरा ज्वर, अतिसार, आंव, मन्दाग्नि, पेट के कीड़े, घेघा, नहरुआ, त्वचा के रोग जैसे दाद, फोड़े-फुन्सी आदि अस्वच्छ जल ही के सेवन से होते हैं।

जल शुद्ध करने का सर्वोत्तम उपाय उसे कपड़े से छान कर पका लेना है। ५-७ मिनट उबालने से चूना तलछट बनकर पेंदी में जम जाता है और रोगों के कीटाणु मर जाते हैं। जल में एक कंकड़ी फिटकिरी डाल कर थोड़ी देर तक रख देने से उसकी बहुत कुछ गन्दगियाँ तलछट के रूप में जम जाती हैं। बालू और कोयले से छानने से भी बहुत कुछ सफाई हो जाती है परन्तु बिल्कुल नहीं।

इसकी विधि यह है। एक लकड़ी के ढांचे में तीन घड़े एक दूसरे के ऊपर ऐसे रक्खे जावें कि उनमें एक-एक बीता का अन्तर हो। ऊपर और नीचे का घड़ा खाली रखा जाय और बीच वाले में नीचे आधे में बालू और ऊपर आधे में

कोयला भर दिया जाय। अब ऊपर के दो घड़ों की पेंदी में छिद्र करके उसमें कपड़े या रुई की बतियाँ लगा दी जायँ जिसमें पानी टपक सके। तीसरे के मुँह पर एक मोटा साफ कपड़ा छन्ना के लिये लगा दिया जाय। अब ऊपर वाले घड़े में पानी भर दिया जाय। यह धीरे-धीरे बत्ती की सहायता से बीच के घड़े में आवेगा।। वहाँ अपनी गन्दगी कोयला और बालू में छोड़ता हुआ शुद्ध होकर नीचे के घड़े में आजावेगा।

वर्षा का पानी बड़ा शुद्ध होता है परन्तु शहरों और घनी बस्तियों में वायु में धूल के कणों के साथ उड़ने वाले कीटाणु इसमें आ जाते हैं। इसलिये सब से साफ जल ओले के पिघलने से मिलता है। गंगाजल संसार में सर्वोत्तम जल है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने भी परीक्षा के बाद अब इसे स्वीकार कर लिया है।

कुछ देर तक वायु और सूर्य के प्रकाश के संयोग से भी जल स्वच्छ हो जाता है क्योंकि वायु की आक्सीजन और सूर्य-प्रकाश दो बहुत बड़े कृमिनाशक साधन हैं। डाक्टर धर लिखते हैं—"कुछ घन्टे तक जल खुले घाम में रहने से इतना शुद्ध हो जाता है कि घाव धोने के काम में लाया जा सकता है"। इसी कारण बड़ी-बड़ी नदियों का जल कुछ दूर बहने के बाद शुद्ध हो जाया करता है। परन्तु बहुत गन्दे जल के लिये यह पूर्णतया सम्भव नहीं। बरसात में बड़ी नदियों का जल भी शुद्ध नहीं हो पाता। बँधे जल का नीचे का भाग स्वच्छ नहीं हो पाता और ऊपर का भाग जो स्वच्छ होता है फिर गन्दा हो जाता है।

साधारण स्वस्थ मनुष्य के लिये जल शीतल लाभकारी होता है। शीतल जल के स्पर्श से रक्त का दौरा उस विशेष स्थान के लिये होने लगता है। अतः ठंढा जल पीने से रक्त पेट की ओर जाता है और पाचन शुद्ध करता है। स्नान के लिये भी ठंढा जल उत्तम होता है। शरीर पर ठंढा जल पड़ने से त्वचा के सेल्स सिकुड़ने लगते हैं और वहाँ के रक्त को शरीर के अन्दर की रक्त-नालियों में फेंक देते हैं। परन्तु शरीर का गरम रक्त फिर उनको गरम कर के बढ़ा देता है और उनमें प्रवाहित होने लगता है। इसी से ठंढे पानी मे नहाने के तुरन्त ही बाद शरीर गरम हो जाता है। इस प्रकार की कसरत से शरीर के सेल्स अधिक बलवान् हो जाते हैं और एकत्रित अत: दूषित रक्त भी बाहर आकर शुद्ध हो जाता है।

एक बात और भी देखी जाती है। नहाने का पानी जितना ही अधिक ठंढा होता है शरीर से उतनी ही अधिक गरमा भी निकलती है। कारण यह है कि जितना ही ठंढा जल होगा उतना ही अधिक सेल्स सिकुड़ेगे, और उतनी ही तेजी से रक्त ने दौरा होगा और परिणाम-स्वरूप उतना ही अधिक रक्त में औषदी-करण होगा, अर्थात् उपस्थित प्रोटीन, कर्बोज और बसा जलेंगे। इसी लिये शरीर को अधिक आहार पदार्थों की आवश्यकता पड़ेगी। देखा भी जाता है कि जाड़े में भूख बढ़ जाती है, नहाने के पश्चात शीघ्र भूख लगती है, और जाड़े में कुछ सर्दी खाने वाले अधिक कपड़े से लदे रहने वालों की अपेक्षा अधिक भोजन कर

सकते हैं और अधिक घी, तेल पचा सकते हैं। बल्कि उन्हें अधिक घी-तेल खाना चाहिये। सर्दी हानि तभी पहुँचाती है जब भोजन द्वारा प्राप्त उष्णता से वह बढ़ जाती है। अथवा एकाएक सेल्स के बरदाश्त से अधिक लग जाती है। इसीलिये नहाने में साधारण स्वस्थ मनुष्यों को निम्न लिखित नियमों का पालन करना चाहिये।

१—जल पहले सर पर डाले, फिर शरीर भिगोवे।

२—शरीर की गर्मी से कुछ अधिक ठंढे जल से स्नान करे।

३—नहाते समय शरीर को हाथ से तथा मोटी तौलिया से इतना रगेड़ की शरीर कुछ लाल हो जाय अर्थात् रक्त का दौरा ऊपर की ओर पूर्ण रीति से होने लगे।

४—नहाने के बाद शरीर पोंछे भी इतना ही कस कर कि शरीर लाल हो जाय।

५—भोजन के बाद तुरन्त न नहाना चाहिये क्योंकि जो रक्त भोजन पचाने के लिये आमाशय में गया है वह दौड़ कर बाहर आ जाता है। इससे भोजन पचने में बाधा पड़ती है और कालान्तर में मन्दाग्नि रोग हो जाता है।

६—पहले शरीर की गरमी से कुछ अधिक गरम पानी से जिससे कुछ नमक मिला हो पूर्वोक्ति रीति से नहा कर फिर मामूली—अधिक नहीं—ठंढे जल से नहाने से अधिक लाभ होता है। इस उपचार से थकान तुरन्त दूर हो जाती है।

७—जाड़ों में बन्द स्थान में नहाना अच्छा होता है। इससे

सर्दी लगने की सम्भावना नहीं रहती। नहाने के बाद थोड़ा व्यायाम के रूप में हाथ पैर चला लेने से शरीर में गर्मी आ जाती है और सर्दी लगने का डर नहीं रहता।

आज कल यह गलत धारणा फैली हुई है कि नहाने से सर्दी-जुकाम हो जाता है। प्रति दिन ठंढे जल से नहाने वालों को सर्दी मुश्किल से होती है। वास्तव में सर्दी पहले सिर न धोकर शरीर पर पानी डालने से, खुली हवा में अथवा नहाने के पश्चात् शरीर भली प्रकार न पोंछने से होती है। क्योंकि हवा लगने से आवश्यकता से अधिक गर्मी निकल जाती है और सेल्स बरदाश्त से अधिक सर्दी खा जाते हैं।

सवेरे बासी मुँह लगभग ½ सेर साधारण अथवा गुनगुना जल पीकर शौच जाने से क़ब्ज़ नहीं रहता। कुछ लोग तक चुटकी सेंधा नमक डाल कर जल पीते हैं। परन्तु बाज़ों को इस से मतली मालूम होती है। जल पीकर लेटे रहना या बैठे रहना चाहिये। चलने से जल मूत्राशय की ओर चला जाता है। कमजोर आदमियों के पानी उतर आने का रोग भी हो जाता है। दुर्बल पाचन या मन्दाग्नि के रोगियों को ठंढा पानी न पीना चाहिये। गर्मियों में ताजा जल पीने में हर्ज नहीं।

दिन में भी बहुत ठंढा जल ऐसों के पाचन को कमजोर करता है। बरफ का उपयोग विशेष कर हानिकारक है।

१३—वायु

वायु के मुख्य दो भाग हैं। एक औषजन (आक्सीजन) और दूसरा नत्रजन (नाइट्रोजन)। परन्तु इनमें आक्सीजन ही मनुष्य जीवन के लिये आवश्यक है। इसीलिये हम उसी के सम्बन्ध में यहाँ लिखेंगे।

आक्सीजन एक बड़ी तेज गैस है और इसका यह विशेष गुण है कि बहुत से पदार्थों से यह मिल जाया करती है, जैसे लोहे से मिलकर यह उसे मुर्चे के रूप में बदल देती है। इसी प्रकार यह कार्बन से भी मिल जाती है और कार्बोनिक एसिड गैस बना देती है। इस कार्बन से मिलने की क्रिया को जलना या औषदीकरण भी कहते हैं। जैसे कोयला के जलने से जो मुख्यतः कार्बन हैं धुयें के साथ कार्बोनिक एसिड गैस और भाप निकल जाती है और शेष पदार्थ राख के रूप में रह जाते हैं। परन्तु इस क्रिया में मुर्चा लगने की अपेक्षा अधिक तेजी होती है और उष्णता भी निकलती है। यहाँ एक बात और देखने की है। यदि उन जलते कोयलों को किसी वर्तन में बन्द कर दिया जाय तो वे बुझ जाते हैं क्योंकि जब उस वर्तन के भीतर की आक्सीजन समाप्त हो जाती है तो यह औषदीकरण की क्रिया भी रुक जाती है। इससे यह भी स्पष्ट हो जायगा कि बिना

आक्सीजन के औषदीकरण अर्थात् जलने का काम नहीं हो सकता। इसीलिये उष्णता भी नहीं निकल सकती है।

मनुष्य शरीर में भी आक्सीजन की उपयोगिता इसके इसी गुण के कारण है और वह इस प्रकार: मनुष्य शरीर में रुधिर हर समय दौड़ा करता है। पहले यह हृदय से बाईं ओर को संचालित होकर शरीर की धमनियों और सूक्ष्म केशिकाओं द्वारा सारे शरीर के भ्रमण के लिये चलता है। उस समय इसका रंग लाल और चमकदार रहता है। मार्ग में इसे दो प्रकार के नये पदार्थ मिला करते हैं। एक तो शरीर के भीतर के टूटे-फूटे सेल्स का विषैला भाग जो शरीर में निरन्तर काम होते रहने के कारण बराबर निकलता रहता है, और जिसमें कार्बन प्रधान रहता है। और दूसरे आहार द्वारा प्राप्त प्रोटीन, कर्बोज और चिकनाई जो आँतों के मार्ग से रक्त में आते हैं—क्योंकि आँतों का काम केवल खाद्य पदार्थों से इन पदार्थों को खींचकर रक्त मे पहुँचा देना है। परन्तु इन्हें उपयोगी रूप देकर इनसे शरीर बनाने का काम लेना रक्त के सिपुर्द रहता है। इन पदार्थों में भी कार्बन ही प्रधान रहता है।

अब इन दोनों प्रकार के पदार्थों से लदा हुआ रक्त जिसका रंग अब बदरंग—नीला, काला, फीका—हो जाता है घूम कर दाहनी ओर से फिर हृदय में पहुँचता है और हृदय इसको फेफड़े में फेंक देता है। वहाँ स्वाँस द्वारा गई हुई वायु की आक्सीजन इन पदार्थों से मिलकर इनको जला देती और रक्त को शुद्ध—

लाल, चमकदार—कर देती है। इस औषदीकरण में रक्त का समस्त अनावश्यक और वषैला भाग जिसमें कार्बन प्रधान रहता है जलकर कार्बोनिक एसिड गैस और भाप के रूप में साँस द्वारा बाहर निकल जाता और केवल उपयोगी भाग रह जाता है। जैसे प्रोटीन शुद्ध होकर मनुष्य के शरीरोपयोगी रूप में बदल जाता है, कर्बोज और वसा पूर्णतया जल जाते हैं और टूटे-फूटे सेलों का विष भी जल जाता है। इस क्रिया से जो उष्णता छूटती है वह शरीर को शक्ति देने के काम में आती है। अब यह शुद्ध रक्त फिर शरीरोपयोगी पदार्थों से लदा हुआ बांईं ओर को चलता है और समस्त शरीर में बराबर टूटे-फूटे सेलों के मरम्मत का और नये सेलों के बनने का मसाला पहुँचाता हुआ और गन्दगियों को साथ लेता हुआ हृदय को लौटता है, और फिर फेफड़े में शुद्ध होता है।

रक्त जब फेफड़े में पहुँचता है तब केवल रक्त की सफाई ही नहीं होती और कार्बोनिक एसिड गैसें और भाप ही नहीं निकलती वरन् कुछ फाजिल आक्सीजन रक्त के लाल अणुओं के साथ अन्दर के रेशे-रेशे में जहाँ-जहाँ रक्त जाता है जा पहुँचती है और रक्त के पुराने सेल्स की मरम्मत में और नये सेल बनने में सहायता करती है, रोगों के कीटाणुओं को जो शरीर में पहुँच जाते हैं मारती है, और जगह-जगह एकत्रित विकृत पदार्थों को जलाकर रक्त के साथ बहा देती है जो कार्बोनिक एसिड गैस और भाप के रूप में फेफड़े द्वारा निकल जाते हैं। वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि फेफड़े की अपेक्षा कई गुना अधिक उपयोगिता आक्सीजन

की शरीर के भीतर ही है। बल्कि यदि यह फाजिल आक्सीजन न जाय तो रेशे और मांसपेशियों का सारा व्यापार रुक जाय, खाद्य पदार्थों का औषदीकरण रुक जाय, रोग के कीटाणु न मर सकें, शरीर के अन्दर सड़न पैदा हो जाय और कार्बोनिक एसिड गैस बाहर न निकल पाकर मनुष्य की मृत्यु ला दे। रक्त की अशुद्धता दूर करने और पुराने सेलों की मरम्मत के काम के बाद जो आक्सीजन बचती है वह नया शरीर बनाने का काम करती है। इसीलिये जितना ही अधिक आक्सीजन शरीर में जावेगा उतना ही अधिक शरीर बढ़ेगा—परन्तु न तो अथाह आक्सीजन जा सकती है और न उतना शरीर बढ़ सकता है, क्यों कि शरीर की बाढ़ की हद किसी हद तक प्राकृतिक नियमों के आधीन रहती है।

इसके अतिरिक्त शुद्ध और आक्सीजन-युक्त रक्त का प्रभाव हमारे पाचनशक्ति पर भी बड़ा महत्त्वपूर्ण है। एक तो पाचनेन्द्रिय में बराबर शुद्ध रक्त पहुँचते रहने से वह इन्द्रि पूर्णयता स्वस्थ और बलवान् रहती है और अपना काम भली प्रकार कर सकती है, दूसरे फाजिल आक्सीजन इस इन्द्रि को भोजन को पचा कर रुधिर में आने योग्य बनाने में सहायता देती है और यदि किसी प्रकार विकृत पदार्थ घुस आता है तो उसे वहीं जला देती है जिस से रुधिर अधिक विषैला नहीं हो पाता। यदि रक्त में क्षार अधिक हुआ तो यह जलने की क्रिया अर्थात् रक्त का औषदीकरण अधिक तेजी से होता है, सूर्य-प्रकाश में यह क्रिया पूर्ण रूप से हो जाती है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट हो गया होगा कि इस शरीर का सारा व्यापार स्वांस द्वारा प्राप्त आक्सीजन की मात्रा ही पर निर्भर है। यदि यह मात्रा कम हुई तो रक्त पूर्णतया शुद्ध तक नहीं हो पाता फाजिल कहाँ से जाय और परिणाम-स्वरूप शरीर में जो भी रोग न हो जाय वह थोड़ा है। इसीलिये प्रत्येक रोगी के चाहे वह राजयक्ष्मा का हो या दमा का, जहरबात का हो या गठिया का, मधुमेह का हो या मान्दाग्नि का, अतिसार का हो या शूल का, पहले यह समझ लेना चाहिये कि मेरे रक्त में अशुद्धता है। अतः उसको शुद्ध वायु की मात्रा बढ़ा देना चाहिये।

वायु की अशुद्धताएँ मुख्यतः ३ प्रकार की होती हैं—(१) हानि कारक वाष्प जैसे कर्बोनिक एसिड गैस तथा अन्य कार्बन, गन्धक नौसादर आदि के वाष्प, (२) हवा में उड़ने वाले कण—धूल के हों तथा अन्य पदार्थों के और (३) बेक्टीरियाँ अर्थात् वह कीटाणु जो सब चीजों के सड़ने-गलने, तथा मनुष्य, पशु और वनस्पतियों से बराबर निकला करते हैं। अतः शुद्ध वायु के लिये खुले और स्वच्छ स्थानों में जाना चाहिये, घनी आबादी तथा गन्दे स्थानों में नहीं। भीड़ में तथा बन्द स्थानों में जहाँ आग जलती हो कार्बोनिक ऐसिड गैस बहुत बढ़ जाती है। एक लालटेन से उतनी ही कार्बोनिक ऐसिड गैस निकलती है जितनी एक मनुष्य की स्वांस से। पत्थर के कोयले से यह गैस बहुत ज्यादा निकलती है। अधजली चीज से निकली गैस या बन्द कमरे में यह गैस इस से भी ज्यादा जहरीले रूप मे बदल जाती है। इसीलिये बन्द कमरों में लालटेन या आग जलाकर कभी न सोना चाहिये। इस भूल के कारण अक्सर

मृत्यु हो गई है। लकड़ी बुझाने या किसी भी अधजली चीज के धुयें को साँस के साथ अन्दर नहीं जाने देना चाहिये।

हवा में पानी की भाप अधिक होने से उसकी जलाने की शक्ति घट जाती है। साँस के साथ अन्दर जाकर वह रक्त में औषदीकरण उतना नहीं कर सकती इसी से बरसात में स्वाँस तथा पाचन के रोग वेग पकड़ते हैं।

प्राणायाम शरीर के भीतर आक्सीजन की मात्रा अधिक पहुँचने का सर्वोत्तम उपाय है। क्योंकि इससे फेफड़े में प्रत्येक स्वांस के साथ अधिक आक्सीजन खींचने की शक्ति आ जाती है। बल्कि साथ-साथ यकृत और आँतों का भी व्यायाम होता है जो उनकी शक्ति को उन्नति देता है। परन्तु आज कल इसका प्रचार कम हो गया है। क्योंकि कुछ ऐसी धारणायें फैल गई हैं कि यह बड़ा ही कठिन और कहीं-कहीं बड़ा हानिकारक सिद्ध हुआ है। किसी अंश में यह धारणायें ठीक हैं। प्राणायम में स्वांस अन्दर रोकने का प्रयत्न बिना किसी गुरू की मदद के नहीं करना चाहिये। रोकते समय गर्दन ऊँची नीची हो जाने से मस्तिष्क को हानि पहुँचती है। स्वाँस भीतर खींचने और बाहर निकालने से विशेष हानि की सम्भवना नहीं रहती*।

*इस विषय की सर्वश्रेष्ठ पुस्तकें जिनकी सहायता से मेरी समझ में कोई भी साधारण शिक्षा का मनुष्य बिना किसी गुरू के प्राणायाम सीख सकता है, स्वामी कवल्यानन्द, लोना वाला, पूना, वम्बई को अंग्रेजी पुस्तक "प्राणायाम" और योगी रामचारक की हिन्दी पुस्तक "प्राणायाम अर्थात् स्वासविज्ञान" हैं।

वायु के शीतल होने से उसकी उपयोगिता दुगनी हो जाती है क्योंकि ठंढक लगने से फेफड़े के सेल्स सिकुड़कर रक्त भीतर फेंक देते हैं। परन्तु तुरन्त ही भीतर से गरम और स्वच्छ रक्त दौड़ कर वहाँ आ जाता है और फिर उन सेल्स को पहले के समान बढ़ा देता है।❀ फेफड़े के अतिरिक्त शरीर के अन्य जिस किसी भाग से शीतल वायु का स्पर्श होता है, वहाँ के सेल्स रक्त की तेजी के कारण अधिक वेग से क्रिया करने लगते हैं और परिणाम-स्वरूप रक्त का दौरा बढ़ जाता है, शरीर गरम हो जाता है, रक्त के अन्दर के विषैले पदार्थों का औषदीकरण शीघ्रता से होने लगता है, सेल्स मजबूत हो जाते हैं, शरीर में शक्ति और फुरती आ जाती है, पाचन शक्ति बढ़ जाती है और इस प्रकार स्वास्थ्य उन्नत कर जाता है। ठंढे देशों के रहने वालों के अधिक परिश्रमी और स्वस्थ होने का एक कारण यह भी है।

अधिक कपड़े पहनना या हर समय बन्द कमरों या बन्द स्थानों में रहना हानिकारक है। इससे शरीर में सर्दी न लग पाने के कारण रक्त का औषदीकरण रुक जाता है। अतः भूख और शरीर की बाढ़ रुक जाती है, शरीर अधिक आलसी और निरुत्साही बन जाता है और पाचन-शक्ति भी दुर्बल हो जाती है।

❀यही सिद्धान्त है कि ठंडी पट्टी-बरफ की हो, पिनोर मिट्टी की हो या केवल भीगे कपड़े की, स्थानीय कष्ट के लिये बड़ी उपयोगी होती है।

बच्चों के सम्बन्ध में इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिये। उन्हें अधिक वस्त्र पहना कर सुलाना इसी कारण हानिकारक होता है। बहुधा गरीब लोग अमीरों की अपेक्षा अधिक सहन-शक्ति रखते हैं और सर्दी-गर्मी का कम असर मानते हैं। इसका भी यही कारण है।

डाक्टर न्योनार्ड साहब लिखते हैं—"आरम्भ ही से उत्तम भोजन पाने वाले और प्रति दिन खुली वायु में रहने, घास खाने और हल्का कपड़ा पहनने वाले बच्चे जो खूब खेल-कूद मचाते हों तगड़े और पुष्ट हाड़-मांस वाले होते हैं और पेटन्ट दवाइयों के विज्ञापनों के बच्चों के मोटे चित्रों से सर्वथा भिन्न होते हैं।...बच्चे कोमल नहीं होते बल्कि वे सर्दी गर्मी वैसे ही सह सकते हैं जैसे सुअरबाड़ा में सुअर के बच्चे, जो अपने शरीर का कुछ भाग अपने साथियों और अपनी माताओं के बगल में दुबककर सर्दी से बचा लेते हैं परन्तु अधिकांश भाग में सर्दी खाया करते हैं।...खुली वायु के जीवन के लाभ अधिक कपड़े पहनने से नष्ट हो जाते हैं।...... बन्द कमरों और गरम वायु में रहने और खुली वायु में व्यायाम के अभाव से जीवन की अग्नि धीमी हो जाती है और शरीर पीला और शिथिल हो जाता है। एक बढ़ते हुये बच्चे के रक्त के औषदीकरण को उत्तेजित करने की आवश्यकता है, स्कूलों के बन्द कमरों में या अधिक समय तक बैठाल रखने की नहीं।... ...वस्त्र इतना हल्का होना चाहिये कि शरीर सर्दी से नीला न हो जाय या काँप न उठे। साधारण सर्दी मेहनत करके दूर कर लेना

चाहिये। परन्तु एक साथ बहुत देर तक परिश्रम करने की अपेक्षा थोड़ी-थोड़ी देर में दुहराते जाना अधिक उत्तम होगा। मगर ध्यान है कि आहार द्वारा प्राप्त उष्णता से अधिक व्यय होने के कारण शरीर क्षीण न होने लगे। एक दो दिन के थोड़ा अधिक परिश्रम से कोई हर्ज नहीं। परन्तु साप्ताहिक औसत पूरा रहना चाहिये। और कुछ दिनों में स्वभाव ही ऐसा हो जाता है कि शीत असर नहीं करती और मनुष्य पुरुषार्थी हो जाता है।"

कुछ लोगों में यह गलत धारणा फैली हुई है कि नहाने, ठंडी वायु सेवन करने और कम वस्त्र पहनने से सर्दी जुकाम, खांसी हो जाती है। वास्तव में सर्दी और इन रोगों के सम्बन्ध इस प्रकार है—जैसे जब गरम चिमनी पर पानी पड़ जाता है अथवा एकाएक लव तेज कर दी जाती है तब वह टूट जाती है। इसी प्रकार जब गरम शरीर से एकाएक तेज सर्दी लग जाती है अथवा ठंढे शरीर में तेज गर्मी का प्रभाव पड़ता है तो शरीर के सेल्स को हानि पहुँचती है और वे अपने काम के अयोग्य हो जाते हैं। अगर उसके बरदाश्त से ज्यादा गरमी या सर्दी पड़ गई तब भी यही दशा हो जाती है। सर्दी-गर्मी खुद हानिकारक नहीं है। गर्मी में भी सर्दी लग जाया करती है और जाड़े में भी अक्सर लोगों को जुकाम नहीं होता। ठंढे देश वालों को गरम देश अनुकूल नहीं पड़ता और गरम वालों का ठंढा कष्ट देता है। सिद्धान्त यही है। गरम स्थान से तुरन्त ठंढी वायु में आ जाना अथवा ठंढे जल से स्नान कर डालना, कड़ी परिश्रम के बाद तथा सोकर उठने के बाद

तुरन्त ठंढा जल पी लेना इसी लिये हानिकारक सिद्ध होता है।

डाक्टर लियोवर्ड अपने प्रयोगों और अनुभवों के आधार पर लिखते हैं—"प्रतिदिन ठंडी वायु का सेवन करने वाले बहुधा सर्दी जुकाम से बचे रहते हैं।" परन्तु यदि देर तक सर्दी में रहना हो तो परिश्रम तथा अन्य उपायों से शरीर को गरम करते रहना चाहिये। और शिर की अपेक्षा शरीर और पैर अधिक गरम रखना चाहिये क्योंकि पैर की सरदी अधिक हानि पहुँचाती है। बहुधा बच्चों को सर्दी लगने का कारण यह होता है कि सर तो गरम रक्खा जाता है परन्तु पैर में सर्दी लगा करती है।

आज कल नवयुवकों मे सर्दी-जुकाम-खाँसी का रोग जो बढ़ रहा है उसका कारण डाक्टरों की राय में यह है कि उनका भोजन असतुलित होता है जिसमें मख्यतः घी, दूध, का अभाव रहता है। सिनिमा आदि बन्द जगहों में अधिक बैठते हैं। बरफ, चाय, सिग्रेट की अधिकता होती है। और जरूत से कम कपड़े पहनने का रिवाज सा हो रहा है।

आक्सीजन से पूरा लाभ उठाने के लिये तीन और चीजों की आवश्यकता है (१) सूर्य-प्रकाश (२) जल और (३) क्षार। सूर्य-प्रकाश के सम्बन्ध में आगे लिखा जायगा। जल से रक्त में तरलता आती है अतः रक्त में दौरा भी अधिक होता है और उसके अधिक से अधिक भाग का आक्सीजन से स्पर्श हो सकता है। क्षार की उपस्थिति में भी आक्सीजन अपना काम अधिक

करती है। जिनका रक्त अम्ल प्रधान होगा उनके रक्त में ओषदीकरण की कमी के कारण अनेक रोग हो जाते हैं।

आक्सीजन की उपयोगिता मस्तिष्क के लिये अलग से लिखने की कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती। फेफड़े में साथ होकर और आक्सीजन से लदकर रक्त एक मार्ग से नीचे शरीर में जाता है और दूसरे मार्ग से मस्तिष्क में जाता है। और जो काम शरीर के नीचे के भाग में करता है वही काम मस्तिष्क में भी करता है। इसी से जिनके शरीर में आक्सीजन अधिक जाता है उनका मस्तिष्क भी प्रत्येक दृष्टि से उन्नति करता है। खिलाड़ी लड़के की बुद्धि कुशाग्र होती है इस का कारण यही है।

अक्सर यह भी देखा जाता है कि कुछ लोगों में यह भ्रामक विचार फैले हुये हैं कि शुद्ध वायु मिले चाहे भोजन खराब हो परन्तु यह भूल है। यदि केवल वायु ही के कारण उत्तम स्वास्थ्य रह पाता तो अमरीका और इङ्गलैण्ड में रोग होने ही न चाहिये थे। प्राचीन काल की अपेक्षा उसी जल-वायु रखने वाले भारतवर्ष में कैसे-कैसे रोग और रोगी देखने में आते हैं इसका कारण त्रुटिपूर्ण आहार है। अतः जहाँ शुद्ध वायु-सेवन की ओर ध्यान रहे वहाँ यह भी ध्यान रहे कि उत्तम भोजन में त्रुटि न होने पावे।

१४—सूर्य-प्रकाश

सूर्य भगवान् ही संसार के प्राण-शक्ति के केन्द्र हैं। सूर्य ही से समस्त वनस्पति तथा पशु जगत अपना जीवन ग्रहण करता है। यह प्रत्येक पाठक को अनुभव होगा कि अन्धकार में उगे पौधे पीले पड़ जाते हैं, उनकी बाढ़ रुक जाती है और थोड़े ही समय में नष्ट हो जाते हैं। कारण यह है कि वनस्पतियों में हरा रंग वायु की उपस्थिति में सूर्य के प्रकाश ही द्वारा पैदा होता है और यही हरा रंग उनके बाढ़ का भी कारण है। सूर्य के प्रकाश ही की सहायता से ये अपनी जड़ों और पत्तों द्वारा प्रकृति से कुछ तत्व खींचकर अपने अन्दर प्रोटीन, कर्बोज और वसा बनाते हैं और जड़ द्वारा पृथ्वी से लवण खींचते और अपने अपने अन्दर इकट्ठा करते हैं। इसी के कारण उनमें विटामिन भी पैदा हो जाते हैं।

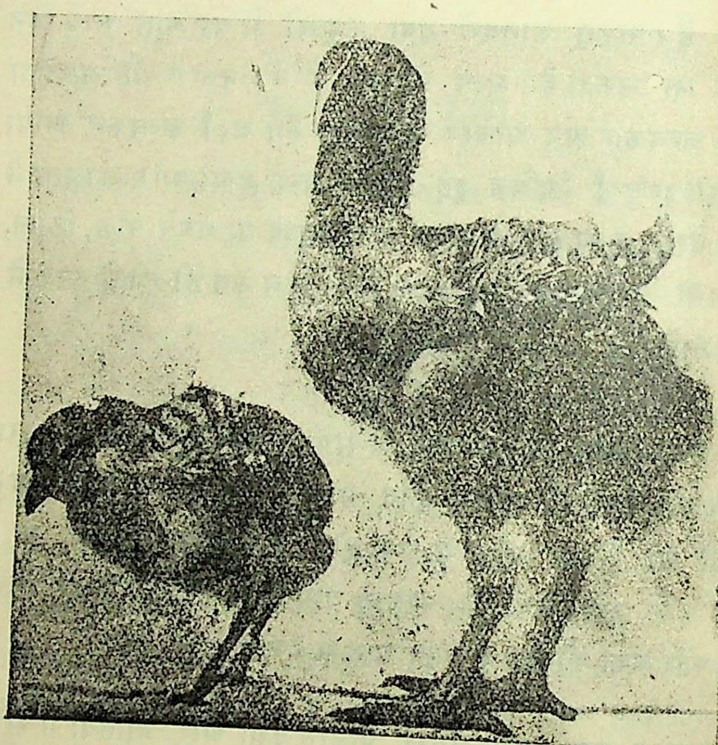
मनुष्य अपने शरीरोपयोगी तत्वों के लिये इन्हीं वनस्पतियों पर या इनके खाने वाले पशुओं के दूध और मांस पर निर्भर है और इस प्रकार सूर्य भगवान पर उसके जीवन का भी आधार है। परन्तु इतना उसके लिये काफ़ी नहीं। इसी लिये मनुष्य में प्रकाश की ओर प्राकृतिक प्रेम है। बच्चा अन्धकार से डरता है

और प्रकाश में दौड़-दौड़ कर किलोलें करता है। पशु-पक्षी भी सदा प्रकाश की ओर दौड़ते हैं और घाम ही में बैठकर आराम करते हैं। पालतू जानवरों तथा कबूतरों में यह बात आये दिन देखी जा सकती है। सत्य तो यह है कि प्रकाश और प्रसन्नता और अन्धकार और आलस्य का साथ है। जहाँ अन्धकार आया हमारी इन्द्रियाँ शिथिल हुईं, दिमाग मन्द हुआ और आलस्य ने आ घेरा। अन्धकार में रहने वाले मनुष्य या बच्चे पीले, ठिगने, आलसी तथा नाना प्रकार के रोगों से ग्रसित हो छोटी आयु में मर जाते हैं।

प्रचीन काल में भारतवर्ष में सूर्य भगवान की शक्ति का पूरा ज्ञान था। इसीलिये सूर्य को देवता माना जाता था। सूर्य की पूजा होती थी जिसमें घाम में खड़े होकर जल देना आवश्यक था। रोगों में तथा रोगों के पश्चात् घाम खाने की सलाह दी जाती थी और बच्चों को तेल लगाकर घाम में रक्खा जाता था।

भारत क्या अन्य समस्त प्राचीन देशों और जातियों में सूर्य का बड़ा आदर था। यूनान, मिश्र, चीन आदि देशों में सूर्य का वैसा ही आदर था जैसा भारत में, बल्कि इसके प्रतिकूल इङ्गलैण्ड जैसे नवीन् जातियों में निरादर था, इङ्गलैण्ड में तो सन् १८५१ तक खिड़कियों पर टैक्स लगता था। परन्तु जब प्रकाश की उपयोगिता का कुछ अनुभव हुआ तब यह कर हटा लिया गया।

सूर्य-प्रकाश से घाव पुराने में भी बड़ी सहायता मिलती है। कुछ तो इसका कारण इसका कीटाणुनाशक गुण है जिसके



		६ बाईं	दाहनी
प्रारम्भिक	तौल १६ जून '२३	३५ माशा	३८ माशा
	तौल १० जूलाई '२३	७७ ,,	६५ ,,

१२ जूलाई से भोजन तो दोनों का पुराना ही रहा, परन्तु दाहने बच्चे को आध घन्टा घाम भी मिलने लगा।

तौल ८ अगस्त '२३ (२८ दिन बाद)	६५ माशा	२३७ माशा

(Prof E. B. Hart, Wis Agr Exp st..)

सूर्य की किरणें तीन प्रकार की होती हैं—साधारण, परालाल (infra-red) और पराकासनी (ultra-violet), इनमें भी प्रथम में ७ रंग की किरणें होती हैं अर्थात् नीली, कासनी, आसमानी, हरी, पीली, नारंगी, और लाल। दृश्य प्रकाश के किरणचित्र में यह सातों रंग दिखाई पड़ते हैं। परन्तु परालाल और पराकासनी के देखने के लिये विशेष उपाय करना पड़ता है। साधारणतया वे दिखाई नहीं पड़तीं।

इन तीनों प्रकार की किरणों में से प्रकाश और ताप तो साधारण किरणों से आता है परन्तु रासायनिक और चमत्कारी गुण जिनके बदौलत घाम की इतनी उपयोगिता है पराकासनी में होते हैं।

सूर्य की किरणें बड़ी ही कृमि-नाशक होती हैं। इनके सामने कुछ मिनटों ही में राजयक्ष्मा, मोतीझरा, हैजा आदि जैसे भयंकर रोगों के भी कृमि मर जाते हैं।

रक्त में लाल अणुओं को लगभग ड्योढ़े और श्वेत अणुओं को लगभग तिगुने कर देती हैं। यह हम जानते हैं कि लाल अणु ही शरीर बनाने का काम करते हैं और श्वेत, रोगों के विरोध का काम करते हैं। अतः घाम में रहने वाले विटामिन ए के अभाव में भी बहुत कुछ साधारण तथा संक्रामक रोगों का सामना सफलता पूर्वक कर सकते हैं। बल्कि उनकी आयु भी कुछ बढ़ जाती है। शरीर की बाढ़ के कितनी उन्नति होती है इसका अनुमान नीचे के चित्र से हो सकता है।

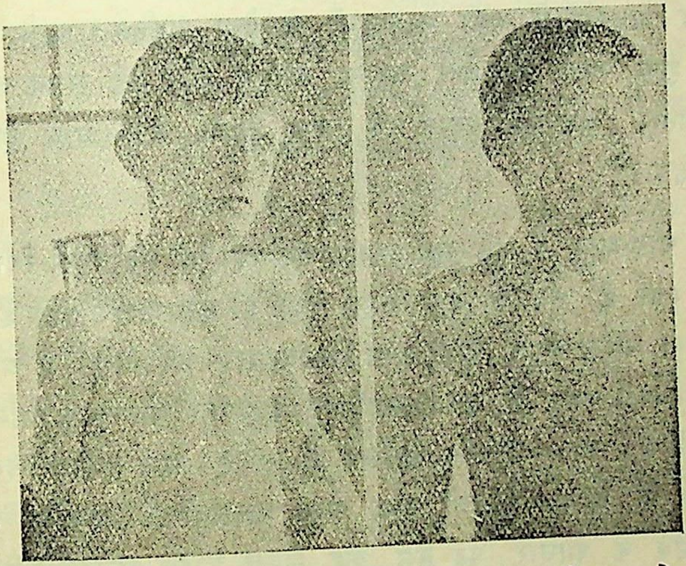
कारण घावों के ऊपर के कीटाणु मर जाते हैं, और कुछ इसका रक्तशोधक गुण है जिसके कारण रोग-नाशक श्वेत अणु और मांसवर्धक लाल अणु अधिक मात्रा में बनकर ऊपर की ओर आकर घाव भरने में सहायता देते हैं। भारतवर्ष में तो यह चिकित्सा प्रचलित थी ही पिछली यूरोपीय महायुद्ध के समय में बड़े-बड़े घाव केवल सूर्य-प्रकाश ही की सहायता से अच्छे कर लिये गये, बल्कि पैलेग्रा (Pellagra) और ल्युपस (Lupus) जैसे भयंकर चर्म रोग जो एक प्रकार के कोढ़ होते हैं, और रिकेट, बेरीबेरी और रक्तहीनता भी अच्छे कर लिये गये हैं। परन्तु जिन रोगों में रक्त-प्रवाह होता हो जैसे स्कर्वी, राजयक्ष्मा, जिसमें कफ से रक्त आता हो सीधा (direct) तेज घाम हानिकारक है क्योंकि यह रक्त में बहाव बढ़ाकर रक्त अधिक निकालता है। घाम में रक्खा तेल घावों पर अथवा शरीर की पीड़ा में लगाना पुरानी प्रथा है।

सूर्य-प्रकाश का प्रभाव त्वचा पर बहुत पड़ता है इसी से चेचक, अपरस आदि रोग घाम में रहने वालों के शरीर में बहुत कम और कम वेग से निकलते हैं।

डाक्टर फिशर ने सन् १८९३ में पहले पहल सूर्य-प्रकाश से कोढ़ रोग (lupus) अच्छा करने का प्रयोग किया और उसके १२०० रोगियों में से ११०० बिलकुल अच्छे हो गये।

डा० रॉलियर जो स्विटजर्लेण्ड के राजयक्ष्मा अस्पताल में इस रोग के विशेषज्ञ हैं और जिन्हें हजारों राजयक्ष्मा के असाध्य

रोगियों के जीवन प्रदान करने का श्रेय प्राप्त है, लिखते हैं—"मेरे पास चालिस हज़ार तसवीरें इस बात के सबूत में मैजूद हैं कि प्रकाश से गहरे से गहरा हड्डी के क्षय रोग का चकत्ता (lesion) नहीं बच पाता। केवल क्षय ही नहीं वरन् रिकेट वालो को भी ऐसा ही फ़ायदा हुआ है।"



बायाँ लड़का केवल सूर्य चिकित्सा से स्वस्थ हो गया जैसा दाहने चित्र से स्पष्ट है।

प्रकाश की इन किरणों का भाव मांसपेशियों पर भी बहुत अच्छा पड़ता है। यह नसों को फैला देती है जिससे रक्त का दौरा बाहर की ओर होने लगता है। इस प्रकार ये एक प्रकार से मर्दन (मालिश) का काम करती हैं। इससे अन्दर का विकार बाहर आ जाता है और रोग का कारण नष्ट हो जाता है।

फेफड़े के क्षय रोग के सम्बन्ध में लिखते हुये डा० रॉलियर लिखते हैं—"लड़ाई के जमाने में स्विटजर्लैण्ड के फेफड़े के रोगी हमारे सिपुर्द किये गये थे। अतः हम अपने अनुभवों के आधार पर यह कह सकते हैं कि प्रकाश और वायु औषधि के बहुमूल्य सहायक हैं। परन्तु घाम ज्वर उतरने पर देना चाहिये, और आरम्भ में बड़ी सावधानी से देना चाहिये। पहले पैर से शुरू करके धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिये और कई सप्ताह तक लगातार अभ्यास बढ़ाने के बाद छाती तक घाम देना चाहिये।"

चीड़-फाड़ में भी सूर्य-प्रकाश का बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान हो गया है, क्योंकि यह किरणें बड़ी ही कृमिनाशक होती हैं। वीयना, पेरिस आदि स्थानों के संसार-विख्यात अस्पतालों में अब मरहम-पट्टी करने में इन किरणों की सहायता आवश्यक मानी जाती है। डा० रॉलियर लिखते हैं—"२१ बरस और दस हजार से अधिक हड्डियों तथा अन्य अवयवों के क्षयरोग के अनुभव के आधार पर हम कह सकते हैं कि सूर्य-चिकित्सा राजयक्ष्मा के भिन्न-भिन्न रूपों की सर्वोत्तम औषधि है। बल्कि मेजर जनरल सीले ने लण्डन के अस्पताल में व्याख्यान देते हुये यहाँ तक कहा है कि "लगभग सभी रोग शुद्ध वायु और प्रकाश से अच्छे किये जा सकते हैं।" प्रकाश से उत्साह आता है, शरीर-वृद्धि होती है, खून का दौरा तेज हो जाता है और सामर्थ्य बढ़ जाता है। आज तक हर एक रोगी ने प्रकाश से लाभ ही उठाया है

और हमें आशा है कि थोड़े ही दिनों में इस शास्त्र का महत्व बढ़ जायगा।"

सूर्य-प्रकाश की उपयोगिया निम्नलिखित उद्धरणों से और अधिक स्पष्ट होगी :—

Report of the M. O. H. Benthal Green 1928— "दूध पिलाने वाली माताओं का स्वास्थ्य सूर्य की इन किरणों से सुधर गया, और दूध फिर से पैदा होकर इतना बढ़ गया कि ६ महीने तक उन्होंने बच्चे को भली प्रकार पिलाया।"

Report of the M. O. H. Aberdeen 1927— "फेफड़े के साधारण राजयक्ष्मा को प्रकाश से लाभ हुआ।"

Report of the M. O. H. Bermondsey 1927— गर्भिणी का स्वास्थ्य काफी अच्छा होता पाया गया, और उनको प्रसवकाल कष्टदायी न सिद्ध हुआ।"

सन् १९२४ में हेस नेल्सन ने यह सिद्ध किया है कि मुर्गियों को इन किरणों में रखने से बच्चे अधिक संख्या में और अधिक बलवान होते हैं। देखा भी जा सकता है कि घाम में काम करने वाली जातियों के सन्तान अधिक होती है।

विशेषज्ञों की राय में प्रकाश से निम्नलिखित रोगों में लाभ होता है (देखिये डा० धर का लेख सर पी० सी० रे के स्मारक ग्रन्थ में।)

समस्त चर्म-रोग—जैसे घाव, अपरस, सूजाक, गर्मी, कोढ़, नासूर, भगन्दर आदि।

७

बात रोग—जैसे गठिया, फालिज, मिर्गी, हिस्टीरिया, राशा (कँपकँपी), चिलिक बाई तथा अन्य समस्त बाई के रोग।

पाचन सम्बन्धी रोग—जैसे मन्दाग्नि, अम्लपित्त, अफरा, अनपच, रक्तहीनता, तिल्ली, कब्ज, दस्त, बहुमूत्र, संग्रहणी, मधुमेह, बेरीबेरी, केन्सर (पेट का फोड़ा) तथा पेट के अन्य रोग।

रक्त सम्बन्धी रोग—जैसे रक्तहीनता, जहरबाद, ज्वर, सूखा (मिठुआ)।

फेफड़े के रोग—जैसे दमा, खाँसी, जुकाम, राजयक्ष्मा, कुकुर खँसिया, डब्बा (पसली चलना) आदि।

हड्डी के रोग—जैसे रिकेट, कुबड़ापन आदि।

इनके अतिरिक्त आँखों के रोग, मस्तिष्क के रोग जैसे सनक, कान के रोग, दाँत के रोग, नाक के रोग तथा बाँझ-पन, नपुंसकता और अन्य अनेकों रोगों को लाभ होता पाया गया है।

खेत के कच्चे पके, फल-फूल शाक-भाजी में सूर्य की यह किरणें काफी मात्रा में विधो रहती हैं, जो अग्नि पर पकाने से निकल जाती हैं। इस प्रकार जहाँ आग पर पकाने से खाद्य पदार्थ एक दृष्टि से अधिक पचनशील हो जाते हैं वहाँ इन किरणों को गँवा देने के कारण कम उपयोगी भी हो जाते हैं। बल्कि कुछ लोगों का मत है कि इस हानि की अपेक्षा लाभ कम है। कम से कम कच्चे फल तरकारी, शाक आदि जिनका सेवन किया जा सकता है अवश्य किया जाना चाहिये।

अब आगे इस पर विचार किया जायगा कि इन किरणों का प्रभाव पाचन पर क्या और किस प्रकार पड़ता है।

वैज्ञानिकों ने यह साबित कर दिया है कि रक्त में आहार-पदार्थों—प्रोटीन वसा, कर्बोज—के जारण अर्थात् औषःीकरण से कार्बोनिक ऐसिड गैस और पानी की भाप यही दो पदार्थ बनते हैं। अब यदि जारण पूर्ण हुआ तब तो यही दो पदार्थ बनेंगे और श्वास द्वारा निकलेंगे, परन्तु यदि अपूर्ण हुआ तो अन्य पदार्थ भी बनकर रक्त में भर जायेंगे। जैसे यदि लैम्प भली प्रकार न जला तो काजल इकट्ठा हो जाता है।

इलाहाबाद युनिवर्सिटी के प्रोफेसर डाक्टर धर और पलित महोदयों ने प्रोटीन, वसा और कर्बोज का जारण अपने प्रयोगशाला में करके देखा कि ये पदार्थ बड़ी कठिनता से आक्सीजन से मिलते हैं और उस पर भी पूरी तौर पर नहीं। परन्तु उनमें यदि कोई क्षार जैसे खाने वाला सोडा, विशेषकर लोहे का कोई लवण जैसे लोहा भस्म या कौसीस मिला दिया जाय तो क्रिया शीघ्र होने लगती है। यदि यह क्रिया घाम में की जाय तो और भी शीघ्र होने लगती है और पूरी तरह पर होती है अर्थात् कुल का कुल जलकर कर्बोनिक एसिड गैस और भाप के रूप में निकल जाता है, कोई भी भाग बचता नहीं। बल्कि घाम जितना ही तेज होगा जारण भी उतना अधिक होगा। शरीर के भीतर आहार पदार्थों के जारण की क्रिया पर क्षार और सूर्य-प्रकाश का प्रभाव ठीक ऐसा ही पड़ता है। इस

सम्बन्ध में वे लिखते हैं—"हमारे प्रयोगों के परिणामों से यह सिद्ध होता है कि रक्त का जारण प्रकाश की तेजी, प्रकाश की मात्रा और प्रकाश पड़ने की अवधि (देरी) पर निर्भर है।... सूर्य-प्रकाश की उपस्थिति में भिन्न-भिन्न वसा और प्रोटीन वायु की सहायता से रक्त में पूर्ण रीति से जल जाते हैं।...और उनसे कोई हानिकारक चीजें नहीं बनतीं......"

परन्तु उन्होंने यह भी सिद्ध किया है कि यह क्रिया पूर्ण रीति से तभी हो सकती है जब रक्त क्षार प्रधान हो अर्थात् शाक-भाजी फल आदि भोजन में काफी हों। या फिर सोडा आदि पदार्थ ऊपर से खाये जायँ। क्षारों में भी लोहा उन्होंने सर्वोपरि पाया है। बल्कि उनकी राय में लोहा रखने वाले शाक जैसे पालक, बथुआ, मेथी, टमाटर आदि का यथासम्भव अधिक उपयोग रखना चाहिये।

अपने इन प्रयोगशाला के परिणामों का जानवरों पर भी लागू होना सिद्ध करने की दृष्टि से उन्होंने इन्हें कबूतरों और चूहों पर भी आजमाया। अपने प्रयोग और परिणाम उन्होंने इन शब्दों में लिखे हैं—

हमारे परिणाम यह प्रमाणित करते हैं कि कबूतर व चूहे जो रंगूनी चावल खिलाये गये और जिन्हें केवल सूर्य-प्रकाश मिला और विटामिन ए, बी और सी, वाले कोई भी पदार्थ नहीं मिले वह तीन सप्ताह तक स्वस्थ रहे, परन्तु उतने ही कबूतर व चूहे, जो खाने को वही पाते थे जो पहली टोली, केवल सूर्य-प्रकाश से

वञ्चित रक्खे गये, दो सप्ताह में पेट के रोग और फिर बाई और लकवे (Polyneuritis) में पकड़ गये और उनकी आँखें भी खराब गईं। हमारे प्रयोग यह भी प्रमाणित करते हैं कि चावल के साथ पालक, बथुआ आदि के बढ़ा देने से कुछ लाभ होता है परन्तु इनका प्रभाव सूर्य-प्रकाश से कम है। टमाटर·········भी उपयोगी है। अतः हम यह·········कह सकते हैं कि सूर्य-प्रकाश चावल खानेवालों के लिये शाक और टमाटर से अधिक गुणकारी है।..................और कम से कम कुछ समय तक के लिये विटामिन ए और बी के अभाव को पूरा कर सकता है। ·········हमारी यह भी राय है कि हरे शाकों की उपयोगिता केवल उनके विटामिन ए के कारण नहीं है बल्कि उनके लोह के लवणों के कारण भी है।·········अतः प्रतिदिन के भोजन में कुछ घाम में रक्खी हुई चीजें भी होनी चाहियें। इससे खाद्य पदार्थों के रक्त में जारण में सरलता होती है और परिणाम लाभदायक होते हैं।"

सूर्य-प्रकाश की उपयोगिता के कारण के सम्बन्ध में वे लिखते हैं कि एक तो शरीर पर प्रकाश पड़ने से शरीर के सेल्स उत्तेजित होकर अपना काम अधिक तेजी से करने लगते हैं और दूसरे जब खाद्य पदार्थ (वायु की उपस्थिति में) घाम में रख दिये जाते हैं तो वे वायु से आक्सीजन खींच कर उससे लद जाते हैं और जब मनुष्य के शरीर में पाचनेन्द्रिय को पार कर रक्त में पहुँचते हैं तब आक्सीजन छोड़ देते हैं, जो अपने और अन्य पदार्थों के जारण में सहायता देती है।

हमारे खाने की लगभग प्रत्येक चीज़ में घाम में आक्सीजन खींच लेने का गुण है। लेकिन घाम से हटा कर कुछ समय तक छाये में रखने से आक्सीजन धीरे धीरे निकल जाती है। परन्तु किसी में कम और किसी में अधिक। खुले मुँह के बर्तन में घाम में रक्खे जल तथा घी, तेल का पीना-खाना सब से सस्ते उपाय हैं। घाम में बैठकर घाम में गरमाया तेल लगाना और घाम में रक्खे जल से नहाना भी इन किरणों के लाभ पहुँचाते हैं।

खुले मुँह के बर्तन में रक्खा हुआ जल नहाने और पीने दोनों के लिये उपयोगी होता है। परन्तु गन्दा जल नहीं। गन्दे जल में यह गुण कम आता है। घुले हुये पदार्थ जो छानने से न जायँ एक कंकड़ी फिटकरी डालने से नीचे बैठ जाते हैं। पेट के समस्त रोगियों को घाम में रखकर जल पीना बड़ा लाभदायक होता है।

कुछ वैज्ञानिकों की राय में खाद्य पदार्थों को घाम में रखने से उनमें विटामिन डी पैदा हो जाता है। डाक्टर धर की राय में उसमें आक्सीजन-प्रवेश के कारण विटामिन डी के गुण आ जाते हैं और यह रिकेट अच्छा करता है। डा० धर लिखते हैं "चूने के लवण शरीर के कई व्यापारों के लिये बड़े महत्व के होते हैं। ये संक्रामक रोगों के रोकने और रोग के कारण क्षीण शरीर की मरम्मत में बड़ी सहायता देते हैं। चूने की कमी से थकान शीघ्र आती है। गर्भावस्था में, दूध पिलाने के दिनों में और बच्चों के बढ़ने की अवस्था में चूने की पर्याप्त मात्रा चाहिये, और प्रकाश

रक्त में चूना, फ़ास्फ़ोरस और लोहा बढ़ाता है।" इसलिये इन अवस्थाओं में घाम खाने की उपयोगिता कहीं ज्यादा है।

केवल घाम में पके हुये अन्न, फल खाने की उपयोगिता स्पष्ट है। इससे ये किरणें बिना बाहरी साधनों के ही काफ़ी मात्रा में शरीर में पहुँचा करती हैं, और पेट तथा अन्य समस्त रोगों को लाभ पहुँचाती हैं। इसलिए कम से कम जो शाक फल, तरकारी, अनाज कच्चे खाये जा सकते हों तो उनको पकाना न चाहिये।

शीशे, धूल, धुएँ और भाप में छनी हुई किरणों में यह किरणें बहुत कम या बिल्कुल शून्य हो जाती हैं। शीशे में से तो यह बहुत ही कम गुज़र पाती है। शहरों की धुएँ और धूल से भरी तथा बरसात या बदली में भाप से भरी हुई वायु इन्हें रोक लेती है।

घाम लेना सब दिन शरीर के नीचे के अंगों से आरम्भ करना चाहिये। इससे रोगी की सहन-शक्ति का पता चल जाता है और घाम की तेज़ी से हानि पहुँचने की संभावना नहीं रहती। इसके बाद धीरे-धीरे शरीर के ऊपरी भाग तक बढ़ना चाहिये, जैसे पहले नीचे के पैर, फिर जाँघें, फिर कमर, फिर पेड़ू और सीना। शिर सदैव घाम से बचाना चाहिये बल्कि घाम लेते समय मोटे कपड़े से ढक रखना चाहिये। ज्यों-ज्यों ऊपर के अङ्गों को घाम देने की नौबत आती जाय अगले भाग बड़ी सावधानी से घाम में लाये जायँ। समय भी धीरे-धीरे बढ़ाया जाय। कुछ दिनों

बाद रोगी में सहन-शक्ति आ जावेगी और वह ज्यादा देर तक ठहर सकेगा। साधारण पहचान यह है कि रोगी को इसमें आनन्द और स्फूर्ति मालूम हो। साधारण रोगों में सबेरे शाम का घाम काफी होगा, परन्तु गठिया, बाई, कुष्ठ, आदि कठिन रोगों में कड़ा घाम लाभकारी होगा। इसलिये दोपहर के आसपास घाम लेना चाहिये परन्तु यह ऋतु पर भी बहुत कुछ निर्भर है। गर्मी में इन रोगों में भी सबेरे ही का घाम उपयुक्त होगा। घाम लेते समय सर बराबर ठंढा रखना चाहिये इसलिए सर छाये में रहे और आवश्यकता हो तो ठंढी पट्टी—भीगे कपड़े की या गीली मिट्टी की, सिर पर बराबर रक्खी रहे नहीं तो घाम लग जाने की सम्भावना रहेगी जो लू लगने का दूसरा नाम है। घाम लग जाने से शिर दर्द, ज्वर, जकड़ा आदि रोग हो जाते हैं। घाम लेते समय जल का सेवन करते रहना उपयोगी होगा। साधारण आवश्यकता में सीधे घाम में न बैठकर निर्मल आकाश के घमस में बैठना भी लाभकारी होगा, क्योंकि यह किरणें घमस में भी होती हैं। परन्तु सीधे घाम से कई गुना कम।

काले शरीर की अपेक्षा गोरे शरीर को घाम से हानि की अधिक संभावना है। कारण यह है कि काला रंग इन किरणों को तो नहीं रोकता परन्तु इनके अवगुणों को बाहर ही रोक लेता है। दूसरे यह घाम की अधिक गर्मी को शरीर के भीतर नहीं घुसने देता क्योंकि वह अधिक पसीना बनाने के काम में व्यय हो जाती है। इसलिये जितना ही ज्यादा काला शरीर होगा

इतना ही उसमें प्रकाश के अवगुणों से बचने की शक्ति होगी। गोरे शरीर वालों को विशेष सावधानी की आवश्यकता है। गन्दे शरीर की अपेक्षा स्वच्छ शरीर में इन किरणों से अधिक लाभ पहुँचता है क्योंकि गन्दे शरीर में यह मैल में रुक रुक बाहर ही रह जाती हैं।

लाल रंग बड़ा उत्तेजक होता है। बाई, कुष्ठ लकवा आदि में लाल किरणें बहुत लाभ पहुँचाती हैं जो लाल रंग के कपड़े या लाल शीशे द्वारा छने हुये घाम या अन्य रोशनी से मिलती हैं। सूर्य की पराकासनी किरणें तेल, और पानी में तो प्रवेश कर जाती हैं परन्तु मोटे सूत के कपड़े और रेशमी कपड़ों तथा ऊनी कपड़ों को नहीं पार कर पातीं। अतः इन किरणों से लाभ उठाने के लिये कम से कम, और ढीले कपड़े पहनने चाहियें।

कपड़े के रंगों का भी प्रभाव इनके रोकने में पड़ता है। रंगों में सबसे श्रेष्ठ सफेद रंग है। उसके बाद क्रमशः हल्का नीला, लाल, पीला और काला रंग है। काला रंग बड़ा गर्म होता है। रंग के अतिरिक्त वस्त्र ढीला भी होना चाहिये। पाश्चात्य देशों के तंग कपड़े इतने उत्तम नहीं होते, और न सभ्यता की यह कसौटी कि प्याज के छिलकों के समान तह दर तह शरीर पर कपड़े डटे रहें उचित ही जान पड़ती है। अधिक से अधिक समय तक कम से कम कपड़े पहनना अधिक युक्तिसंगत जान पड़ता है।

सूर्य-प्रकाश की उपयोगिता को देखते हुये पूर्वजों के सूर्य भगवान की पूजा, प्रतिदिन उनका दर्शन करते हुये, करने की पद्धति बनाने में कदाचित् यही मुख्य उद्देश्य छिपा था।

भाग २—संयम

१५—विचार-शक्ति और स्वास्थ्य

मनुष्य का शरीर उसके विचारों का प्रतिबिम्ब है। पूर्व जन्म के विचारों और तदनुसार कर्मों के परिणाम-स्वरूप वर्तमान शरीर का रूप-रङ्ग, आकार-विस्तार, रोग-व्याधि, आयु आदि समस्त बातें निश्चित हो जाती हैं। परन्तु इस जन्म के विचारों और उनके मूल-कारण, मनोभावों, का भी उन पर बहुत कुछ प्रभाव पड़ता है। बल्कि कहीं कहीं तो पुराना नक़्शा बिल्कुल बदल ही जाता है। दयालु या ज़ालिम मुँह देखते ही मालूम हो जाते हैं। चिन्ता सूरत से टपकती है। इससे भूख मर जाती है और शरीर का प्रत्येक अंग शिथिल हो जाता है। क्रोध से भी भूख मर जाती है, आँखें चमक उठती हैं, सारा शरीर काँप उठता है और चेहरे पर क्रूरता आ जाती है। इसी प्रकार चिड़चिड़ापन, ईर्ष्या-द्वेष, भय तथा अन्य समस्त विकृत भावों से शरीर की दशा बदल जाती है। पहले तो उनका प्रभाव क्षणिक रहता है परन्तु कालान्तर में स्थायी रूप धारण कर लेता है और इसी स्थाई रूप को रोग कहते हैं। या फिर उनके कारण शरीर में अस्वाभाविकता आते आते शरीर

इतना क्षीण हो जाता है कि बाहरी रोगों का क्षेत्र बन जाता है।

इसके विपरीत सद्भाव स्वास्थ्य-वर्धक होते हैं। हँसी, प्रेम, दया, सहृदयता शरीर में वह गति पैदा करते हैं जिसके कारण शरीर में शक्ति, स्फूर्ति, ओज, भूख, रक्त का दौरा आदि बढ़ता है और रोग की कारण-दशाएँ नष्ट हो जाती हैं। इन भावों के आते ही कुम्हलाये हुए शरीर में स्फूर्ति आ जाती है और रोगी कुछ समय के लिए अपने कड़े से कड़े कष्ट को भूल कर आनन्द में निमग्न हो जाता है। और यदि यह भाव बराबर बने रहे तो कुछ ही समय में रोग भाग जाता है।

यह एक साधारण अनुभव की बात है कि अचानक रंज से फालिज गिर जाता है या दिमाग बिगड़ जाता है, आँखों की रोशनी जाती रहती है और बाल सफेद हो जाते हैं। मन्दाग्नि आदि पाचन सम्बन्धी रोग बहुधा इसी कारण होते हैं। और रोगी के रोग का निदान जान लेने पर उसके मन पर इतना प्रभाव पड़ता है कि उसके रोग का वेग कई गुना बढ़ जाता है। बल्कि स्वस्थ मनुष्य को भी रोग का खयाल पैदा कर देने से रोग आ जाता है। कितने ही साधारण ज्वर के रोगी डाक्टरों द्वारा क्षयी रोग से ग्रसित बतलाये जाने के कारण संसार से सिधारते ही देखे गये हैं और रोग का पता न पाने के कारण कितने ही रोगी बुरी दशा से सँभलते देखे गये हैं।

छूत की बीमारियों में भी देखा गया है कि जहाँ भय घुस

जाता है वहाँ रोग की भयंकरता भी बढ़ जाती है। अक्सर निर्भय लोग प्लेग, कालरा आदि रोगों के बीच में रहे परन्तु उनका बाल भी बाँका न हुआ। अतः यह परिणाम कि रोग के विचार रोग पैदा करते और बढ़ाते हैं एक निर्विवाद सत्य सिद्ध होता है। शर्त यह अवश्य है कि खान-पान और रहन-सहन में त्रुटि न हो क्योंकि विचार बिल्कुल ही इनकी जगह नहीं ले सकते।

अब प्रश्न है, कि इस विषय के इतने महत्वपूर्ण और व्यापक होते हुये भी हमारी निगाहें इधर क्यों नहीं उठतीं? उत्तर स्पष्ट है। मनुष्य की प्रकृति है कि वह अपने कार्यों के उन परिणामों को देखता है जो दूसरों पर पड़ते हैं, परन्तु जो स्वयं उस पर पड़ते हैं उन्हें वह नहीं देखता। अगर मैंने क्रोध या चिन्तावश अपने शरीर, पाचन तथा मस्तिष्क के बल को गँवा दिया तो यह सब भाग्य के गले मढ़ दिया जावेगा और उसके कारण, परिणाम और उपाय पर कोई वैज्ञानिक विचार न किया जावेगा। या अगर कहीं भूले-भटके मन इधर आ भी जाता है तो क्षण भर के लिये; परन्तु अगर मैं उसी क्रोध के वेग में अपने शरीर को घुलाने की जगह दूसरे को हानि पहुँचा दूँ तो मेरा भाग्य भाग जायगा, स्वयं मैं ही पकड़ा जाऊँगा, और मेरे किये पर टीका-टिप्पणी होने लगेगी।

विचार और रोग के सम्बन्ध का वैज्ञानिक कारण निम्न-लिखित है :—

आधुनिक वैज्ञानिकों का यह कहना है कि मनुष्य के इतने

बड़े शरीर का जीवन शरीर के बनाने वाले छोटे छोटे सेल्स के जीवन पर निर्भर है। इन सेलों में केवल जीवन ही नहीं बल्कि चेतना, समझ और भाव भी होते हैं और वे बड़ी होशियारी से अपना काम किया करते हैं। हमारे शरीर में एक साधारण सेल से बढ़ते बढ़ते हड्डियाँ, मांस पेशियाँ, नसें, नख, आदि वैसे ही बन जाते हैं जैसे समाज में एक बालक के बढ़ने से वकील, डाक्टर, पुजारी, किसान और सिपाही आदि बन जाते हैं। समस्त शारीरिक रोगों को वास्तव में इन्हीं सेलों की दुखित अवस्था कहना चाहिये। और चूँकि ये हमारे विचारों, या उनके मूल-कारण, भावों, से संचालित होते हैं, इसलिए इनका या शरीर को दुखी बनाने का कारण विचार हुआ।

मस्तिष्क विचारों का हेडकार्टर है। वहाँ जो विचार उत्पन्न हुआ उसकी सूचना इनके पास पहुँची और जिनके सम्बन्ध की बात हुई वे सुखी या दुखी होकर फूल उठे या मुर्झा गये। कुछ दिनों तक ऐसा ही होने से वे स्वस्थ या रोगी हो जाते हैं। न्याय, धोखेबाजी, क्रूरता, धूर्तता आदि मानसिक अवगुण कण्ठमाला, केन्सर, गठिया, क्षयी आदि शारीरिक रोगों के कारण हैं; परन्तु इन दोनों प्रकार के रोगों के अर्थात मानसिक और शारीरिक रोगों के सम्बन्ध का हाल पूरे तौर पर मालूम नहीं है, कुछ ज्ञान अवश्य है। आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थों में लिखा है कि ईर्ष्या और बेसबरी से वात प्रधान हो जाता है और मनुष्य को वात रोग हो जाते हैं; कायरता, चिड़चिड़ाहट, घमंड और अपनी प्रशंसा

चाहने से पित्त-प्रधान हो जाता है और पित्त-विकार हो जाते हैं। इसके विपरीत क्रोध की प्रधानता से पित्त मर जाता है। नम्रता, सब्र, वादे की सचाई, पवित्रता और प्रेम से कफ प्रधान होता है।

कुछ आधुनिक डाक्टरों ने भी इस सम्बन्ध में खोज की है। उनमें से कुछ की रायें निम्नलिखित हैं—

"अफ्रीका के कुछ भागों में अधिक क्रोध या रंज करने से अवश्य ज्वर आ जाता है"—सर सेमुयल बेकर, ब्रिटिश ऐंड फारेन मेडिको सर्जिकल रिव्यु में।

"अचानक मन पर धक्का लगने के कारण मधुमेह हो जाता है। अतः यह एक ऐसा शारीरिक रोग है जिसका कारण मानसिक है"—सर बी० डब्लू रिचर्डसन।

"कई बीमारियों में देखने से मुझे इस बात का विश्वास हो गया है कि केन्सर का कारण चिन्ता है।" सर जार्ज पेजेंट।

"केन्सर के अधिकांश रोगी शायद चिन्ता ही के कारण होते हैं"—डाक्टर स्नो।

डाक्टर मेकेन्जी ने पाण्डु रोग और डाक्टर हन्टर ने धड़का का भी कई स्थानों पर यही कारण पाया है।

"चर्म रोग अधिक मानसिक परिश्रम से होते पाये गये हैं। केन्सर, मिर्गी और पागलपन का तो यह कारण प्रत्यक्ष ही है—" रिचर्ड्सन।

"मेरे प्रयोग सिद्ध करते हैं कि चिड़चिड़े, नीच और हताश करने वाले भावों के वेग से शरीर में कुछ हानिकारक योगिक

बन जाते हैं जिनमें से कुछ तो बड़े ही विषैले होते हैं। इनके प्रतिकूल आनन्दमय भाव शरीरोपयोगी रासायनिक पदार्थ बनाते हैं जो सेलों को उत्तेजित करते हैं और उनकी शक्ति बढ़ाते हैं"— इल्मर ग्रेटस।

प्रोफेसर एल० मार्ग्रेट ने वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि भय, चिन्ता, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष और उदासीनता से पसीने में, थूक में, श्वास तथा खून में जहरीले पदार्थ पैदा हो जाते हैं और इसके विपरीत प्रेम, दया, आनन्द, सन्तोष और आरोग्यता तथा प्रसन्नता के विचारों से शरीर को पुष्ट करने वाले तत्व पैदा होते हैं।

डाक्टर कन्ड ने लिखा है कि घृणा या ईर्ष्या से पित्त बिगड़ जाता है और कमल या पांडु रोग हो जाता है।

डाक्टर हेकटक ने भय के कारण उत्पन्न होने वालों में अनेकों रोगों के नाम लिखे हैं जिनमें पागलपन, गंजापन तथा शिर के अन्य रोग, लकवा, कमल, दाँतों का गिरना, धातु के रोग और चर्म रोग मुख्य हैं। आजकल हिस्टीरिया सनक और पागलपन मन में कुविचारों के उत्पन्न होने और उनको दबा देने के कारण बढ़ रहा है।

अधिकांश में आजकल के मानसिक रोगों का कारण गुप्त अतृप्त परन्तु प्रबल वासना भाव है। और जहाँ मानसिक रोग होते हैं वहाँ शारीरिक रोग भी आ जाते हैं।

क्रोधित होने पर माताओं का दूध भी जहरीला होता पाया

गया है और उस समय दूध पिलाने से अक्सर बच्चों को तत्काल हानि होती देखी गई है। या अगर तत्काल कोइ हानि नहीं भी पहुँची तो बच्चों में पाचन तथा अन्य तरह-तरह के रोग होते देखे गये हैं। साथ ही साथ बच्चे का भी स्वभाव चिड़चिडा और क्रोधी होता पाया गया है। प्रसन्न-चित होकर दूध पिलाने से बच्चे स्वस्थ और खुशमिजाज होते देखे गये हैं।

शरीर विज्ञान की राय में पेट के रोगी जो भोजन करने के पश्चात् अपने पेट ही पर अपना ध्यान लगाये रहते हैं और यह सोचा करते है कि कैसे वहाँ भोजन पच रहा है स्वस्थ पाचन में बाधा उतपन्न करते हैं। भोजन के पश्चात् पाचन को भूल जाने से पाचन क्रिया निर्विघ्न होती है। हर समय यह सोचते रह कि क्या खायँ, क्या न खायँ, क्या अनुकूल और क्या प्रतिकूल यह भी पाचन के रोगी हो जाने का कारण और पारिवारिक दोनों होता है।

इसलिये मनुष्य को पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिये चाहिये कि प्रेम, सहानुभूति और उदारता के साथ रहे, ईर्ष्या द्वेष, क्रोध, क्रूरता, भय, आदि उद्वेगों के बुरे प्रभाव से अपने को बचावे। इसके अतिरिक्त रोग का प्रभाव अपने मन पर न पड़ने दे, रोग की बात-चीत न करे, रोगी बन कर दूसरों की दया न चाहे, और रोग से डर कर हताश कदापि न हो।

१६—स्वाद

मनुष्य के प्रत्येक इन्द्रियभोग में 'स्वाद है चाहे वह इन्द्रिय कान हो, आँख हो, जिह्वा हो या कार्मेन्द्रिय। स्वाद शायद ईश्वर ने इसलिये दिया है कि मनुष्य को अपने इन इन्द्रियों के व्यापार में विशेष कठिनाई न पड़े। यदि उसके मनोभाव के साथ-साथ इन्द्रिय-सुख अर्थात् मजा या स्वाद लगा है तो उसको अपने जीवन में कोई विशेष अड़चन नहीं पड़ती। कठिनाई तो तब पड़ती है जब इन दोनों में विरोध होता है। मनुष्य के सरल, साधारण जीवन में इनमें विरोध न होना चाहिये क्योंकि स्वस्थ जीवन के अर्थ ही यह है कि मनुष्य अपने स्वाद को प्रधान न मानकर केवल उचित-अनुचित के सिद्धान्त पर काम करे और इस दशा में यह निर्विवाद है कि स्वाद आप ही आप वैसा बन जावेगा। परन्तु जहाँ इसका उल्टा क्रम आरम्भ किया गया और औचित्य को स्वाद पर बलिदान किया गया वहाँ जीवन के पतन में कोई सन्देह नहीं।

यहाँ हम जिह्वा ही के स्वाद पर विचार करेंगे। इस शरीर में जिह्वा का काम है शरीरोपयोगी पदार्थों में स्वाद लेकर उनको पेट में पहुँचने में सहायता देना। जिह्वा के स्वाद की जरूरत इसलिये होती है कि स्वाद मिलने से भोजन सरलता से खाया जा सकता

है और सुगमता से पचता है। परन्तु यदि स्वाद ही प्रधान हो जाय और आहार की उपयोगिता का भाव गौण तो इसका अर्थ यही समझना चाहिये कि छोटी सी जिह्वा के क्षणिक सुख के कारण इतना बड़ा शरीर अपने आवश्यक पदार्थों से वञ्जित रक्खा जाता है, या यों कहिये कि द्वारपाल के मज़े के लिये मालिक का हित बलिदान कर दिया जाता है। आगे चलकर जब शरीर रोगी हो जावेगा तो जिह्वा भी स्वाद का मजा न पा सकेगी। क्या स्वाद को प्रधानता देना मन की वही कमजोरी नहीं जाहिर करता जिसके वशीभूत होकर एक रोगी बालक जलेबी के लिये मचल पड़ता है ?

स्वाद मनुष्य का अपना बनाया होता है इसमें कोई सन्देह नहीं। अँगरेजों को जिस भोजन में स्वाद मिलता है हिन्दुओं को नहीं मिलता। कारण, उनको लड़कपन से वैसे खाना खाने की आदत है। यदि बचपन से अलग से स्वाद का ज्ञान न पैदा कराया जाय और केवल शरीर की आवश्यकता पर खाद्य-अखाद्य का निर्णय किया जाय तो शायद इस प्रश्न पर कभी विचार करने की आवश्यकता ही न हो।

बच्चों के सम्बन्ध में इसका विशेष ध्यान रखना चाहिये कि वे स्वाद के गुलाम न हो जायँ। अतः उन्हें स्वादिष्ट भोजन खिलाने की फिक्र न करना चाहिये, बल्कि जब तक वे दूध, साग आदि शरीर के लिये आवश्यक पदार्थ न पसन्द करें, उन्हें अन्य स्वादिष्ट भोजन कदापि न देना चाहिये। ऐसा करने से सयाने होने तक में उनकी आदत हर प्रकार के खाना खाने की पड़ जायगी।

जिह्वा पर काबू करने का एक उपाय यह है कि तत्काल की प्रबल इच्छा को तो न रोके परन्तु बाकी समय में बराबर कहता रहे कि अब मेरे मन में यह चंचलता न आवेगी। इस अभ्यास के लगातार करने से जबान काबू में आ जाती है। बच्चों को खाते समय कभी धोखे से भी न रोकना चाहिये परन्तु बाद में बराबर उनमें फिर न ललचाने का भाव भरते रहना चाहिये।

१७—ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य इन्द्रिय स्वाद से सम्बन्ध रखने वाला दूसरा विषय है। इसका सम्बन्ध मनुष्य के शरीर और मन दोनों से है, और इनके मुख्य द्वारपाल हैं आँख, नाक, कान, हाथ और मुँह। अतः इस व्रत के पालन के लिये इन इन्द्रियों पर काबू करना मनुष्य की प्रथम आवश्यकता है। किन्तु यह तभी प्राप्त हो सकता है जब पहले मन इन्द्रियवेग की शारीरिक और मानसिक आवश्यकता और उपयोगिता पूर्ण रूप से समझ कर विचार बल से काम ले। बिना वैज्ञानिक और तात्विक विवेचना जाने विचार बल नहीं आ सकता और बिना विचार बल के विद्या भी मनुष्य को आचार की शिथिलता से नहीं बचा सकती।

मनुष्य-शरीर रक्त से बनता है। जो कुछ भी खाया-पिया जाता है रक्त बनकर हाड़-मांस के इस पंजर को रचता है। रक्त ही से वीर्य्य भी बनता है। वीर्य्य शरीर में वह स्थान रखता है जो रस गन्ने में अर्थात् यह मनुष्य शरीर का सत्त है। इसलिये मनुष्य के लिये वीर्य्य की रक्षा प्रत्येक दृष्टि से अति आवश्यक है। यह मनुष्य के अपने हाथ में है, चाहे वह इस रक्त को शरीर और मस्तिष्क बनाने और जीवन-शक्ति प्राप्त करने के काम में लावे या मज़ा लेने में उड़ा दे।

मजे का प्रश्न तो हजरते इन्सान के मन की करामात है। वास्तव में तो मैथुन सन्तानोत्पादन के लिये है।

इस दृष्टि से आजकल की दशा पहले की अपेक्षा काफी गिरी हुई है। ब्रह्मचर्य की ओर नवयुवकों में पहले की सी दृढ़ता नहीं पैदा की जाती। पुरानी मर्यादा का पालन पूर्ववत् नहीं होता है। आजकल के सभ्यसमाज का हँसी-मजाक, थियेटर सिनेमा तथा अन्य मनोरंजन के साधन सब इसी वेग का प्रभुत्व दिखला रहे हैं। बचपन से पढ़ते पढ़ते, जवानी तक में यह संस्कार कितना दृढ़ हो जाता है प्रत्यक्ष है; और जैसे संस्कार के कारण मनुष्य पागल हो जाने पर भी अपना नाम नहीं भूलता वैसे ही कड़े संयम के बाद भी कामोत्तेजक दृश्य, शब्द, तथा स्पर्श से कामातुरता रोके नहीं रुकती। इसलिये इस इन्द्रियवेग पर काबू पाने के लिये यह समझ लेना मुकद्दम है कि इसका भोग शारीरिक स्वास्थ्य के लिये अनावश्यक है केवल यह मन की चंचलता के कारण इतना भयानक रूप धारण किये हुये है और यह चंचलता बचपन से लेकर अब तक के भोगी संस्कारों के कारण है।

इसलिये मनुष्य के लिये बुद्धिमानी इसी में है कि पहले से कामोत्तेजक परिस्थितियों से बच कर मन पर कड़ा शासन करे कुछ ऐसे ही प्रसंग में हेल्प्स नामी एक अँगरेज विद्वान लिखता है कि यदि कहीं हम जाते हों और हमारे मार्ग में कुहिरा फैला हो तो बुद्धिमानी इसी में होगी कि उसमें घुसने और खतरा उठाने की जगह हम बचकर निकल जायँ। कालान्तर में धीरे-धीरे के अभ्यास से उसमें से होकर पार

करने की शक्ति जब हम में आ जाय तो घुस कर निकलने की चेष्टा करने में कोई हर्ज नहीं। विवाहित पुरुष भी उक्त सलाह से लाभ उठा सकता है। विवाह का अर्थ संयम की आवश्यकता से मुक्त हो जाने का नहीं होता। प्राचीनकाल में बाल विवाह होते हुये भी इन्हीं एहतियातों के कारण, चाहे वे खुशी से होते रहे हों या माता पिता और समाज के दबाव से, कोई बुरे परिणाम नहीं देखने में आते थे। बल्कि उलटे उस समय का स्वास्थ्य और अच्छा था।

ब्रह्मचर्य के विषय में जिह्वा के चटोरपन का उदाहरण चुस्त बैठता है। चटोरों का मन उनको जिह्वा के वश में होकर बिना भूख भी हर समय खाते ही रहने को चाहता है परन्तु संयमी का केवल आवश्यकता के समय और जरूरत भर। वैसी ही दशा कामियों की भी होती है। इनमें भी इन्द्रिय-सुख शरीर और आत्मा के हित पर प्रधानता पा जाता है। यदि कुछ दिनों तक संकल्प के सहारे संयम किया जाय तो उसका लाभ स्पष्ट अनुभव में आ जायगा कि मनुष्य काफी समय तक आसानी से संयम बर्त सकता है।

आजकल के नवयुवकों में ब्रह्मचर्य की ओर शिथिलता उनके गन्दी पुस्तकें पढ़ने, गन्दी संगत में रहने तथा गन्दे विचारों को मन में स्थान देने के कारण आ गई है। किसी हद तक तो वे बेचारे निरपराधी हैं क्योंकि एक तो उनके माता-पिता उनको इस विषय की शिक्षा नहीं देते और रखते हैं नीच परिस्थिति में, बल्कि उल्टे इसको एक गुप्त विषय बतलाकर बच्चों में इसके जानने और भोगने की एक प्रबल इच्छा पैदा करते हैं जिसके

कारण वे बड़ी छोटी उम्र में तजुर्बेकार हो जाते हैं या कम से कम मन से भोग करने लगते हैं और दूसरे समाज ने पश्चिम के नकल की कुछ कसम सी खालिया है और काम वासना को प्रेम का एक रूप साबित करने पर डटा है। आजकल जिस उपन्यास में काम को प्रेम का जामा पहनाकर न खड़ा किया गया हो वह कोई उपन्यास नहीं है, जिस पत्र में स्त्री की सुन्दरता का मोहनी चित्र न दिखलाया जाय वह कोई पत्र ही नहीं है, जिस महाशय के कमरे में स्त्री के चित्र न हों, चाहे वे केलेण्डर हीं में क्यों न हों, वह कला-प्रेमी ही नहीं है। बल्कि नौबत तो यहाँ तक पहुँच चुकी है कि जिस व्यापार-विज्ञापन में स्त्री का चित्र न हो, चाहे वह चाय या सिग्रेट ही का विज्ञापन क्यों न हों, वह आकर्षक विज्ञापन ही नहीं माना जाता। बेचारे नवयुक अपने अपरिपक्व अवस्था ही से ऐसे वायुमण्डल के शिकार बनकर पतित हो जाते हैं तो कोई आश्चर्य नहीं। हाँ चेतने के बाद उन्नति करने का प्रयत्न न करें तो उत्तरदायित्व उन पर आता है।

ब्रह्मचर्य का आहार और स्वाद से भी बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। आहार से दो प्रकार से कामोत्तेजना होती है। एक तो यदि शरीर की आवश्यकता से अधिक शक्तिवर्धक पदार्थ खाये गये तो स्वाभाविक है कि अधिक उष्णता कामोत्तेजना करने और जरा से उत्तेजना पर रक्त के वीर्य बनकर बाहर निकल जाने में खर्च हो। इसी कारण परिश्रमियों की अपेक्षा आलस्य और विलासिता के जीवन व्यतीत करने वालों में काम वासना अधिक होती है और

दिन की अपेक्षा रात में अधिक होती है। जानवरों में भी गाड़ी के बैलों की अपेक्षा साँडों में काम-शक्ति अधिक होती है। दूसरे कुछ पदार्थ भी ऐसे होते हैं जिनमें उत्तेजना पैदा करने का गुण होता है जैसे मांस, मदिरा, कच्चा लहसुन और कच्चो प्याज आदि। इसी लिये इन्हें कामोत्तेजक पदार्थ कहते हैं। ये तथा अन्य ऐसे पदार्थ मन में चंचलता पैदा करने के अतिरिक्त शरीर में और अधिक गर्मी पैदा करते हैं। अतः इनके अधिक सेवन करने से अधिक वीर्यपात की सम्भावना रहती है, विशेषकर दुबले-पतले मनुष्यों में, क्योंकि उनके शरीर में वसा की वह तह नहीं होती जो उत्तेजना को रोक सके। इनके अतिरिक्त जिह्वा के स्वाद की परवाह भी किसी हद तक इस वासना में सहायक होती है क्योंकि एक तो स्वादिष्ट भोजन बहुधा पुष्टिकारक और उत्तेजक होते हैं और दूसरे ऐसे भोजन का अधिक हो जाना कोई असम्भव बात नहीं और तीसरे जिह्वा के स्वाद की गुलामी से मन में कर्मेन्द्रिय की गुलामी करने की कमजोरी आ जाती है। इसलिये बच्चों में तो यह अवगुण आने ही न देना चाहिये।

१८—समय की पाबन्दी

सृष्टि में जिधर भी निगाह उठा कर देखिये नियम और समय की पाबन्दी ही का नकशा नजर आता है। क्या प्राकृतिक और क्या वनस्पति तथा जीव जगत में। सूर्य, चन्द्रमा, जाड़ा, गर्मी, ज्वार, भाटा आदि का नियम और समय अटल है। घास-फूस, फूल, पत्ते भी इन्हीं पाबन्दियों से बंधे हैं। पशु-पक्षी भी अपने सोने, जागने, खाने, पीने, तथा सिवाय दो चार के शेष काम-क्रीड़ा में भी समय और ऋतु से सञ्चालित होते हैं।

अब मनुष्य की ओर देखिये। पैदा होने तक प्रकृति के काबू में रहता है अतः उसी नियम से वाध्य रहता है। बाहर भी जहाँ तक प्रकृति अपना प्रभाव कायम रख सकती है वही नियम लागू रखती है। नियत समय पर खाइये, सोइये, शौच जाइये तथा कोई भी काम कीजिये और आपके शरीर के तत्-सम्बन्धी अवयव उसी के अनुसार चलेंगे। नींद के समय आँखें झपने लगेंगी और मस्तिष्क काम करने से जवाब दे देगा; शौच के समय बिना परि-श्रम मल निकल जायेगा। यह तो उदाहरण उसके हैं जिसमें मनुष्य अपना उल्टा बल लगा सकता है। परन्तु जहाँ पर यह बेकाबू है वहाँ पर भी यही सूरत है। अँतरा, तिजारी, चौथिया, आधासीसी, तथा कान, नाक, शिर के दर्द, अपने बंधे समय और

नियम के अनुसार आते हैं गोया इन रोगों के कीटाणुओं तथा विष के पास घड़ी हो। राजयक्ष्मा, दमा, संग्रहणी आदि भी अमावस और पूर्णिमा को बढ़ जाते हैं। शरीर में कफ ३ बजे से दोपहर ढले एक बज कर १० मिनट तक बढ़ता है फिर घटने लगता है। यह और अनेक ऐसे उदाहरण शरीर के सम्बन्ध में दिये जा सकते हैं।

शरीर के अतिरिक्त मन का भी यही गुण है। किसी नियत समय पर जो विचार, भाव, मनोवेग दो चार दिन भी आ जाते हैं फिर बराबर उसी समय आया करते हैं। बल्कि स्थान का भी इन विचारों से बड़ा सम्बन्ध रहता है। इसी कारण सन्ध्या-पूजा करने वाले बंधे समय और नियत स्थान पर सन्ध्या करने से अधिक एकाग्रता तथा अन्य पवित्र मनोभाव जगाने में सफल होते हैं। अब यह स्पष्ट हो गया होगा कि प्रकृति के प्रत्येक कण में दृश्य हो अथवा अदृश्य, जड़ हो तथा चैतन्य, नियम और समय की पाबन्दी का गुण भरा है, और मनुष्य का मन और शरीर भी इसी के अन्तर्गत है। अतः जब तक मनुष्य इस गुण का विरोध नहीं करता तब तक उसके जीवन की गति ठीक वैसी ही रहती है जैसी अन्य वस्तुओं की। और जैसे वे बिना किसी विशेष विघ्न बाधा के अपने जीवन का कार्य करते रहते हैं और कालान्तर में अपनी स्वाभाविक मृत्यु को प्राप्त होते हैं वैसे ही मनुष्य भी अपने राह पर चला जाता है। ऐसे ही जीवन की अवस्था को स्वास्थ्य कहते हैं—जब कि शरीर के समस्त कोषाणु अपने-अपने प्रकृति के अनुसार काम किया करते और मनुष्य उन पर अपना

रंग जमाने की कोशिश न करके उन्हीं के अनुसार रहता है। परन्तु जहाँ मनुष्य ने उनको अपने वश में करने की कोशिश की और उनकी प्रकृति का आदर न करके उनको अपने मनमानी प्रणाली पर चलाने की चेष्टा की वहीं वह बेचारे कोषाणु चौपट हुये। या तो दुर्बल होकर क्षीण-आयु हो गये, या रोग के कीटाणुओं के शिकार हो गये। इसलिये हमें यह समझ लेना चाहिये कि मनुष्य के इस जीवन की सार्थकता और आनन्द का बड़ा भारी रहस्य इसी नियम के अन्तर्गत छिपा हुआ है।

कुछ लोग अनियमित जीवन व्यतीत करने वालों की मिसाल पेश करते हैं, परन्तु यह विचार नहीं करते कि बहुधा वे लोग अपने जीवन को किसी न किसी नियम के अनुसार अवश्य कर लेते हैं। अब यदि उनका शरीर इस नियम को अपना मान लेता है तो कोई हर्ज नहीं, परन्तु यदि न माना तो उनको भी वही दुख-परिणाम सहने पड़ते हैं जो दूसरों को सहने पड़ते हैं। जैसे यदि शहर-निवासी सबेरे १० बजे खाता है तो देहात-निवासी १२ बजे। परन्तु इसका उल्लंघन बिना हानि उठाये नहीं कर सकता। जो लोग बिल्कुल ही नियम नहीं मानते वे अवश्य झेलते हैं, अगर आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों। यदि अभी वह स्वस्थ दिखलाई पड़ते हैं तो हम यह क्यों न समझें कि यदि वे नियम की पाबन्दी करते तो इससे भी अधिक स्वस्थ होते या यह कि आगे चलकर जब उनकी स्वाभाविक सहन-शक्ति समाप्त हो जायगी तो यह किला भी ढेर हो जावेगा। क्या यह प्रतिदिन का

अनुभव नहीं है कि जो कल स्वस्थ था आज रोगी दिखलाई पड़ता है और जो आज स्वस्थ है वह कल रोगी हो जा सकता है। शराब कोकीन आदि दुर्व्यसनों के आदी लोग जो भी कुछ समय में बोल जाते हैं आरम्भ में तो वे भी तेजी ही दिखलाते हैं।

समय की पाबन्दी से मनुष्य को दुनियावी कामों में सहायता मिलती है। आदत पड़ जाने से न तो उसके लिये विशेष चेष्टा करनी पड़ती है और न सोचने में समय ही नष्ट करना पड़ता है। पहले से सब मालूम रहता है। अतः अपने काम का प्रोग्राम नियत करने और उसके लिये उपाय करने में बाधा की गुंजाइश नहीं रहती। और इस प्रकार बची हुई शक्ति और समय दूसरे आवश्यक कामों में व्यय की जा सकती है।

याद रखने की बात है कि प्रकृति हमारी तभी तक इज्जत करेगी जब तक हम उसकी अवहेलना न करेंगे और जहाँ हमने उसकी खुशामद करके अपनी आवश्यकतानुसार थोड़ा-बहुत संशोधन का उद्योग छोड़ कर उस पर हावी होने की चेष्टा की वहाँ उसने रौंद डाला। प्रतिदिन के अनुभव पर भी यह सत्य भूल जाय और मनुष्य अपने प्रकृति को काबू में करने का बेड़ा उठाये और उसका गर्व करे तो अभाग्य ही समझना चाहिये। देखा जाय तो दुनियाँ में अभाग्य के इतने दौर-दौरा होने का भी यही कारण है।

१६—व्रत

हिन्दुओं के यहाँ व्रत धर्म का एक अंग बना दिया गया है। जीवन में आध्यात्मिकता लाने के लिये यह एक प्रधान संयम है संकल्प, दृढ़ता, त्याग, जिह्वा पर अनुशासन यह सब नियमानुसार व्रत के पालन से आते हैं। परन्तु हम यहाँ इसके शारीरिक लाभ पर विचार करेंगे। केवल शारीरिक दृष्टि से किये गये व्रत को उपवास कहते हैं।

हमारे शरीर में जब कोई रोग हो जाय तो यह सूचना इस बात की है कि रक्त दूषित हो गया है। या तो भोजन के पूर्णरूप से न पचने के कारण या रक्त में मिले हुये पदार्थों के फेफड़े में भली प्रकार न जलने के कारण वह अंश बच रहा है जिनको साधारणतया जल कर बाहर निकल जाना चाहिये था। इसलिये रक्त को स्वस्थ बनाने के लिय पहला उपाय यह है कि उसमें नये पदार्थ आना रोक दिया जाय और रक्त को मौका दिया जाय कि अपने जारण की साधारण क्रिया द्वारा जो विकार इकट्ठा हो गया है उसको जला दे या पसीना, मूत्र आदि द्वारा बाहर फेंक दे।

व्रत का महत्व इसी दृष्टि से है। जब बाहर का भोजन बन्द कर

दिया जाता है तब पाचनेन्द्रिय को आराम मिल जाता है और उस समय यदि काफी पानी पिया जाय तो आँतों में रुका हुआ मल निकलने लगता है। रक्त के विकार मूत्र द्वारा निकल जाते हैं या फेफड़े में आकर जल जाते हैं, और फालतू चर्बी और मांस भी जलने लगते हैं। मनुष्य शरीर के मोटे हो जाने का कारण यह है कि जब उसको अपने भोजन से अधिक कर्बोज या चिकनाई मिलती है जिसको वह कम परिश्रम करने के कारण जला नहीं सकता तो वह कर्बोज या चिकनाई चर्बी के रूप में शरीर में इकट्ठी हो जाती है। अब यदि बाहर से कोई ईंधन पदार्थ शरीर में नहीं आता तो यहाँ संचित पदार्थ जलने लगता है और शरीर को गर्मी देता है। इस प्रकार शरीर दुर्बल हो जाता है। परन्तु शरीर के भीतर के कोमल अंगों को जैसे हृदय, यकृत आदि को कोई हानि नहीं पहुँचती वरन वह अधिक कार्यशील हो जाते हैं। यदि एनिमा लेकर आँतों का मल प्रति दिन निकाल दिया जाय तो व्रत का लाभ बहुत बढ़ जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि व्रत शरीर को निरोग करने का कितना उत्तम उपाय है। पशु-पक्षी जब रोगी हो जाते हैं तब खाना छोड़ देते हैं। कुत्ते तो खाना छोड़ने के अतिरिक्त घास खाकर कै (वमन) करते हैं, और चिड़ियाँ कंकड़ियाँ और करकल खाकर आँतों को साफ करती हैं।

उपवास के सम्बन्ध में डाक्टर धर लिखते हैं—उपवास के समय रक्त में उपस्थित कर्बोज, चिकनाई और प्रोटीन धीरे धीरे

जलने लगते हैं। पहले पाँच से सात दिन में तीनों प्रकार के पदार्थ धीरे धीरे जलते हैं। फिर सब कर्बोज जल जाता है जिसके बाद चर्बी जलने लगती है और मांस पेशियों का प्रोटीन भी जलने लगता है। परन्तु चर्बी ८५% जलती है और प्रोटीन केवल १५%।

उपवास के समय शरीर एक दिन में १४०० से १६०० केलारी जलाता है अर्थात् ५½ औंस चर्बी और २½ औंस प्रोटीन। इस प्रकार प्रति दिन उसका शरीर ½ पौंड ठोस पदार्थ और १ पौंड पानी जलाता है। परन्तु जब चर्बी जलने लगती है तब उसका जारण पूर्ण रूप से नहीं होता और उससे एसीटोन नामी एक जहरीला पदार्थ निकलने लगता है। इसे यदि कर्बोज लेकर या पानी अधिक पीकर निकाल न दिया जाय तो यह मृत्यु तक ला देता है। प्रयोग से सिद्ध हुआ है कि पानी में सोडियम साइट्रेट और सोडियम टार्टरेट मिला कर काफी मात्रा में पीने से विषैले पदार्थ नष्ट हो जाते हैं।

व्रत का प्रभाव शरीर के साथ मन पर भी काफी पड़ता है। शरीर जितना हलका होता जाता है मन में उतनी ही स्फूर्ति भी आती जाती है परन्तु इसके लिये थोड़ा सचेत रहने की जरूरत है। हमारे यहाँ के धार्मिक जीवन में व्रत का बहुत बड़ा स्थान है और व्रत के साथ धार्मिकता का शुद्ध वातावरण अनिवार्य बतलाया है अर्थात् प्रार्थना, पूजा, पाठ, प्रसन्नता, व्रत के सहचर है।

उपवास के समय शरीर में कम से कम ३ सेर पानी जरूर पहुँचना चाहिये। पानी में थोड़ा सोडा बाई कार्ब (खाने वाला सोडा) डाल लेना चाहिये। जब शरीर के भीतर की चर्बी कर्बोज की अनुपस्थिति में जलती है तब रक्त अम्ल हो जाता है। सोडा इस अम्लता को मारता है। थोड़ा नमक भी पानी में मिला लिया जा सकता है। व्रत हानिकारक उस समय हो जाता है जब रक्त की अम्लता इतनी बढ़ जाती है कि मतली और कै होने लगती हैं या मूत्र से विषैले पदार्थ निकलने लगते हैं। साधारणतया तीन दिन का व्रत तो कोई भी कर सकता है। इस में अधिक अम्लता आने का डर नहीं है। हमारे यहाँ के धार्मिक स्त्री पुरुष नवरात्र में नव दिन का व्रत अक्सर करते हैं परन्तु जल पीने की ओर असावधानी के कारण उसे अधिक उपयोगी नहीं बना पाते हैं। आज कल अधिक दिनों के व्रत की मिसाल आये दिन समाचार पत्रों में पढ़ने में आती हैं। व्रत करने में एक दो दिन कष्ट होता है, भूख लगती है। परन्तु जब भूख मर जाती है तब कोई कष्ट नहीं होता है।

व्रत के समय आंतों की चाल नहीं रुकती। यदि उनके अन्दर मल है तो वह आगे को ढकिलता जाता है परन्तु उसमें बोझ नहीं होता इस लिये मल त्याग में कुछ असुविधा होती है। नमक का पानी काफी मात्रा में पीने से मल पतला होकर निकलने लगता है परन्तु यदि प्रति दिन एक बार एनिमा लिया जाय तो आँतें धुल जाती हैं और शरीर के भीतर का विष पूरी तरह पर निकल जाता है।

दुर्बल शरीर वालों को ३ दिन से अधिक के व्रत के दिनों में परिश्रम भी कम कर देना चाहिये। जब बाहर से शक्ति आती नहीं तो व्यय भी कम करना चाहिये। इससे शरीर का भार उतना नहीं गिरता और रक्त में अम्लता भी कम आती है। परन्तु शरीर को थोड़ा व्यायाम अवश्य मिलना चाहिये। तेल की मालिश, सूर्य-स्नान और मल मल कर जल से स्नान बड़े हितकर व्यायाम है।

व्रत तोड़ने में बड़ी सावधानी रखनी चाहिये। इतने दिनों तक शांत रहने के कारण आँतें परिश्रम के लिये तैयार नहीं रहतीं। इस लिये बहुत धीरे धीरे उन पर कार्य का बोझ पड़ना चाहिये। पहले दिन केवल सन्तरे, मुसम्मी, मीठे नीबू का रस या शहद और नीबू का रस दिया जाना चाहिये। शेष उपचार ज्यों क त्यों रखने चाहिये। दूसरे दिन रस में थोड़ा दूध या ताजा मथा हुआ दही मिला कर देना चाहिये। शेष उपचार फिर भी पहले के समान रहे। इसी प्रकार हल्का भोजन तीन या चार दिन तक और क्रमशः साधारण भोजन पर ला दिया जाय।

परन्तु जो क्रम एकादशी आदि व्रतों के चले आते हैं शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से भी वह बहुत उपयोगी हैं और वह उक्त लाभ के अतिरिक्त मनुष्य शरीर पर ग्रहों के प्रभाव पर भी अवलम्बित हैं।

एकादशी के व्रत के सम्बन्ध में रंगून के डाक्टर चौधरी ने

अपने अस्पताल के कुछ रोगियों पर प्रयोग कर के यह सिद्ध किया है (Vide Journal of Indian Medical Association Dec. 1933 to May '34.) कि एकादशी और पूर्णमासी के दिन शरीर में कर्बोज का जारण कम वेग से होता है और अष्टमी और तेरस को प्रोटीन का जारण कम वेग से होता है। अतः इन तिथियों को कर्बोज प्रधान और प्रोटीन प्रधान पदार्थ न खाने चाहिये। हमारे यहाँ एकादशी के दिन केवल फल-फूल पर गुजर करने के लिये लिखा है, आलू, घुइयाँ, शकरकन्द आदि कर्बोज प्रधान पदार्थों पर नहीं। और अष्टमी को मांस तथा अन्य प्रोटीन प्रधान पदार्थ वर्जित हैं। इनका सिद्धान्त उपरोक्त है।

२०—व्यायाम और निद्रा

डाक्टर धर ने अपनी पुस्तक Newer Conceptions in Bio-Chemistry में सिद्ध किया है कि शरीर की उन्नति, पुष्टि, और वृद्धि में शरीर के पाचक रसों का उतना ही प्रभाव है जितना उत्तम आहार का। जैसे क्लोम रस के अभाव से मधुमेह, यकृत में पित्त की कमी से रक्तहीनता आदि रोग उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार शरीर के भीतर की कुछ ग्रन्थियाँ ऐसी हैं जिनकी दुर्बलता से आँख, हड्डी तथा मांसपेशियों के रोग हो जाते हैं; और इन अवयवों की दुर्बलता किसी हद तक विटामिन-रहित भोजन से आती है और किसी हद तक साधारण शारीरिक दुर्बलता के कारण।

व्यायाम से लाभ का कारण यह है कि व्यायाम करते समय हमारे फेफड़े खूब फूलते पचकते हैं। अतः उनमें ओषजन अधिक मात्रा में जाती और रक्त के विष तथा प्रोटीन आदि पदार्थों को जलाती है। इस प्रकार रक्त विषों से शुद्ध होता है, आहार का जारण भी खूब होता है और परिणाम-स्वरूप पाचनेन्द्रिय खूब पुष्ट होती हैं। अतः शरीर खूब बढ़ता और स्वस्थ होता है। यही कारण है कि आलसी अमीरों की अपेक्षा मेहनती ग़रीब अधिक बलवान होते हैं। उनके लिये व्याधि है उनकी ग़रीबी जो पेट भर भोजन के लाले डाले रहती है और साधारण जीवन ही

भर को शक्ति नहीं पहुँचाती परिश्रम की कौन कहे। ऐसी दशा में अधिक परिश्रम से उनके शरीर का ह्रास होने लगता है।

व्यायाम दो प्रकार के होते हैं एक तो शरीर की मांसपेशियों को फुलाने और शरीर को सुन्दर बनाने वाली और दूसरी उसमें वास्तविक उन्नति लानेवाली। प्रथम की मिसाल है डम्बल आदि और दूसरी की, आसन, प्राणायाम आदि। अभी हाल में वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया जा चुका है कि सर्वोत्तम व्यायाम प्राणायाम और योगिक आसन हैं। इन कसरतों के करते समय शरीर के भीतर अवयवों की क्रिया का एक्सरे द्वारा चित्र लेकर देखा गया है कि रक्त का संचालन जितने शुद्ध रूप से और पूर्णतया इन कसरतों से होता है संसार के अन्य किसी भी कसरत से नहीं होता। अतः इन कसरतों से स्वास्थ्य बहुत उत्तम हो जाता है। इनके बाद तैरने और टहलने का नम्बर है। तेज टहलने में सिर से पैर तक बराबर रक्त का संचालन होता है। इस से हृदय, आमाशय आदि समस्त अंगों का पूरा व्यायाम हो जाता है। चलने से मल के नीचे ढकिलने में सहायता मिलती है जिससे क़ब्ज़ भी दूर होता है।

उछल-कूद, दौड़, तथा अन्य झोंके की कसरतें जैसे दण्ड, मुगदर आदि भी उपयोगी हैं परन्तु नव युवकों तथा अधेड़ों के लिये। दुर्बल अथवा वृद्ध शरीर में इनसे हानि हो जाने की सम्भावना रहती है।

कसरत की ज़रूरत यों तो प्रत्येक श्रेणी के लोगों के लिये है

परन्तु आजकल गरीबों से भी शोचनीय अवस्था मध्य श्रेणी के लोगों की है। गरीब तो कच्चे शाक, फल ककड़ी, खीरा, अमरूद, गाजर, शकरकंद, भुट्टा, महुआ, मटर की फली आदि पदार्थों द्वारा बहुत कुछ विटामिन और लवणों की कमी पूरी कर लेते हैं और दिन भर घाम में परिश्रम करके पाचन की, जारण की और शरीर के भीतरी अंगों की आवश्यकता पूर्णतया पूरी कर लेते हैं। सिर्फ कसर दूध, दही, अच्छे अनाज न पाने के कारण उत्तम प्रोटीन की रह जाती है। परन्तु मध्य श्रेणी के लोगों की दशा जिन्हें उनकी छोटी पूँजी और भारी परिवार दूध, घी, फल, मेवे से दूर रखता है, दूर्बल पाचन कच्चे मौसिमी फल-फूलों से दूर रखता है और दफ़रों और बन्द घरों का बन्धन शुद्ध वायु और सूर्य-प्रकाश से दूर रखता है, विशेष ध्यान देने योग्य है। यदि कहीं उन्होंने व्यायाम से मुँह मोड़ा तो उनका बचा-खुचा स्वास्थ्य भी चला जाता है।

अधिक व्यायाम बहुत हानिकारक होता है। साबित किया जा चुका है कि अधिक परिश्रम करनेवाले को अधिक पौष्टिक भोजन और अधिक विटामिन चाहिये, नहीं तो शरीर के सेलों पर उनके शक्ति से अधिक परिश्रम पड़ता है और वे दुर्बल हो जाते अथवा मर जाते हैं, जो अवस्था शरीर को रोगी बनाने का मुख्य कारण होती है। अतः भोजन द्वारा प्राप्त शक्ति से अधिक परिश्रम अर्थात् अधिक थकान लाने वाले काम कदापि न करना चाहिये और एक दिन करना पड़े तो दूसरे दिन आराम करके

उसकी पूर्ति कर लेना चाहिये। रोगी पर थकान का प्रभाव बहुत बुरा पड़ता है।

शरीर को विश्राम देने का सबसे बड़ा साधन निद्रा है। सोते समय समस्त शरीर की क्रियाएं शिथिल पड़ जाती हैं। स्वांस की तेजी और पाचन क्रिया तथा अन्य समस्त क्रियायें मन्द पड़ जाती हैं। इससे उनकी गई हुई शक्ति फिर आ जाती है और वे फिर पहले के समान ताजा हो जाती है। शरीर की वृद्धि या क्षति की पूर्ति सोते समय ही होती है।

जाग्रित अवस्था में शरीर को शिथिल करने का भी अभ्यास किया जा सकता है। पूर्ण आराम की अवस्था में बैठ कर या, बेहतर होगा, लेट कर मस्तिष्क को विचारों से खाली कर दो और शरीर को एकदम ढीला कर दो। मतिष्क से शुरू करके मत्थे, आँखों, चेहरे, कंधे और हाथों और उंगलियों से होते हुए धड़ और पैर तक शिथिल हो जाने की आज्ञा देते जाओ कि कहीं तनाव न रह जाय। इससे करीब करीब नींद से कुछ ही कम आराम मिल जाता है। प्रार्थना के पहले ऐसे शिथिल कर लेने से ध्यान एकाग्र करने में सरलता मिलती है।

निद्रा की मात्रा अवस्था और परिश्रम के हिसाब से होती है। गोद के बच्चे को दिन में १६ घंटे सोना चाहिये। २ वर्ष के बच्चे को १४ घंटे, ४ वर्ष के बच्चे को १२ घंटे, ८ वर्ष वाले को ११ घंटे, १२ वर्ष वाले को १० घंटे, १६ वर्ष वाले को ९ घंटे, २० वर्ष वाले को ८ घंटे, और इससे अधिक अवस्था में ६ घंटे। इसमें भी जो

जितना कम ज्यादा मेहनती होता है उसके लिये उतने ही कम ज्यादा निद्रा की आवश्यकता पड़ती है। बच्चों को सोते समय जगाना बड़ा हानिकारक होता है। वह उनके बढ़ने का समय है।

निद्रा आने के पहले की मानसिक अवस्था निद्रा के समय बनी रहती है। अतः चाहिये कि मस्तिष्क को चिन्ता रहित बल्कि प्रसन्न चित्त करके तब निद्रा बुलाये। जो बच्चे रोते रोते सो जाते हैं वे सारे समय सिसका करते हैं। और जागने पर भी मलीन चित्त रहते हैं। रात्रि में सोने के पहले दिन भर की भूलें ध्यान करके प्रार्थना कर लेने से लाभ होता है। और निद्रा गहरी आती है।

निद्रा के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें जानने योग्य हैं :—

(१) आधी रात के पहले का एक घंटा बाद के दो घंटे के बराबर होता है। इसलिये रात में १० बजे तक सो जाना चाहिये। रात का थियेटर-तमाशा सभ्यता की ओर से स्वाभाविकता पर कुठाराघात है।

(२) सोने के पहले हाथ, पैर ठंढे पानी से धो लेने से निद्रा शीघ्र और गहरी आती है।

(३) ज्यादा थकान में थोड़ा सो लेने से थकान शीघ्र दूर हो जाती है।

(४) भोजन करने के कम से कम २-३ घंटे के पहले न सोना चाहिये।

(५) गरमी में या रोगी को दिन का सोना लाभदायक होता है। बच्चों के लिये आराम जरूरी है। डेन्मार्क के डा० ग

जॉगेन्सिन के मतानुसार दिन में हल्की झपकी ले लेने से मनुष्य प्रसन्न चित्त रहने के अतिरिक्त दीर्घ जीवी भी हो जाता है। १० से ४ बजे के दफ़्तरों, स्कूलों के पहले भारत में यह प्रथा थी भी।

यह प्रत्येक पाठक के अनुभव की बातें होंगी कि नींद की एक लहर आती है। उस समय सोने से नींद बड़ी गहरी आती है और कम से कम समय में ज्यादा से ज्यादा विश्राम मिल जाता है; परन्तु उस लहर को छोड़ देने से उतने ही विश्राम के लिये अधिक समय तक सोने की आवश्यकता पड़ती है।

भाग ३

२१—जीवाणु (बेकटीरिया)

यह सभी ने देखा होगा कि रोटी, भात, कटे फल तथा अन्य ऐसी गीली चीजों में शीघ्र भोंड़ो लग जाती है बल्कि सील स्थान में रक्खे हुये सूखे पदार्थों में भी भोंड़ी लग जाती है, लेकिन आग में गर्माने या घाम में रखने से यह दूर भी हो जाती है। इसका क्या कारण है ?

अब यदि इस भुकड़ो या फूही को सूक्ष्मदर्शी शीशे से देखा जाय तो यह नन्हें नन्हें कणों सजीव पदार्थों का समूह मिलेगा। इन पदार्थों को बेकटीरिया या जीवाणु कहते हैं। यह इतने छोटे होते हैं कि एक सुई की नोक पर अनेकों आ जाते हैं और खाली आँखों को दिखाई नहीं पड़ते। बाढ़ इनकी छोटे पौधों के समान होती है और इतनी तेज होती है कि मिनटों में यह एक से अनेक हो जाते हैं, और अधिक हुये तो असंख्य। जब यह उस पदार्थ को खाकर बढ़ते हैं तो उसके प्रोटीन, कर्बोज आदि का रूप बदल देते हैं। और उन्हें विषैले बना देते हैं।

इसी प्रकार यदि संसार की समस्त जीवित वस्तुओं को

सूक्ष्मदर्शी शीशे से देखें तो भिन्न भिन्न प्रकार के जीवाणुओं से भरे पावेंगे क्योंकि जहाँ मनुष्य रह सकता है वहाँ यह भी रह सकते हैं। बल्कि यह कहना चाहिये कि यदि ये न हों तो मनुष्य भी नहीं रह सकते। इन्हीं जीवाणुओं ही के कारण गोबर आदि चीजें सड़-गल कर खाद बनती है जिसके कारण खेती में अनाज हो सकता है। खाने और पहनने के समस्त पदार्थ किसी न किसी रूप में इन्हीं के कारण पैदा होते हैं।

जीवाणुओं का आकार जैसा खुर्दबीन द्वारा देखने से मालूम हो जायगा बेहद छोटा होता है। अगर २५००० जीवाणु एक दूसरे से जुटा कर एक सीधी लकीर में रक्खे जावें तो केवल १ इञ्च की लम्बाई घेरेंगे।

इनकी बाढ़, अगर ये अपने अनुकूल तापक्रम पा गये—क्योंकि यह मामूली गर्मी में बढ़ते हैं, तेज गर्मी या सर्दी सह नहीं सकते—तो आश्चर्यजनक तेजी से होती है। सामान्यत: आध घंटे में एक से दो बन जाते हैं। बाजे बाजे एक घंटे में एक से दो हो पाते हैं। यदि हिसाब लगाया जाय तो आध घन्टे में दो बनने वाला जीवाणु २४ घन्टे में तीन पदम (३००,००,००,००,००,००,०००) के लग भग बन जायंगे। अब यदि मान भी लिया जाय कि इनको आजादी से बढ़ने के सब साधन प्राप्त नहीं—जैसा आगे बतलाया जायगा—तो भी करोड़ों-अरबों की संख्या में तो अवश्य पहुँचेंगे।

यह बेकटीरिया गर्द के कणों में रहते हैं और जहाँ जहाँ गर्द

जाती है बराबर पहुँचते रहते हैं। और गर्द तो सदैव वायु के साथ रहती है यद्यपि हमको दिखाई नहीं पड़ती। अगर किसी दराज़ से आने वाले धूप के मार्ग को देखा जाय तो असंख्य नन्हें नन्हें कण उड़ते दिखाई पड़ते हैं। साधारणतया यह प्रकाश की किरणें समझी जाती हैं, परन्तु ऐसा नहीं है। प्रकाश की किरणें दिखाई नहीं पड़तीं। ये धूल के कण हैं जो वायु में उड़ा करते हैं और हमारी साधारण आँखों को अन्धकार में दिखाई नहीं पड़ते परन्तु प्रकाश में चमकते हैं। इन्हीं धूल के कणों के साथ साथ जीवाणु भी उड़ा करते हैं। जहाँ जहाँ, खाने में, पानी में, कपड़े में बर्तनों में यह गन्दी वायु पहुँचती है ये जीवाणु भी पहुँचते हैं। और जहाँ कहीं अनुकूल वायु मण्डल पाते हैं अर्थात् अन्धकार, सील, और गन्दगी पाते हैं, खूब बढ़ते हैं।

बेकटीरिया अनेकों प्रकार के होते हैं। कुछ मनुष्य के लिये उपयोगी और कुछ हानिकारक। इनमें भी कुछ तो एक दूसरे के सहायक होते हैं और साथ साथ बढ़ते हैं और कुछ शत्रु, जो एक दूसरे को मार डालते हैं।

प्लेग, इन्फ्लुयन्ज़ा, मलेरिया, मोतीझरा आदि ज्वर, खाज, अपरस, दद्रुर, नासूर, कोढ़ आदि चर्म रोग, चेचक, ज़हरबाद, फोड़े, मुँहासा, फुन्सी, सूजाक आदि रक्त रोग तथा दमा, राजयक्ष्मा कुकुरखँसिया आदि रोग इन्हीं बेकटीरियों की मेहरबानी के परिणाम हैं जो कहीं न कहीं पैदा होकर शरीर में प्रवेश कर इन रोगों की नौबत लाते हैं।

फल, अनाज आदि पदार्थों के सड़ने से आँव, अतिसार संग्रहणी, प्लेग, विशूचिका, जहरबाद (Blood-poisoning) जुकाम, मलेरिया, मियादी बुखार, मोतीझरा तथा अन्य अनेकों रोगों के बेकटीरिया बनते हैं। इनके शरीर में पहुँचने के मार्ग चार हैं। विशूचिका (हैजा) पेचिश, मियादी ज्वर आदि, गन्दे पानी, दूध, फल, शाक तथा अन्य खाद्य पदार्थों द्वारा पहुँचते हैं, क्योंकि इनके बेकटीरिया वायु में नहीं उड़ पाते। कुछ के बेकटीरिया वायु द्वारा फैलते हैं जैसे चेचक, कुकरखंसिया, राजयक्ष्मा आदि, क्योंकि इनके कीटाणु धूल के कणों के साथ वायु में उड़ा करते हैं। कुछ रोगों के बेकटीरिया स्पर्श से पहुँचते हैं और कुछ शरीर के घावों द्वारा। ऐसे सभी रोगों के फैलाने में मक्खी, मच्छर, विशेष सहायता देते हैं क्योंकि यह गन्दे स्थानों में तथा रोगियों के शरीरों पर बैठकर इन बेकटीरियों को अपने टाँगों में चपकाकर लाते और हमारे शरीर पर और हमारे भोजनों में छोड़ जाते हैं। मच्छर तो इन्जेकशन लगाकर इन्हें रक्त में भी पहुँचा जाते हैं! एक वैज्ञानिक ने लिखा है कि मक्खी और मच्छर द्वारा ३० रोगों के कीटाणु एक से दूसरे में पहुँचते पाये गये हैं। उनकी राय में शहरों में ८५ प्रतिशत और देहातों के ९५ प्रतिशत रोग मक्खी, मच्छर द्वारा फैलते हैं। एक मक्खी अपनी टाँगों में रोगों के लगभग साठ लाख कीटाणु ले जाती है। खटमल, जुआँ, चीलर भी रोग के कीटाणु ले जाने का काम करते हैं।

उपयोगी बेकटीरियों में दही, खमीर और अंचार के बेकटीरियों

का विशेष स्थान है। दही के बेक्टीरिया शरीर के लिये बड़े ही उपयोगी होते हैं क्योंकि पेट में पहुँचकर वही समस्त रोगों के बेक्टीरियों को मार देते हैं। परन्तु दही ताजा और शुद्ध पात्र का होना चाहिये नहीं तो अन्य हानिकारक बेक्टीरिया पहुँचकर इन्हें भी मार कर सड़न पैदा कर देते हैं। यही दशा खमीर की भी है। सना आटा कुछ समय तक वायु में रह कर खमीर के कीटाणु ले लेता है। परन्तु अधिक समय में उसमें भी सड़न आ जाती है। गुड़, चीनी के शर्बत से सिरका, आसव और शराब एक अन्य ही प्रकार के बेक्टीरियों से बन जाता है।

जैसा ऊपर लिखा जा चुका है हानिकारक बेक्टीरिया अन्धकार, सील और गन्दगी से बढ़ते हैं परन्तु तेज उष्णता, शुद्ध वायु और घाम में मर जाते हैं। इसके विपरीत मनुष्य के हितकारी बेक्टीरिया शुद्ध वायु और मामूली घाम में जल्द बढ़ते हैं, तेज़ घाम उनके लिये भी घातक होता है।

ठंढक में बेक्टीरियों का वेग रुक जाता है परन्तु सब मरते नहीं। इसीलिये सर्वोत्तम उपाय इनसे बचने का यह है कि खाद्य पदार्थ उबाल लिये जाँय या खौलते जल से धो लिये जाँय। दूध के पकाने में विशेष सावधानी की आवश्यकता है क्योंकि इसमें हनिकारक बेक्टीरिया अति शीघ्र बढ़ते हैं और तेज़ आँच पाकर मरते हैं। दूध का फट जाना, कड़ुवा हो जाना, महकने लगना, उनकी उपस्थित की सूचना देता है। जो चीज़ें उबालने योग्य न हो उन्हें तेज़ धूप में सुखा लेना चाहिये। सूर्य की किरण

में यह विचित्र शक्ति है कि ये बड़ी कीटाणु-नाशक होती हैं। शुद्ध वायु से भी इनमें से कुछ का नाश हो जाता है क्योंकि ये आक्सीजन की तेज़ी से मरने लगते हैं। ठंढक केवल इनकी बाढ़ रोक सकती है। जो मौजूद होते हैं वे एक प्रकार का खोल बना कर उसके अन्दर छुप रहते हैं और गर्मी पाते ही फिर निकल कर बढ़ने लगते हैं। इसलिये पहले वस्तुओं को बेकटीरिया रहित करके तब ठंढक में रखना उचित होगा। बाज़ार की कुल्फी का बरफ़ बेकटीरियों से खाली नहीं होता।

बेकटीरियों की भयंकरता और व्यापकता का हाल सुन कर पहला सन्देह उठता है—फिर मनुष्य कैसे जीवित बचता है। इसका कारण यह है—

सूर्य-प्रकाश और वायु की आक्सीजन बाह्य जगत के दो ऐसे पदार्थ हैं जो सदैव इनका नाश किया करते हैं; जैसे मोतीझरा तथा अन्य ज्वर के कीटाणु खुले स्थान में दो-तीन फीट से अधिक दूर नहीं जा सकते। इनके अतिरिक्त एक तीसरा कारण भी इनकी बाढ़ में बाधा डालने का है। इनमें एक दूसरे की बैरी जातियाँ भी होती हैं जो उनका नाश किया करती हैं। फिर भी अन्धकार, गन्दगी तथा सील स्थानों में सड़े-गले पदार्थों पर पल कर, और अपने बैरियों से बचकर, जो रह जाते हैं उनमें से कुछ जल, आहार, स्वांस तथा घावों द्वारा मनुष्य के शरीर में पहुँच ही जाते हैं। यहाँ ईश्वर ने मनुष्य शरीर में भी इनके मारने का प्रबन्ध कर रक्खा है। आहार द्वारा गये हुये बेकटीरिया पेट में पहुँच कर वहाँ के

नमक के तेजाब के प्रभाव से मर जाते हैं। जो वहाँ से बच कर रक्त में पहुँच गये अथवा श्वाँस द्वारा फेफड़े में होकर रक्त में पहुँच गये उनको मारने का प्रबन्ध रक्त में रहता है। रक्त में दो प्रकार के कण होते हैं। एक लाल और दूसरे सफेद। इनमें से सफेद कण रोग के हानिकारक बेकटीरिया को मार कर उनका विष पसीना, मूत्र आदि मार्गों से बाहर फेंक देते हैं। यह हानिकारक बेकटीरियाँ हानि उन्हीं को पहुँचाती हैं जिनके रक्त में यह सफेद कण इन बाहरी बेकटीरियों के मुकाबले में कम पड़ते हैं। बलवान शरीर में राजयक्ष्मा के कीटाणु इसी कारण कम असर करते हैं।

बेकटीरियों का एक प्रिय स्थान मनुष्य की आँतें भी हैं, विशेष कर बड़ी आँत। वहाँ यह अनपचे आहार के सड़ने के कारण पैदा होते और बढ़ते हैं। वहाँ पैदा होने वाले बेकटीरियों की किसमें भी लगभग ७० के हैं। दस्त, आँव, मियादी बुखार, हैजा आदि के बेकटीरिया बड़े हानिकारक प्रकार के होते हैं। वैज्ञानिक परीक्षा के बाद यह पता लगा है कि मनुष्यों के मल के साथ लगभग १० लाख जीवित और मृत बेकटीरिया प्रतिदिन बाहर निकलते हैं। कभी कभी यही हानि भी पहुँचाते हैं। रक्तविकार, चर्म रोग, पाचन रोग, ज्वर, शिरदर्द, खाँसी, रक्त भार (high blood pressure) आदि अनेक विकार इन बेकटीरियों के कारण होते हैं।

आहार पदार्थों में प्रोटीन के सड़ने से सब से अधिक और

हानिकारक बेकटीरिया पैदा होते हैं। पेट में वायु अनपचे कबीज से भी पैदा होती है परन्तु इससे इतने बेकटीरिया नहीं बनते। यह केवल शरीर के लिए कष्टदायक होती है। वसा से बेकटीरियों का डर नहीं रहता। परन्तु अधिक भोजन तो सदैव सड़न पैदा करेगा। इसलिये आँतों में बेकटीरियों के विषैले प्रभाव से बचने के उपाय हैं कि :—

(१) भोजन आवश्यकता से अधिक कदापि न करे, विशेष कर रात्रि में।

(२) भोजन में प्रोटीन शरीर की आवश्यकता का ध्यान रखते हुये होना चाहिए। अधिक दाल, गरीदार मेवे, माँस आदि का कम से कम उपयोग करना चाहिये। मन्दाग्नि वालों को तो यह चीजें छोड़ ही देना चाहिए। दूध, दही, गेहूँ, जव, फल, तरकारी, शाक इनके स्थान पर अधिक उपयोगिता के साथ खाये जा सकते हैं।

(३) भोजन खूब चबाकर करे जिसमें उसका एक एक कण अलग हो जाय और पच जाय और उसपर तेजाब का प्रभाव भी पड़ सके।

(४) जल का अधिक उपयोग करे।

(५) कब्ज से बचे—दस्तावर औषधियाँ खाकर नहीं वरन् परिश्रम करके, जल का सेवन करके और प्रतिदिन के भोजन में रेचक पदार्थ जैसे चोकर आदि खाकर।

बाहरी बैक्टीरियों के दुष्परिणामों से बचने के लिये निम्न-लिखित बातों पर ध्यान रखना आवश्यक है :—

(१) रसोईं-घर ऐसे स्थान पर हों जहाँ हवा और प्रकाश काफी पहुँचे। फर्श की सफाई की ओर विशेष ध्यान रखना चाहिये।

(२) रसोईं-घर किसी गन्दे स्थान के आसपास कभी न होना चाहिये।

(३) रसोईं के पात्र साफ मंजे होने चाहियें। पात्रों पर मिट्टी या मैल बेक्टीरियों के खाद्य पदार्थ हैं। सफाई की दृष्टि से एल्यूमीनियम के बर्तन सबसे खराब होते हैं।

(४) रसोईं का कूड़ा जैसे तरकारी के छिलके आदि दूर फेंके जाने चाहिये। उनके सड़ने से गन्दगी फैलती है जो वायु और मक्खियों द्वारा मनुष्यों तक पहुँचती है।

(५) रसोईं में केवल शुद्ध जल ही जाना चाहिये। गन्दे जल से हाथ या पात्र कदापि न धोये जाने चाहिये।

(६) जमीन की गिरी चीज कदापि न खाई जानी चाहिये। बच्चों के सम्बन्ध में बड़ी सावधानी की आवश्यकता है क्योंकि वे बहुधा इसकी परवाह नहीं करते।

(७) खानेवाले को हाथ-पैर धोकर, कुल्ला करके रसोईं में जाना चाहिये। पैर धोने की सुबिधा न हो तो थाली ऊँचे पर रखना चाहिये जिसमें पैर भोजन के पात्र से दूर रहें।

१०

(८) मक्खियाँ मनुष्य का दुश्मन हैं। रसोई में इनका सञ्चार न होने देना चाहिये। बच्चों के खाने में इसका विशेष ध्यान रखना चाहिये क्योंकि वे स्वयं इतनी परवाह नहीं कर सकते।

(९) भोजन शुद्ध और स्वच्छ होना चाहिये। बासी भोजन हानिकारक होता है, विशेष कर गरमी और बरसात में। बासी खाई जाने वाली चीजें सूखी होनी चाहिये और उन्हें शुद्ध पात्र में और ठंढे, स्वच्छ और हवादार स्थान में रखना चाहिये। घी, तेल बेकटीरियों को रोकते हैं। घी, तेल के अन्दर चीजें अधिक समय तक खराब नहीं होतीं। परन्तु कुछ बेकटीरिया अशुद्ध घी, तेल में भी असर करते हैं। इसीसे अशुद्ध घी सड़ने लगता है और अशुद्ध तेल लसदार हो जाता है।

(१०) जो पदार्थ कच्चे खाये जाते हैं, जैसे फल, शाक आदि उन्हें भली प्रकार धोकर खाना चाहिए। नमक के या पोटाश के पानी से या गरम पानी से धोना अच्छा होगा। बाजार का कटा फल कभी न खाना चाहिये। खेतों के फटे फूट वहीं से मलेरिया के बेक्टीरियों को अपने साथ लाते हैं।

२२—दाँत

दाँत मनुष्य-शरीर के बड़े महत्त्वपूर्ण अंग हैं। इन्हीं पर मनुष्य का स्वाद और स्वास्थ्य दोनों निर्भर है। दाँतों के रोग जैसे मसूढ़ों की सूजन, मसूढ़ों से मवाद और दुर्गन्ध आना तथा पाचन सम्बन्धी अनेक रोग दाँतों ही की खराबी से हुआ करते हैं; क्योंकि एक तो खाना भली प्रकार चबाया नहीं जा सकता दूसरे मसूढों का मवाद हर समय पेट में पहुँचा करता है और पेट को रोगों का केन्द्र बना देता है। जिन लोगों के दाँतों की यह हालत होती है उनके छोटे छोटे रोग भी कष्टसाध्य बल्कि असाध्य हो जाते हैं।

दाँतों के रोगों के कारण दो हैं। एक आहार की खराबी और दूसरे मुँह की गन्दगी। आहार द्वारा प्राप्त चूना और फास्फोरस विटामिन ए, सी और डी की सहायता ही से मनुष्य के दाँत बनते हैं। अतः यदि इनमें त्रुटि हुई तो दाँत कमजोर हो जाते हैं। मुह की सफाई न करने के कारण दाँतों के खराब होने के कारण यह हैं कि मनुष्य के मुँह में पेट से हर समय मैल आया करता है जो जीभ और दाँतों पर जम जाता है। यदि मुँह की सफाई भली प्रकार न हुई तो यही मैल कुछ तो फिर लौटकर पेट और आँतों में चला जाता है, और कुछ थूक के साथ मिल कर

सड़ता और तेजाब बन जाता है जो दाँतों के ऊपर की पालिश को काटकर दाँतों के भीतरी मुलायम भाग में खड्डे कर देता है। इन खड्डों में खाई हुई चीजें अँटक कर सड़ा करती हैं और दांतों की जड़ों में मवाद पैदा कर देती हैं, जो पेट में भी बराबर जाया करती हैं। बेएहतियाती से यह दशा दिनों-दिन बढ़ा करती है और कालान्तर में दांत रोगी होकर गिर जाते हैं और पाचन-शक्ति भी बिगड़ जाती है।

मनुष्य के दाँत चूना और फास्फोरस से बनते हैं और राजगीर का काम करते हैं विटामिन ए, सी और डी। आहार में चूने की कमी से दाँत देर में निकलते हैं या दांत इतने घने होते हैं कि एक दूसरेपर चढ़ जाते हैं और उनमें चमक और चिकनापन नहीं रहता है। फास्फोरस के अभाव से दाँत खुरदरे और मुलायम अतः कमजोर होते हैं। यदि आहार में विटामिन न हों तो चूना और फासफोरस होते हुये भी बेकार हैं क्योंकि वह शरीर में प्रवेश ही नहीं कर सकते वरन् मल के साथ निकल जाते हैं।

दांतों का बनना माता के गर्भ ही से शुरू हो जाता है। आगे के दांत चौथे और पाँचवें महीने में ही बनने लगते हैं और चौबड़ आटवें और नवें महीने में। इससे प्रत्यक्ष है कि माता के आहार का बहुत ही बड़ा प्रभाव बच्चे के दांतों पर पड़ता है। बच्चों की खिलाई का भी प्रभाव इससे कम नहीं पड़ता। इसलिये

गर्भवती माता और बच्चे के आहार में यह पाँचों चीजें अवश्य होनी चाहियें।

अमरीका के डाक्टर वंटिक और हैडले लिखते हैं कि उन्होंने एक स्कूल के कुछ विद्यार्थियों की ५ टोलियाँ बनाईं और उनमें से प्रथम २ टोलियों का भोजन दूध, मक्खन, शाक तथा अन्य उत्तम पदार्थ रक्खा और मुँह की सफाई का उत्तम प्रबन्ध रक्खा। ३ महीने के बाद देखा गया कि उनमें से केवल ५ प्रतिशत के दाँत खराब (खोखले) और ८० प्रतिशत के उत्तम बने रहे। तीसरी टोली को खाना तो खराब दिया गया परन्तु मुँह की सफाई का पहली ही टोली की तरह प्रबन्ध रहा। देखा गया कि इनमें ५० प्रतिशत के दाँतों में कीड़ा लग गया और केवल २५ प्रतिशत स्वस्थ बने रहे। चौथी टोली का भोजन साधारणतया अच्छा रहा परन्तु उतना अच्छा नहीं जितना पहली का, और मुँह की सफाई का कुछ प्रबन्ध न किया गया। इसमें भी ७५ प्रतिशत के दाँत स्वस्थ रहे, केवल ६ प्रतिशत के दाँत बिगड़े। पाँचवीं टोली को मामूली खाना दिया गया और मुँह की सफाई न रक्खी गई और इसमें ४६ प्रतिशत के दाँत बिगड़ गये, केवल १८ प्रतिशत के अच्छे रहे। इस प्रयोग से यह स्पष्ट है कि पहली दूसरी और चौथी टोलियों के दाँत अच्छे भोजन के कारण सफाई और बिना सफाई दोनों अवस्थाओं में स्वस्थ रहे, तीसरी और पाँचवीं के दाँत खराब भोजन के कारण दोनों अवस्थाओं में खराब रहे, और दोनों में सफाई की अपेक्षा गन्दगी में दाँत अधिक बिगड़े;

दाँतों को रोगों से बचाने के लिये निम्न लिखित बातों पर ध्यान रखना चाहिये।

(१) गर्भावस्था ही से स्त्री को वह चीजें जिनमे चूना, फास्फोरस और विटामिन ए, सी, और डी अधिक हों पर्याप्त मात्रा में लेना चाहिये। अतः खाने में दूध, घी, फल, हरे शाक और सम्पूर्ण अनाज का आटा मिलना चाहिये। मांसाहारी अण्डा, कलेजी और मछली के तेल का उपयोग कर सकते हैं। अमेरिका के डाक्टर फोन्स ने वहाँ के विद्यार्थियों के लिये जोर देते हुये लिखा है कि उन को बिना छना आटा, कनादार चावल, छिल्केदार दाल और लाल 'चीनी' के बने पदार्थ खाने का अभ्यास डालना चाहिये।

(२) दाँतों की सफ़ाई का ध्यान रखना चाहिये। सफ़ाई के लिये नीम और बबूल की दातून सर्वश्रेष्ठ होती हैं। ब्रुश का इस्तेमाल बड़ा हानिकारक है क्योंकि मुहँ की मैल और कीटाणु ब्रुश की जड़ में जम रहते हैं और दूसरे दिन फिर मुँह में जाते हैं और रोग पैदा करते हैं। ब्रुश बिना उबाले कभी न करना चाहिये। अमरीका का एक दाँत का डाक्टर लिखता है कि ९६% अमरीका वालों को दाँत के रोग होते हैं। परन्तु इसके विपरीत उस देश में नवागन्तुकों के अधिकांश बच्चे, जिनके दाँत बड़े मजबूत होते हैं, अमेरिका के पाठशालाओं में प्रवेश होने के पहले जानते ही नहीं कि ब्रुश कैसा होता है। अगर दातुन न मिले तो तीन भाग कोयला या खरिया मिट्टी और एक भाग

नमक कपड़छान कर उंगली ही से लगा लेना चाहिये। कडुआ तेल और नमक भी उतना ही गुणकारी है। कड़ी और मोटी (दरबरी) चीजों से दाँत कभी न साफ करना चाहिये नहीं तो दाँत की पालिश उतर जाती है और उनके शीघ्र खराब हो जाने की सम्भावना रहती है।

बच्चों के दाँत की सफाई का प्रश्न बड़ा कड़ा है। जब तक वे छोटे रहते हैं तब तक माता को स्वयं नमक और कडुवे तेल से उनकी जीभ, मसूढ़े और दाँत साफ करना चाहिये। सयाने होने पर उनमें अपने हाथों साफ करने की आदत डालनी चाहिये। ब्रुश की जगह, पहले से कुटी हुई दातून दी जानी चाहिये, क्योंकि बच्चे कूची नहीं बना सकते और इसी कारण दाँत भी नहीं साफ कर पाते और दातून करने से भागने लगते हैं।

(३) भोजन में कड़े पदार्थ काफी होने चाहियें, जिनके चबाने में दाँतों को परिश्रम करना पड़े और वे मजबूत हों। इस दृष्टि से बिस्कुट, पाव रोटी, चावल आदि खाने रोटी, दाल से अच्छे नहीं होते। बच्चों में शुरू ही से चबा कर खाने की आदत डलाना चाहिये।

(४) खाने के अन्त में कोई फल, शाक या कोई अन्य खट्टी या नमकीन चीज चबा चबाकर खा लेना चाहिये। इस से दाँत में चपकी हुई चीजे निकल जाती हैं।

(५) खाने के पहले और पीछे दाँत भली भाँति साफ करना

चाहिये। बच्चों के लिये विशेष सावधानी की जरूरत है क्योंकि वे बहुधा मिठाई आदि खाकर कुल्ला नहीं करते, जो अक्सर उन के दांतों की खराबी का कारण होता है। खाने के बाद पान खा लेना उपयोगी है, परन्तु अधिक नहीं और न तम्बाकू के साथ।

(६) अनपच से मुँह में मैल आती और दांतों को खराब करती है।

(७) गरम भोजन करने के बाद तुरन्त ठंढा जल न पीना चाहिये। यह दांतों को हिला देता है। अधिक गरम भोजन से भी दांत कमजोर हो जाते हैं।

२३—पाचनेन्द्रिय, पाचन शक्ति और पचनशीलता

हमारा शरीर रक्त, माँस, हड्डी का एक पिण्ड है और वह मसाले जिनसे वह बना है अर्थात् प्रोटीन, लवण, कर्बोज और वसा हमारे आहार से अर्थात् रोटी, दाल, भात आदि से आते हैं। परन्तु अब प्रश्न यह है कि इन पदार्थों से इन सब के पृथक पृथक होकर शरीर में प्रवेश करके रक्त, माँस, हड्डी तक पहुँचने का काम क्योंकर होता है।

यह हम जानते हैं कि हमारे शरीर की बनावट ऐसी नहीं है कि प्राकृतिक पदार्थ अपने असली रूप में शरीर के अन्दर प्रवेश कर के माँस या हड्डी बना सकें। इस लिये इन को शरीरोपयोगी रूप में बदलना पड़ता है। यही परिवर्तन-क्रिया पाचन कहलाती है।

शरीर के भीतर भोजन का पूर्ण पाचन दो जगहों पर होता है, एक तो पाचनेन्द्रिय में जिसमें मुँह, आमाशय, छोटी आँत, बड़ी आंत और मलस्थान शामिल हैं, और दूसरे रक्त में। साधारण बोली में पहले ही को पाचन कहते हैं, दूसरे का कुछ नाम नहीं है। वैज्ञानिक लोग इस रक्त के पाचन को औषदीकरण या जारण (Oxidisation) कहते हैं। स्वस्थ पाचन के अर्थ हैं दोनों में पूर्णता। प्रथम पाचन बिगड़ा तो मन्दाग्नि, शूल,

अतिसार, क़ब्ज़, अफरा आदि रोग पैदा हो जाते हैं और द्वितीय बिगड़ा तो गठिया, बाई, मधुमेह आदि रोग पैदा हो जाते हैं। यहाँ हम प्रथम ही पाचन के बारे में लिखेंगे। द्वितीय पाचन के सम्बन्ध में वायु के प्रकरण में लिखा जा चुका है।

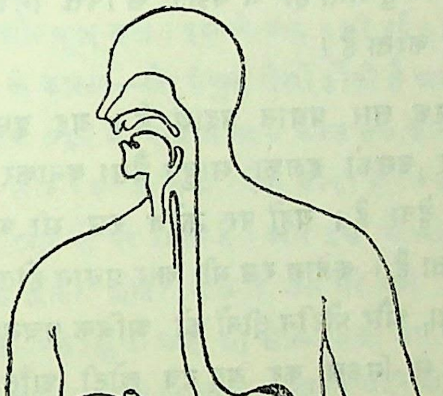
ज्यों ही भोजन हमारे मुँह में जाता है त्यों ही जीभ को स्वाद मिलने के कारण लार छूटने लगती है और इस की सहायता से दाँत उसे पीसने लगते हैं। लार एक प्रकार का पाचक रस है जिसका खाने के साथ मिलना पाचन के लिये अति आवश्यक है क्योंकि यह आहार के शर्करा पदार्थ को मुँह ही में पचाने लगती है। और उसे पचनशील रूप में बदल देती है। इसी कारण भोजन जितना ही चबाकर खाया जाता है उतना ही शीघ्र पचता है। इसके अतिरिक्त यह दाँतों को भोजन चबाने और गले को उसे निगलने में भी बड़ी सहायता देती है। लार जीभ के अगल-बगल और नीचे की गिल्टियों से, जो जीभ के नीचे या कानों के सामने और नीचे होती हैं, निकलती है।

अब यह पिसा हुआ और लार में सना हुआ द्रव भोजन की नली [1] द्वारा आमाशय में जाता है। आमाशय एक प्रकार का मशक होता है जिस में लगभग दो सेर सामग्री समा सकती है। यह पेट के ऊपरी भाग में बाईं ओर झुका होता है। इसके भीतरी

---

१ भोजन की नली सांस की नली से भिन्न है। भोजन करते समय बोलने या हँसने से भोजन कभी कभी सांस की नली में चला जाता है जिस से खांसी आ जाती है और दम घुटने लगता है।

और एक मुलायम झिल्ली होती है जिस के नीचे मुँह की तरह की अनेक गिलिटयाँ होती हैं। इन से बराबर नमक का तेजाब और पचायन (Pepsin) नामी पाचक रस निकला करते हैं। जब मुँह से निकल कर भोजन की नली होता हुआ यह द्रव नीचे



पाचन क्रिया

आमाशय में पहुँचता है तब वह इन दोनों रसों में सन कर आमा-

शय द्वारा ऐसा मथा जाता है कि उस के प्रोटीन, के कण भी टूट कर पचनशील रूप (Peptone) से बदल जाता हैं। परन्तु कर्बोज, और वसा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता इसके बाद वह द्रव आमाशय के दूसरी ओर के "द्वार" से निकल कर छोटी आँत में जाता है। परन्तु रास्ते ही में यकृत से पित्त निकल निकल कर इससे मिला करता है।

पित्त एक क्षार प्रधान पदार्थ है। यह इस द्रव के वसा से मिल कर उसको हलका साबुन जैसा बनाकर अधिक पचनशील कर देता है। यहीं पर क्लोम रस भी आकर इस द्रव से मिल जाता है। क्लोम रस भी क्षार प्रधान होता है। यह रस कर्बोज, वसा, और प्रोटीन तीनों को अधिक पचनशील बनाता है इस मार्ग से निकल कर यह द्रव छोटी आँत में जाता है। आँत एक तीस फीट लम्बी नली होती है परन्तु इतनी सुलझी हुई लिपटी रहती है कि बहुत थोड़ी जगह में आ जाती है। इस के भीतरी ओर भी एक पतली झिल्ली होती है जिस के नीचे जीभ के जड़ की गिल्टियों के समान छोटी छोटी गिल्टियाँ होती हैं और इन से बराबर ऊपर लिखे सभी तथा कुछ और पाचक रस निकला और उस गाढ़े द्रव में मिला करते हैं। इन दोनों रसों अर्थात् पित्त और आँत के पाचक रसों में सना हुआ पदार्थ आँतों द्वारा खूब मथा जाता है और अन्त में समस्त शरीरोपयोगी अंश—प्रोटीन लवण, वसा, और कर्बोज—शरीर में प्रवेश करने योग्य हो जाते हैं। श्वेत सार ग्लूकोज में बदल जाता है। प्रोटीन एमाइनो एसड

में बदल जाता है और वसा भी साबुन जैसा बन जाता है। लवण ज्यों के त्यों ही प्रवेश करते हैं।

अब आँत के छिद्र जो नन्हे नन्हे दानों के रूप में उभरे हुये होते हैं उन सब पदार्थों को सोख कर नसों द्वारा रक्त में पहुँचा देते हैं। इन छिद्रों में से कुछ प्रोटीन खींचते हैं, कुछ कर्बोज, कुछ वसा, कुछ विटामिन और कुछ जल। इस के बाद बची हुई रुज्जी (फोक) आँत की चाल के कारण—जो केचुये जैसी होती है अर्थात् पीछे से फूलना शुरू करके लहर के समान आगे अन्त तक जाती है—आगे ढकिल आती और बड़ी आँत में प्रवेश करती है। बड़ी आँत छोटी आँत को चारों ओर से घेरे रहती है। और इस में छोटी आँतो के दानों की जगह छोटी छोटी थैलियों जैसे घेरे बने रहते हैं। यहां छोटी आँतो का बचा-खुचा अंश भी सोख लिया जाता है और शेष मल के रूप में बाहर निकल जाता है। परन्तु बड़ी आँतों में पचाने के लिये पाचक रस नहीं होते। बल्कि यहां बेकटीरियां भोजन के कणों को तोड़ कर उन्हें पचनशील बना देती है। और पानी से मिलकर उसके पतला हो जाने पर बड़ी आँतो की थैलियां उसका पौष्टिक भाग सोख लेती हैं।

खाली आँतों में जो क्रिया होती है उसके कारण जो कष्ट मालूम होता है उसे क्षुधा या भूख कहते हैं।

पाचन के सम्बन्ध में जो ऊपर लिखा जा चुका है उस से यह भी प्रत्यक्ष हो गया होगा कि भारी, गुरू या देरपच पदार्थ उन्हें

कहते है जिनके प्रोटीन, कर्बोज और वसा ऐसे रूप में होते हैं कि आँतों को उनको ग्रहण करने योग्य रूप में लाने के लिये अधिक समय तक कड़ा परिश्रम करना पड़ता है। कुछ पदार्थ स्वभाव से ही गुरू होते हैं जैसे अरहई, उड़द, कटहल, आदि और कुछ पकाने की गड़बड़ी से ऐसे हो जाते हैं, जैसे पकवान आदि।

आहार की पचनशीलता

यह पिछले प्रकरण में बतलाया जा चुका है कि शुद्ध पाचन आमाशय के पाचन और रक्त के पाचन अर्थात् औषदीकरण, दोनों क्रियाओं को मिला कर कहते हैं और औषदीकरण का सम्बन्ध आमाशय के पाचन के अतिरिक्त प्रकाश, वायु और रक्त में उपस्थित क्षार से है। यहाँ इतना और जान लेना चाहिये कि रक्त में सब से पहले श्वेतसार (माँडी), जलता है, उसके बाद प्रोटीन उसके बाद शर्करा (मीठा) और सब से अन्त में वसा। सोते समय वसा अधिक देर में जलता है, और यदि कर्बोज अधिक हुआ तो और भी अधिक समय में। अधिक कर्बोज से प्रोटीन के जलने में भी देरी होती है। अतः आवश्यकता से अधिक कर्बोज रक्त के औषदीकरण में हानिकारक है।

पचनशीलता के दो अर्थ होते हैं; (१) सम्पूर्ण पाचन अर्थात् आहार के पौष्टिक अंशों का पूर्ण रूप से रक्त में चला जाना जैसे दूध का छेना लग भग ८५% पच जाता है। (२) पाचन में सुगमता

जिससे वे पौष्टिक अंश पचते हैं जैसे चावल यद्यपि पूर्ण रूप से नहीं पचता परन्तु शीघ्र पच जाता है । यह दोनों गुण प्रोटीन और कर्बोज की बनावट और पूर्ण आहार के अन्य अंशों की उपस्थिति पर निर्भर हैं ।

आहार की पचनशीलता के सम्बन्ध में निम्नलिखित सूचियाँ उपयोगी पाई जायगी :—

सूची १

पदार्थ का नाम	पचने की अवधि
दूध (कच्चा)	२ घंटा १५ मिनट
दूध (उबाला)	२ ,,
अंडा (कच्चा)	२ ,, ,,
अंडा (हलका उबाला)	३ ,, ,,
अंडा (अधिक उबाला)	३ ,, ३० मिनट
मुर्ग (भूना)	४ ,, ,,
,, (उबाला)	३ ,, १५ ,,
मांस (भूना)	३ ,, १५ ,,
मांस (उबाला)	३ ,, ,,
पनीर	३ ,, ३० ,,
मक्खन	३ ,, ३० ,,
चावल	१ ,, ,,
साबूदाना	१ ,, ४५ ,,
जौ	२ ,, ,,

मक्का (रोटी)	३ घन्टा	१५ मिनट
गेहूँ (रोटी)	३ ,,	३० ,,
आलू (उबाला)	३ ,,	३० ,,
आलू (भूना)	२ ,,	३० ,,
सेब	१ घंटा	३० मिनट
सेम	२ ,,	३० ,,
करम कल्ला	४ ,,	
गाजर	३ ,,	१५ ,,
शलजम	३ ,,	३० ,,
मुर्गी के बच्चे का शोर्बा	३ ,,	
,, मांस	३ ,,	३० ,,
जौ का पानी	१ ,,	३०
सेम का पानी	३ ,,	

ऊपर दिये समय बिल्कुल सही नही माने जाने चाहिये क्योंकि पाचन कई बातों पर निर्भर होता है।

यह भी देखा जा सकता है कि सब तरल भोजन ठोस भोजन से हल्का नही होता।

पशु

दाल

अन्य

साग

फल

साध

ों के

प्रत

प्रोटीन

मक्का (रोटी) ३ घण्टा १५ मिनट

दिनांक	सदस्य संख्या	दिनांक	सदस्य संख्या

३० ,,

३० ,,

३० ,,

३० मिनट

३० ,,

१५ ,,

३० ,,

३० ,,

३०

ाहिये क्योंकि

ठोस भोजन

सूची २

पचनशीलता की लब्धि

(कितने प्रतिशत पचता है)

	प्रोटीन	वसा	कर्बोज
पशु पदार्थ	९७%	९५%	९८%
दाल	७८ ,,	९०%	९७ ,,
अन्य अन्न	८५ ,,	९० ,,	९८ ,,
साग भाजी	८३ ,,	९० ,,	९५ ,,
फल	८५ ,,	९० ,,	९० ,,

साधारण मिश्रित भोजन कुल मिलाकर

	९२%	९५%	९८%

प्रत्यक्ष है कि पशु-पदार्थ के प्रोटीन का पाचन अन्न वर्ग के प्रोटीन के पाचन की अपेक्षा अधिक होती है।

सूची ३

भिन्न-भिन्न पदार्थों के प्रोटीन की शरीर के लिये उपयोगिता :—

पदार्थ	उपयोगिता	पदार्थ	उपयोगिता
जौ	७१	चौलाई	७५
ज्वार	८३	करम कल्ला	७६
बजरा	८३	सहजन की पत्ती	४१
सांवां आदि	७७	पोई की ,,	६७
मकाई (मुलायम)	६०	आलू	६७
मकरा	८६	शकरकन्द	७२
चावल	८०	भांटा	७१
गेहूँ सम्पूर्ण	६७	सेम की फली	५१
चना	७६	भिन्डी	८२
उरद	६४	काजू	७२
ज्वार की फली		गरी गोला	५८
या बोड़ा	६१	तिल	६७
मूंग	५१	अलसी	७८
कुलथी	५६	मूँग फली (कच्ची)	५८
मसूर	४१	,, (भूनी)	५०
अरहर	७४	अंडा	६४
सोया बीन	५४	दूध (गाय का)	८५

पचनशीलता में सहायक साधन

हमारे भोजन के पचने की पूर्णता और सरलता निम्नलिखित बातों पर निर्भर है :—

(१) पाचनेन्द्रिय का स्वास्थ्य (२) खाद्य पदार्थों के स्वाभाविक गुण (३) मिश्रित भोजन (४) भोजन की मात्रा (५) भोजन पकाने का प्रभाव (६) खाद्य पदार्थों की दशा (७) भोजन का चबाना (८) भोजन में अम्ल और क्षार (९) भोजन का स्वाद (१०) भोजन का समय (११) भोजन के समय जल का सेवन (१२) भोजन के समय की मनोवृत्ति (१३) भोजन के पश्चात की आवश्यकताएँ ।

(१) पाचनेन्द्रिय का स्वास्थ्य—यह एक प्रत्यक्ष बात है कि पाचनेन्द्रिय का स्वास्थ्य पूर्ण और सरल पाचन के लिये पहली आवश्यकता है । यह स्वास्थ्य बहुत कुछ उत्तम आहार पर निर्भर है; जैसे यदि विटामिन बी का अभाव है तो आँतों के कोषाणु ढीले और दुर्बल हो जाते हैं; अपना काम ठीक प्रकार से नहीं करते, आहार का उपयोगी अंश भली प्रकार और उचित मात्रा में नहीं खींचते, भूख मर जाती है, पेट भारी जान पड़ने लगता है, बाहर निकल आता है, फूलता है, कब्ज, सिर दर्द, मुँह में दुर्गन्ध तथा अन्य ऐसे रोग हो जाते हैं जो शारीरिक स्वास्थ्य को बिगाड़ कर पाचन शक्ति को और भी बिगाड़ते हैं । विटामिन ए न हुआ तो खुश्की के कारण आँतों में खराश हो जाते हैं और रोगों के कीटाणु शरीर में प्रवेश-मार्ग पा जाते हैं । विटामिन सी न हुआ तो उक्त दानों

विटामिनों की क्रिया पूर्ण रूप से नहीं हो पाती। इसी प्रकार यदि प्रोटीन उत्तम प्रकार का या उचित मात्रा में न पहुँचा तो आँतों के कोषाणुओं का मसाला ठीक से न पहुँचने के कारण आँतें कमजोर रह जाती हैं, उनमें खून का दौरा ठीक से नहीं होता, उनमें पाचक रस भली प्रकार नहीं निकलते और रोग के कीटाणु आँतो में, उनकी कमजोरी के कारण, जल्दी घुस जाते और अनेकानेक शारीरिक विकार पैदा करते हैं।

(३) मिश्रित भोजन—बहुधा कई पदार्थों को मिलाकर खाने से भोजन शीघ्र और पूर्णतया पचता है, जैसे दूध और गेहूँ अकेले अकेले देर में पचते हैं परन्तु एक ही साथ खाने से अधिक और शीघ्र पचते हैं। दाल अनाज आदि का प्रोटीन हेठे प्रकार का होता है और पूरी तरह नहीं पचता, परन्तु दूध के साथ से वह शीघ्र पचता है। इसका कारण यह है कि एक पदार्थ में किसी अंश की अनुपस्थिति दूसरे पदार्थ से पूरी हो जाती है और वह अंश जो अकेले में अनपचा निकल जाता इस दूसरे पदार्थ की उपस्थिति में सम्पूर्ण पच जाता है। भोजन के साथ अथवा पश्चात् दूध का सेवन अति ही गुणकारी है क्योंकि यह सभी कमी को पूरा कर देता है। परन्तु आयुर्वेद में निम्नलिखित पदार्थों का मेल वर्जित है :—

शहद और घी—सममात्रा में......विषैला हो जाता है।

,, ,, मूली ,, ,, मट्ठ ,, ,, खिचड़ी	.... पाचन विकार पैदा करते हैं।

गरम दूध के साथ शहद	...रेचक होता है
केला के साथ दही	...पाचन विकार पैदा करता है।
गरम चीज के साथ दही	...पाचन विकार पैदा करता है।
दूध के साथ खटाई, नमक, कुलथी, मूली, लहसुन,	...पाचन और रक्त-विकार पैदा करते हैं।
उड़द के साथ मूली, बड़हल और कटहल..........	...पाचन और रक्त-विकार पैदा करते हैं।
दूध के साथ मछली या मांस	देर में पचता है और रोग पैदा करता है।
घी और तेल सम मात्रा में	...पित्त बिगाड़ता है।

दूध के साथ खटाई या मांस मछली से उसका छेना कड़ा हो जाता है और देर में पचता है। यह डाक्टर भी मानने लगे हैं।

वैज्ञानिकों की राय में भी मांडी वाले पदार्थों के साथ खटाई न खाना चाहिये। मांडी क्षार रस पाकर पचती है और प्रोटीन के लिये अम्ल रस चाहिये। इस दृष्टि से कचालू हानिकारक होता है और दाल में आम डालकर खाना उपयोगी दुर्बल पाचन में इनसे विशेष हानि पहुंचती है।

यहां हमें यह भी जान लेना चाहिये कि शुद्ध और शीघ्र पाचन प्रोटीन, कर्बोज और वसा के अनुपात पर भी निर्भर है। सन्तुलित भोजन शीघ्र पचता है। साधारणतया पेट में पहले कर्बोज पचता है, उसके बाद प्रोटीन और कर्बोज का संमिश्रण, उसके बाद प्रोटीन और वसा का संमिश्रण, और सब से अन्त में

वसा। इसलिये घी और तेल की पकी चीजें या घी और तेल में चुपड़ी चीजें और अधिक घी, तेल देर में पचते और पाचन बिगाड़ते हैं।

दुर्बल पाचन वालों को प्रोटीन प्रधान पदार्थों के साथ मांड़ी प्रधान पदार्थ विपरीत पड़ते हैं और मांड़ी प्रधान चीजों के साथ अम्ल फल विपरीत पड़ते हैं। क्योंकि प्रोटीन के पाचन के लिये अम्ल माध्यम चाहिये और कर्बोज के पाचन के लिये क्षार माध्यम चाहिये। चिकनाई और शाक भाजी दोनों के साथ अनुकूल होते हैं। इसी लिये मन्दाग्नि के रोगी को रोटी दाल की अपेक्षा रोटी साग अधिक उपयोगी होगा। मांस की जगह शोर्बा खाया जाना चाहिये। दाल और खटाई का साथ है परन्तु कचालू में आलू और खटाई का विपरीत मेल है। अधिक समय तक विपरीत भोजन करते रहने से कम परिश्रम करने वालों का पाचन भी बिगड़ जाता है।

(४) भोजन की मात्रा--पाचन की पूर्णता और सरलता के लिये तीसरी आवश्यकता भोजन की मात्रा है। अधिक मात्रा में खाने से खाद्य पदार्थों का प्रोटीन और वसा कम पचता है और देर में पचता है। देखा गया है कि पशुओं को अधिक मात्रा में दूध और रुई खिलाने से साधारण की अपेक्षा प्रोटीन ७ प्रतिशत और वसा ६ प्रतिशत कम पचता है। इस लिये अधिक खाना कोई अच्छी बात नहीं है। खाना उतना चाहिये जितना शरीर में में जल जाय। अधिक खानेवालों के मल-मूत्र में अधिक दुर्गन्ध

होती है क्योंकि इनमें अनपचा और सड़ा भाग रहता है। परन्तु साथ ही साथ आवश्यकता से कम खाना भी हानिकारक है। यह पाचन की दुर्बलता लाता है और स्वभाव को लालची, निरुत्साही और चिड़चिड़ा बना देता है।

(५) भोजन पकाने का प्रभाव—पकाने से पदार्थों पर चार प्रकार का प्रभाव पड़ता है (१) उसके प्रोटीन, वसा, कर्बोज और लवण ऐसे ढीले हो जाते हैं कि पेट के पाचक रस का प्रभाव उन पर शीघ्र पड़ता है (२) उसके प्रोटीन, वसा और कर्बोज के कण कुछ ऐसे बदल जाते हैं कि बाहर ही से अधपचे से हो जाते हैं और पेट में कम पाचक रस और आँतों के कम परिश्रम पर भी कम ही समय में पूर्णतया पच जाते हैं (३) उसके कीटाणु, जो पेट में जाकर विकार पैदा करते और पाचन में बाधक होते, मर जाते हैं और (४) भोजन में स्वाद आ जाता है।

उक्त लाभ पूर्णतया पानी में या पानी के साथ साधारण रूप में पकाने से मिलते हैं। मांड़ीदार पदार्थ जैसे चावल, आलू जितने ही गलाए जाते हैं उतने ही पचनशील हो जाते हैं। बहुत तेज आँच में ज्यादा पकाने से प्रोटीन कुछ कम पचनशील हो जाता है। इसी कारण दाल और मांस ज्यादा पकने से कम पके अच्छे होते हैं। बहुत तेज आँच से कर्बोज भी कुछ जल कर कम उपयोगी हो जाता है, और वसा का कुछ भाग उड़ जाता है। सूखी आँच में पकाने से जैसे भाड़ में या कड़ाही में भूनने से प्रोटीन के कण फट जाते और कम उपयोगी और देरपच हो जाते हैं। कर्बोज

और वसा भी जल कर कम उपयोगी हो जाता है। देखा भी जाता है कि कड़ाहा में पकाने से चीनी और घी दोनों लाल हो कर जल जाते और स्वाद रहित हो जाते हैं। घी में पकाई चीजों के गरिष्ठ हो जाने का कारण यह है कि एक तो उनके प्रोटीन और कर्बोज देरपच हो जाते हैं और दूसरे चिकनाई में लपटे होने के कारण पाचक रसों का प्रभाव उन पर शीघ्र नहीं पड़ता।

कुछ लोग अग्नि-पाकी भोजन के अनुकूल नहीं हैं। उनका कहना है कि सूर्य की पराकासनी किरणें आग पर पकाने से निकल जाती हैं। अतः उन चीजों की पचनशीलता कम हो जाती है और मनुष्य की पाचनेन्द्रिय भी दुर्बल हो जाती है। उनकी यह दलील युक्तिसंगत मालूम होती है। अतः कम से कम जो पदार्थ मनुष्य के स्वभाव और स्वाद के अनुकूल पड़े उनको तो सूर्य का पका खाना ही चाहिये। अमीरों की नकल कि गाजर की जगह गाजर का हलुआ, और सेब की जगह सेब का मुरब्बा खाया जाना कदापि उचित नहीं है।

(६) **खाद्य पदार्थों की दशा**—आहार के कण जितने बड़े होते हैं पाचक रस उनको उतना ही कम गला और पचा सकते हैं और जितने ही महीन होते हैं उतना ही अधिक पचा सकते हैं। इस दृष्टि से आटा दलिया से अधिक पचता है और मैदा आटा से अधिक। इसके अतिरिक्त दरदरी चीजों के खाने से आंतें भी फूलकर बड़ी हो जाती हैं और आहार कुछ कम

पचा ही मल रूप में निकल जाता है; परन्तु फोक पदार्थों से एक बड़ा भारी लाभ यह होता है कि मल सुगमता से नीचे ढकिल जाता है। वह अधिक समय तक रहकर सड़ता नहीं और न कब्ज ही करता है। चोकरदार आटा और शाक की उपयोगिता का एक यह भी कारण है। चोकर शोषक कागज के समान पेट के अन्दर के विष को सोख लेता है और अपने साथ बाहर निकाल देता है। नहीं तो यह पेट में रह कर सारा स्वास्थ्य और विशेष कर पाचन शक्ति दुर्बल करे। अतः आहार न तो बहुत फूला हुआ होना चाहिये और न बिलकुल बारीक। बैठ कर काम करनेवालों के आहार में मोटे पदार्थ अधिक होने चाहियें। मजदूर बहुत महीन आटा भी भली प्रकार पचा सकते हैं। बल्कि उनके लिये अधिक उपयोगी होता है। क्योंकि एक साथ में वह अधिक खा सकते हैं और वह पेट में "ठहरता" भी है। इसी कारण मजदूरों को मैदा, खोआ, सत्तू आदि गरिष्ठ पदार्थ हानि नहीं पहुंचाते। परन्तु दिमागी काम करने वालों के लिये यह हानिकारक सिद्ध होते हैं।

घी, तेल के पकाये पदार्थ भी देरपच होते हैं।

भोजन का चबाना—जैसा ऊपर लिखा जा चुका है चबाने से एक तो उसके कण टूट जाते हैं जिन पर पाचक रसों का प्रभाव शीघ्र पड़ता है और दूसरे मुँह की लार पाचन में सहायता करती है। यदि खाना खूब चबाकर खाया जाय और भूख लगने ही पर खाया जाय तो अनपच सम्बन्धी किसी भी रोग का डर

नहीं रहता। आजकल मन्दाग्नि और वज़न के बढ़ने का एक मुख्य कारण खाना खाने में जल्दबाज़ी भी है।

(७) खाद्य पदार्थों के स्वाभाविक गुण—कुछ खाद्य पदार्थों में ऐसे रासायनिक पदार्थ होते हैं जिनमें कुछ विशेष गुण होते हैं, जैसे टैनिन काबिज होता है इसी से चाय काबिज होती है। कुछ उड़नशील तैल, जैसे गेहूँ का तैल, रेचक होते हैं और कुछ क्षार जैसे नौसादर, स्नायु केन्द्र में उत्तेजना पैदा करते हैं। गेहूँ की दलिया या चोकरदार आटे से बीज, जिसमें वह तेल होता है, निकलता नहीं। इसलिये वे वज़न नाशक होते हैं। फल, विशेषकर खट्टे, तरकारियाँ तथा काष्ठादिक औषधियाँ इन गुणों के कारण भी उपयोगी होती हैं।

जो खाद्य पदार्थ जितने ही अच्छी जाति के और वे जितनी बढ़ती हुई दशा में होंगे वे उतने ही पचनशील और पौष्टिक भी होगे। ताजी और कोमल तरकारियाँ पुरानी कड़ी तरकारियों से अधिक पचनशील होती है। नया अनाज पुराने अनाजों से अधिक, अंकुर निकले हुये चने साधारण चनों से अधिक पचनशील होते हैं। इन सब का कारण यह है कि जो चीज ताज़ी और बढ़ती दशा में होगी वह खाने वाले के शरीर में ताजगी और बाढ़ पैदा करेगी।

कुछ पदार्थों के अवयव-प्रोटीन कर्बोज और वसा—ऐसी मात्रा और ऐसे रूप में होते हैं कि उनके पचाने में आँतों को साधारण से अधिक परिश्रम करना पड़ता है जैसे अरुई, कटहल आदि।

बहुधा अनिश्चित समय पर भोजन करने के दुष्परिणामों को पाचन-शक्ति की दुर्बलता कहा जाता है।

(८) भोजन में क्षार और अम्ल—भोजन में क्षार और अम्ल दोनों रस होने चाहिये क्योंकि शुद्ध पाचन के लिये इन दोनों की आवश्यकता पड़ती है; परन्तु इनमें भी क्षार ८० प्रतिशत चाहिये और अम्ल केवल २० प्रतिशत। अधिक अम्ल अम्ल-पित्त आदि रोग पैदा कर देता है। परन्तु कम होने से पाचक रस कम बनता है। अधिक क्षार आमाशय के पाचन और रक्त के ओषदीकरण में सहायता देता है।

(९) भोजनका स्वाद—जैसा लिखा जा चुका है भोजन के स्वादिष्ट होने से पाचन में बड़ी सहायता मिलती है क्योंकि स्वादिष्ट भोजन खाने से मुँह में लार और पेट में पाचक रस अधिक निकलते हैं जो पाचन के लिये अनिवार्य हैं। इसलिये स्वास्थ्यकारक भोजन बनाने में स्वाद का भी ध्यान रखना चाहिये। परन्तु आवश्यकता और उपयोगिता के ऊपर स्वाद की प्रधानता पा जाना बड़ा ही हानिकारक होता है। अतः स्वाद का खयाल इन दोनों के बाद आना चाहिये। केवल स्वाद के लिये खाना या खिलाना प्रकृति के साथ अन्याय है।

(१०) भोजन का समय—जैसे नियत समय पर शौच जाने से शौच साफ़ होता है, सोने से निद्रा खूब आती है, वैसे ही नियत समय पर भोजन करने की बान डालने से अपने समय

कर भूख खूब लगती है। उस समय का खाया हुआ पचता भी खूब है क्योंकि उस समय पाचक रस अधिकता से निकलते हैं।

भोजन दिन में दो ही बार करना चाहिये, सवेरे ११ और १२ के बीच में और सायंकाल ७ और ६ के बीच में। रात में २ बजे से आरम्भ होकर १ बजे दिन के पहले पित्त का वेग बढ़ता रहता है इस लिये यदि ११, १२ बजे दिन में भोजन किया गया तो पित्त के वृद्धि की समय ही में पचने की काफी क्रिया हो जाती है अतः भोजन पचता खूब है। रात्रि में पित्त कम रहता है अत; कम खाना चाहिये। सोने के लगभग दो घंटा पहिले खाना चाहिये क्योंकि सोते समय रक्त का प्रवाह शरीर के त्वचा की ओर होता है, पेट में नहीं। इसलिये पाचनेन्द्रिय अपनी क्रिया भली प्रकार नहीं करती। सोने के पहले दूध पी कर सोना पचन की दृष्टि से अच्छा नहीं। उसकी चिकनाई अनपची ही निकल जाती है।

तीसरे पहर हल्का जलपान भी आवश्यक है। प्रायः ६ घंटे में भोजन का परिपाक भली प्रकार हो जाता है। उस समय पेट में कुछ न पहुँचने से शरीर की चर्बी जलने लगती है और मनुष्य कालान्तर में दुबलता और मन्दाग्नि का शिकार बन जाता है। परिश्रमी लोगों और बालकों के सम्बन्ध में इसका विशेष ध्यान रखना चाहिये। बालकों को चार या कहीं कहीं ५ बार खाने की आवश्यकता पड़ती है क्योंकि उनकी तीव्र जठराग्नि और बढ़ता हुआ शरीर अधिक भोजन मांगता है। परन्तु समय उनका भी निश्चित

होना चाहिये। किसी भी अवस्था में दो भोजनों के बीच में सिवाय जल के अन्य कोई पदार्थ जैसे मीठा, चाट-चटपटा आदि न दिया जाना चाहिये। ऐसा करना बच्चों को सयानी तक में मन्दाग्नि का रोगी बनाने का प्रथम पग है। पुराने समय में इसकी मनहाई इतनी कड़ाई के साथ न थी क्योंकि उन दिनों में प्रलोभन की इतनी सामग्री प्राप्य ही न थी।

बड़े परिश्रम और सफर के बाद तुरन्त न खाना चाहिये। कुछ समय आराम करके तब भोजन पर बैठना चाहिये। बच्चों को व दुर्बल पाचन वालों को १५ मिनट आराम करके तब भोजन करना चाहिये। उपवास या भूख मर जाने पर पहले कोई हल्की चीज खाकर क्षुधा बढ़ाकर भोजन करना चाहिये। गरम पानी पी लेने से भी भूख उत्तेजित हो जाती है।

(११) भोजन के समय जल का सेवन—आहार को भली प्रकार मथने और उसके उपयोगी अंश को ग्रहण करने के लिये आमाशय और आँतों को पानी की आवश्यकता पड़ती है क्योंकि आँते ठोस पदार्थ नहीं ग्रहण कर सकतीं। जैसे पानी ही की सहायता से पौधे अपना अपना आहार खींच सकते हैं वैसे ही पानी पाकर आँतें भी पौष्टिक अंश खींच पाती हैं। यदि जल ठीक समय पर और पर्याप्त मात्रा में न पहुंचा तो पदार्थ देर में पचते हैं और फिर भी कुछ भाग अनपचा ही निकल जाता है। परन्तु यदि जल बराबर मिलता गया तो यह कुल भली प्रकार पच जाता है। भोजन करते समय अधिक जल न पीना चाहिये क्योंकि

अधिक जल पाचक रसों को पतला कर देता है। इससे वह भोजन को भली भाँति गलाने और उसके साथ गये रोगों के कीटाणुओं को मारने के योग्य नहीं रह जाता। दूसरे, जल के बोझ से भोजन अनपचा ही छोटी आँत में चला जाता है और उस पर बोझा डालता है। इसलिये जल दो खानों के बीच में कई बार थोड़ा थोड़ा करके काफी मात्रा में पीना चाहिये। इससे भोजन बराबर घुला और पचा करता है और भोजन का अधिक उपयोगी अंश शरीर के काम आ जाता है। इसके अतिरिक्त जल से दो और लाभ हैं। एक तो आँतें जल के सहारे सरलता से मल नीचे ढकेल सकती हैं जिससे पेट में सड़न और कब्ज नहीं होने पाता और दूसरे आँतों में उत्पन्न अम्लता पानी में घुल कर मूत्र द्वारा निकल जाती है। यदि यही दोनों क्रियाएँ भली प्रकार न हों तो अन-पच, कब्ज, मन्दाग्नि, रक्त-विकार आदि रोग हो जायें।

जल दिन रात में कम से कम २-३ सेर अवश्य शरीर के अन्दर जाना चाहिये। सवेरे निराहार मुँह, सवेरे और सायंकाल के भोजनों के बीच में और रात्रि में सोते समय बिना प्यास के भी जल पीना चाहिये। इस से पचाव और कब्ज दोनों में सहायता मिलती है। मन्दाग्नि की अवस्था में भोजन के आध घंटा पहले गुनगुना जल अधिक उपयोगी होगा क्योंकि यह आँतों को उत्तेजित कर देता है। कमजोर आदमियों को सर्दी में सर्दी से बचने के लिये गरम जल पीना चाहिये। एक साथ बहुत अधिक जल पीने से कुछ शरीरोपयोगी लवण घुल कर अनपचे ही

निकल जाते हैं जो शरीर के लिये हानिकारक होता है और मूत्र की थैली के लिये भी। वैज्ञानिकों की राय है कि आजकल के बहुत से रोग कम जल पीने ही के कारण होते हैं और अच्छे भी देर में होते हैं।

(१२) भोजन के पश्चात् की आवश्यकताएँ—भोजन करने के बाद पेशाब करना चाहिये फिर सौ कदम तक टहलना चाहिये। उसके बाद बाँये करवट, फिर चित्त, फिर दाहिने करवट चन्द मिनटों तक लेट लेना चाहिये। पेशाब करने से गर्मी निकल जाती है और प्रमेह आदि रोगों का भय नहीं रहता। चल कर या योंही करवट बदल लेने से पेट में एकत्रित मल नीचे को हटता है और वायु निकल जाती है। छोटे बच्चों को दूध पिलाने के बाद करवटें अवश्य बदला देना चाहियें।

भोजन के पश्चात् तेज चलना, तथा अन्य कोई भी शारीरिक श्रम का काम करना, घाम लेना, आग तापना, नहाना, सोना, मैथुन करना, पढ़ना, बहुत हँसना और गाना वर्जित हैं। यह उस समय के पाचन और जठराग्नि दोनों के लिये अति हानिकारक होते हैं क्योंकि इनमें रक्त का दौरा बाहर की ओर को होने लगता है। यह अभाग्य है कि आजकल खाने के तुरन्त बाद स्कूल या आफिस के लिये दौड़ना पड़ता है जो वास्तव में मृत्यु को निकट बुलाने के तुल्य है।

खाने के बाद पेट पर कड़ी पेटी या कसी धोती भी न बांधना चाहिये। इस से आंतों की क्रिया में बाधा पड़ती है। इस लिये

न तो भोजन ठीक मे पचता है और न वह नीचे ढकिल सकता है। अतः अनरुच, मन्दाग्नि और कब्ज पैदा करता है।

हँसने से आँतों की कसरत होती है और पाचन-शक्ति बढ़ती है। अंग्रेजी कहावतें हैं, "हँसो और मोटे हो," "जो हँसता है वह बिना डिग्री का डाक्टर है"। परन्तु खाने के बाद तुरन्त जोर से हँसना पाचन में हानि पहुँचाता है।

(१३) **भोजन के समय की मनोवृत्ति** – शोक, चिन्ता, क्रोध, प्रसन्नता आदि मानसिक भावों का बड़ा गहरा प्रभाव मनुष्य के पाचन पर पड़ता है। हम देखते हैं कि शोक, क्रोध और चिन्ता के समय प्रिय से प्रिय और स्वादिष्ट से स्वादिष्ट भोजन को देख कर भी खाने की इच्छा नहीं होती और मुह में लार नहीं आती। इसके प्रतिकूल चित्त की प्रसन्नता के समय साधारण भोजन की ओर भी मन लपकने लगता है। डा० कहु ने लिखा है कि प्रसन्नता से पित्त का निकलना कुछ बढ़ जाता है और क्रोध से बिलकुल रुक जाता है। घृणा से या ऐसी परिस्थित में जहाँ मक्खी आ जाय पित्ताशय सिकुड़ जाता है और कुछ समय तक ऐसा होते रहने से पाडु रोग हो जाता है। इस लिये बुरे मनोभावों के समय भोजन न करना चाहिये और यदि करना ही पड़े तो मात्रा से कम और गरम गरम। शुरू में गरम पदार्थ खाने से आँतें उत्तेजित हो जाती हैं और आँतों की क्रिया कुछ संभल जाती है। भाग दौड़ में, शोर-गुल में या पढ़ते पढ़ते या दूसरे काम करते भी भोजन न करना चाहिए। माता का प्रेम से भोजन बनाना और

करना और भोजन के समय मधुर संगीत का गाना हमारे यहाँ की संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग है।

भोजन सम्बन्धी धारणायें भी—सच हों या झूठ-पाचन में सहायक या बाधक होती हैं। हेरी सनडर महोदय लिखते हैं कि मैंने कुछ मनुष्यों को मक्खन और मारगेरीन—नकली मक्खन—खिलाकर परीक्षा किया जिससे यह परिणाम निकला कि मक्खन को मारगेरीन कह कर खिलाने से उसका पाचन ५ प्रतिशत घट गया और मारगेरीन को मक्खन कह कर खिलाने से उसका पाचन ६ प्रतिशत बढ़ गया। अर्थात पाचन और विचार बल में—क्योंकि धारणायें विचारों ही के रूप हैं—बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है।

ठंढे और गरम भोजन का भी बहुत प्रभाव शुद्ध पाचन पर पड़ता है। ठंढा भोजन करने से आमाशय के पाचक रस तेजी से नहीं निकलते परन्तु बहुत गरम भोजन भली प्रकार चबाया नहीं जा सकता और पेट के श्लेष्मक झिल्ली को अधिक उत्तेजित करते करते निर्बल बना देता है जिससे मन्दाग्नि रोग हो जाता है।

भाग ४

२४—दूध

बच्चों के लिये दूध सर्वाङ्ग सम्पूर्ण पदार्थ है। सयानों के लिये भी यह अन्य पदार्थों का एक अनिवार्य पूरक है। और यद्यपि यह अपनी न्यूनताओं के कारण अधिक समय तक एक मात्र खाद्य पदार्थ के रूप में सेवन के लिये सम्पूर्ण पदार्थ नहीं है, फिर भी अनाज, तरकारी आदि की कमी पूरा करने के लिये एक मात्र साधन है। सुश्रुत में लिखा है, दूध सारे चेतन प्राणियों के लिये लाभप्रद है और चूँकि यह धार्मिक जीवन के सिद्धान्तों के अनुकूल है इसलिये सृष्टि के सारे प्राणियों के लिये यह रुचिकर है और इसका उपयोग सभी को करना चाहिये।" अमेरिकन वैज्ञानिकाचार्य प्रो० मेकालम लिखते हैं—"इस दृष्टि से दूध एक आदर्श पदार्थ है।" इसका प्रोटीन उत्तम प्रकार का होता है जिसके उपस्थिति में अन्य समस्त पदार्थों के प्रोटीन चाहे वह किसी भी अनाज तथा अन्य खाद्य पदार्थ के हों पच कर शरीरोपयोगी बन जाते हैं। इसलिये जो दूध खाते हैं वे कोई भी अनाज खाकर अपनी आवश्यकता भर प्रोटीन पा सकते हैं। लवणों में इसमें पचीसों लवण होते हैं और कुल के १ प्रतिशत अर्थात् सवा सेर दूध में १ तोला लवण होते हैं।

इनमें से २३ अर्थात् सिवाय लोहे और तांबे के अन्य सब लवण बिल्कुल ठीक मात्रा में होते हैं, न कोई आवश्यकता से अधिक और न कम। खटिक और स्फुर जो दाँत तथा हड्डी बनाने के मुख्य अंश हैं इसमें सबसे अधिक मात्रा में और सब से अधिक शरीरोपयोगी रूप में होते हैं। चूना और फास्फोरस में सिवाय हरे शाक के अन्य कोई पदार्थ दूध की बराबरी नहीं कर सकता। परन्तु पचनशीलता को देखते हुये दूध उनसे कहीं श्रेष्ठ है। यही कारण है कि दूध पीने वाले बच्चों के शरीर को हड्डियों की बाढ़ बहुत अधिक होती है और दाँत शीघ्र और मजबूत निकलते हैं। दूध में लोहे और तांबे की कमी रहती है, परन्तु ये बच्चों में पैदायशी इतने होते हैं कि कुछ समय तक—१साल की अवस्था तक—उन्हें बाहर से इनके लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती। सयानों में अनाज, शाक-भाजी इस कमी को पूरा करते हैं। अधिक पकाये दूध में आयोडीन भी कम हो जाता है और यह लवण दूध के पाचन के लिये बहुत जरूरी है।

दूध में छओं विटामिन होते हैं। विटामिन ए और एच बहुत अधिक होते हैं। उससे कम विटामिन बी, डी और ई और सबसे कम विटामिन सी।

पशु के आहार का प्रभाव दूध पर बहुत पड़ता है। आहार के विटामिन ए, बी, ई और एच बहुत कुछ दूध में आ जाते हैं। विटामिन डी भी काफी आ जाता है परन्तु विटामिन सी बहुत कम हो जाता है। अतः जिस गाय, भैंस के आहार में हरे पदार्थ तथा

अन्य विटामिन वाले पदार्थ होंगे और जो प्रतिदिन कुछ समय घाम में रहेंगी उनके दूध में छओं विटामिन पर्याप्त मात्रा में होंगे। स्त्रियों के सम्बन्ध में भी यही नियम लागू है। शहर की थान पर बंधी खली भूसी खाने वाली गायों का दूध देहाती गायों के दूध से इसी कारण खराब होता है। परन्तु देहात में भी यदि हरा चारा न मिले, जैसा कि बहुधा गरमी में हो जाता है, तो उनका दूध शहर वाले पशुओं के दूध से खराब होता है। जिन माताओं के आहार में दूध, घी, फल, शाक आदि पदार्थों के स्थान पर मिठाई, पाक-पकवान आदि पदार्थ अधिक होते हैं उनका भी दूध खराब हो जाता है जो बच्चों को रोगी कर देता है।

बच्चे के लिये माता का दूध सर्वोत्तम पदार्थ है क्योंकि इसमें उनकी आवश्यकता के समस्त अंश समुचित मात्रा में पाये जाते हैं। इसके बाद गाय के दूध का स्थान है। तीसरा नम्बर बकरी के दूध का है।

बकरी के दूध में गाय के दूध की अपेक्षा अधिक प्रोटीन, वसा और वंलारी होते हैं परन्तु इसका प्रोटीन गाय के दूध के प्रोटीन से कम अच्छा होता है। बच्चों के लिये खालिस बकरी का दूध बहुत भारी पड़ता है। और इसमें एक ऐसा अम्ल होता है जो शरीर में पूरी तरह गलता नहीं। अतः इसे गाय के दूध की अपेक्षा अधिक पतला करके बच्चों को देना चाहिये और रोगी अवस्था में विशेषकर। विटामिन ए और डी की कमी के कारण उत्पन्न रोगों में जैसे आँख की खराबी, खाँसी, राजयक्ष्मा और

हड्डी के रोगों में बकरी का दूध गाय के दूध से श्रेष्ठ पड़ता है। अब डाक्टर लोग भी वैद्यों की इस राय से सहमत हैं कि राजयक्ष्मा में बकरी का दूध गाय के दूध से अधिक गुणकारी है क्योंकि बकरी के दूध में इस रोग के कीटाणु नहीं रहते। हमारे यहां आज-कल बकरी का दूध हलकी दृष्टि से देखा जाता है परन्तु यह भूल है।

भैंस के दूध में गाय के दूध का ड्योढ़ा प्रोटीन और दुगना मक्खन होता है अतः यह बहुत ही गरिष्ठ होता है और साधारण पाचन-शक्ति रखने वालों को भला भांति पच नहीं सकता। उनके पेट में वायु पैदा करता है और अनपचा-वसा शरीर में इकट्ठा हो जाता है इसलिये उन्हें इसमें पानी मिलाकर काम में लाना चहिये। परिश्रमियों को असली दूध भी हानि नहीं करता। इसका प्रोटीन गाय और बकरी दोनों के दूध से मोटा होता है इसलिये यथा-सम्भव बच्चों को भैंस का दूध न दिया जाना चाहिये।

मक्खनिया (क्रीम निकाले) दूध का भी आजकल बड़ा अनादर है परन्तु यह असली दूध से सिवाय मक्खन और विटामिन की कमी के अन्य किसी दृष्टि से कम नहीं है। दूध के समस्त लवण, प्रोटीन, कर्बोज और कुछ विटामिन ए और बी भी इसमें रह जाते हैं। अतः जिन्हें असली गाय का दूध न मिले या महंगा होने के कारण उनके सामर्थ्य के बाहर हो उन्हें बकरी, भैंस, या मक्खनिया दूध अवश्य खाना चाहिये।

शरीर की बाढ़ और पुष्टि की दृष्टि से दूध की बराबरी करने

वाला संसार में कोई दूसरा पदार्थ नहीं है। इस सम्बन्ध में निम्न-लिखित प्रयोग और परिणाम जानने योग्य हैं :—

दूध की उपयोगिता की जाँच करने के लिये मार्गन और वार्न ने सन् १९२८ में अमेरिका के एक अनाथालय के १७७ विद्यार्थियों की चार टोलियाँ बनाईं। एक टोली साधारण अनाज ही का भोजन पाती रही, दूसरी को प्रति विद्यार्थी आध सेर दूध भी मिलता रहा, तीसरी को दूध की जगह १ सन्तरा दिया गया और चौथी को क्रेकट और सैन्डविच नामी खाने—जो अनाज मेवे और अन्डे से बनते हैं। १० सप्ताह बाद यह देखा गया कि दूध खानेवाले बच्चों की लम्बाई और तौल अनाज खानेवाले बच्चों से अधिक होने लगी। परन्तु लम्बाई—तौल नहीं—सन्तरा खाने वाले बच्चों की उनसे भी अधिक हुई। इसके विपरीत अनाज खानेवाले बच्चों ने कोई विशेष उन्नति न की। कुछ दिनों के बाद भोजन का यह क्रम उलट दिया गया और अनाज खाने वालों को दूध और दूध खाने वालों को केवल अनाज मिलने लगा। परिणाम भी उलट गया। अब यह दूध खाने वाले उन्नति करने लगे और केवल अनाज खाने वाले ज्यों के त्यों रह गये।

इसी प्रकार एक दूसरे विद्यालय के गरीब हब्शियों के ८४ विद्यार्थियों में से दो-दो समान लम्बाई, मोटाई और तौल की ४२ जोड़ियाँ बनाई गईं (डाक्टर मेकालम सन् १९१९) और प्रत्येक जोड़ी के एक को भर पेट केवल अनाज, मांस और तरकारियाँ दी जाने लगीं और दूसरे को इसमें कमी करके १ सेर

दूध भी। यह व्यवहार एक साल तक जारी रक्खा गया। साल भर बाद प्रत्येक जोड़ी का आपस में मुकाबिला किया गया तो यह देखा गया कि दूध खानेवाले अनाज खाने वालों के ड्योढ़े से दुगने तक हो गये थे। केवल अनाज और मांस खाने वाले कुछ तो ज्यों के त्यों रह गये बल्कि दो-एक तो उल्टे घट भी गये, और जो बढ़े भी वह बहुत कम। दूसरी बात यह देखी गई कि पहले समस्त विद्यार्थीगण शान्त प्रकृति के थे और उन पर काबू रखने के लिये अध्यापक को कोई कठिनाई नहीं सहनी पड़ती थी परन्तु अब अनाज खाने वाले तो वैसे के वैसे ही बने रहे बल्कि कोई कोई अधिक आलसी और निरुत्साही हो गये परन्तु दूध खानेवाले अधिक फुर्तीले और साहसी और बाज़ बाज़ शरारती भी हो गये। इसके बाद अनाज खाने वालों को भी उतना ही दूध दिया जाने लगा और देखा गया कि उनकी बाढ़ और तेज़ी पहली टोली के समान होने लगी। इन परीक्षाओं से प्रत्यक्ष हो जाता है कि केवल मांस, अनाज और तरकारियां बच्चों के पूर्ण शारीरिक उन्नति के लिये पर्याप्त नहीं हैं।

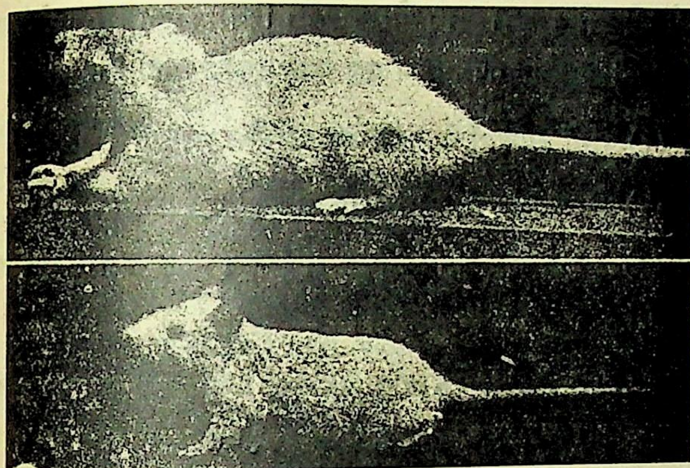
वैज्ञानिक गिकस ने अफ्रीका की मसाई और क्यूयू दो जातियों के आहार और शरीर गठन की जांच के बाद लिखा है कि यद्यपि क्यूयू खेती करने वाली जाति है परन्तु वह दूध नहीं खाती, केवल अनाज पर गुजर करती है। मसाई जाति अनाज के अतिरिक्त दूध, मांस और अंडा भी खाती है। देखा गया है कि २५ वर्ष की आयु का मसाई पुरुष औसत में उसी आयु के क्यूयू

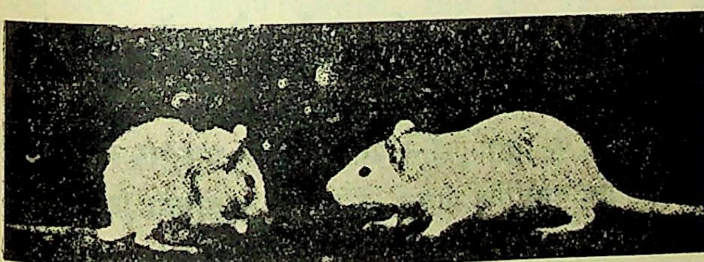
पुरुष से ऊँचाई में ५ इंच और शरीर भार में २३ पौंड अधिक होता है। इसी प्रकार स्त्रियों में ३ इंच और २७ पौंड का अन्तर होता है। शक्ति की माप में क्यूयू पुरुष मद्रासी के बराबर होता है। रोगों की दृष्टि से क्यूयू के बच्चों को रिकेट (हड्डी का टेढ़ापन) रक्त हीनता खांसी, निमोनिया, राजयक्ष्मा और मलेरिया रोग अधिक होता है। खाँसी, निमोनिया, राजयक्ष्मा, मलेरिया भी इस जाति में अधिक होता है। मांसाहारी मद्रासी को कब्ज और मूत्र के रोग अधिक होते हैं।

लन्डन के मेडिकल रिसर्च काउन्सिल (Medical Research Council, London) ने अभी हाल में १०२ बच्चों पर निम्नलिखित प्रयोग किये। उसने कुल लड़कों की दो टोलियाँ बनाई। एक में ६१ लड़के थे और दूसरी में ४१। दोनों को अनाज, मांस, फल, तरकारी जैसे आलू, मटर, करमकल्ला, गोभी,



ये दोनों बच्चे एक ही साथ के पैदा है। बचपन ही से दोनों को पेट भर जई, बाजरा आदि अनाज मिलता था परन्तु बड़े को दूध साधारण चारे के उपरान्त दिया जाता था





छोटा पेट भर केवल अनाज और मांस पाता रहा परन्तु बड़े को उस भोजन के अतिरिक्त दूध मिलता था।

मुनक्का, किशमिश आदि पर रक्खा जाने लगा परन्तु दूसरी टोली वालों को प्रति लड़का आध सेर दूध भी दिया जाता था। टोलियाँ बनाने और खिलाने-पिलाने में यह ध्यान रक्खा गया कि:—

(१) दोनों टोलियों के लड़के बराबर तौल नाप के हों।

(२) भोजन स्वादिष्ट परन्तु सब के लिये एक ही हो।

(३) रहने का स्थान तथा खेल कूद का प्रबन्ध एक ही सा हो।

साल भर के प्रयोग के बाद यह देखा गया कि पहली टोली के लड़कों की औसत उन्नति ऊँचाई में १·८४ इंच और तौल में १·६२ सेर रही परन्तु दूध पाने वाली टोली वालों की औसत उन्नति ऊँचाई में २·६३ इंच और तौल में ३·३६ सेर रही अर्थात् ऊँचाई में ४२ प्रतिशत अधिक और तौल में ८१ प्रतिशत अधिक हुई।

इंगलैन्ड के वैज्ञानिकों ने प्रयोगों के आधार पर यह पाया है कि बढ़ते हुये बच्चों के भोजन में १ पाव दूध बढ़ा दिये जाने से उनकी औसत तौल प्रतिवर्ष ३·८५ और औसत लम्बाई १·८४ प्रति बच्चे के हिसाब से बढ़ गई।

Hoards Dairyman नामी अमेरिका के एक समाचार पत्र में डाक्टर हिर्षवर्ग ने प्रथम जर्मन-युद्ध के समय में दूध की उपयोगिता सम्बन्धी एक खोज का हाल लिखा है। वे लिखते हैं कि उस दर्मियान में कुचला, डिजिटेलिस, केफ़ीन (चाय का विष)

कुनैन आदि कुछ विषैली औषधियों के उत्तेजक-शक्ति, सहन-शक्ति (दम) आदि गुणों की जांच के लिये १२५ पिल्लों पर प्रयोग किये जा रहे थे। पिल्लों के रक्त में इन विषों को इन्जेक्ट करके (सुई से डाल कर) उनसे काम लिया जाता था और कुछ समय काम करने के पश्चात् उनकी सांस, चाल की तेज़ी, हृदय का धड़का आदि देखा जाता था।

थक जाने पर उन्हें काम से अलग करके किसी को बिस्कुट, किसी को मिश्री, किसी को मांस खिला कर विश्राम के लिये छोड़ दिया जाता था।

एक दिन एक जांच करने वाले ने यह देखा कि जिन तीन पिल्लों को उस दिन केवल दूध ही दिया गया था उन्होंने काम करने में अधिक फुर्तीलापन दिखलाया, शीघ्र हांफे नहीं और न काम कर चुकने पर तुरन्त थक कर सो गये। अतः उसने अपने अन्य साथियों से उसकी चर्चा की; परन्तु उन्होंने इसको हँस कर टाल दिया। तब उसने एक दिन अपने मित्रों से छिपा कर ६० पिल्लों को काम आरम्भ करने के पहले दूध पिला दिया। इन पिल्लों ने उस दिन अधिक उत्तेजना के साथ काम शुरू किया और अपने अन्य ६५ साथियों की अपेक्षा तिगुना काम किया, कम थके, काम समाप्त होने के बाद बराबर खेलते रहे, और यह सब बिना औषधियों में किसी परिवर्तन के।

इसने सब को चकित कर दिया। अतः सब को प्रतिदिन दूध मिलने लगा और देखा गया कि उन सब के काम की मात्रा बढ़

गई, उनमें तेजी और काम के प्रति अधिक रुचि आ गई, हृदय का धड़का कम हो गया और उनके भार में भी वृद्धि होने लगी।

कुछ समय बाद दूध बन्द करके उसकी जगह ब्रांडी आदि अन्य उत्तेजक पदार्थ दिये जाने लगे परन्तु इस से दिनों दिन उनकी हालत गिरने लगी, नाड़ी तेज चलने लगी, हँफी बढ़ गई और काम की मात्रा कम हो गई।

यही नहीं। दूध खाने से आयु भी बढ़ती है। स० १९२८ ई० में अमेरिका में ४०० चूहों पर इस प्रकार परीक्षा की गई कि कुछ को केवल दूध पर रक्खा गया, कुछ को अधिक दूध और थोड़े अनाज पर, कुछ को थोड़ा दूध और अधिक अनाज पर, कुछ को केवल अनाज पर और कुछ को मांस और अनाज पर। बाहरी प्रभावों से इन सब को इतना संभाल कर रक्खा गया कि कोई असर परिणाम पर न पड़े। अन्त में देखा गया कि अधिक दूध खाने वालों की आयु दूसरों की अपेक्षा लगभग १० प्रतिशत अधिक रही। यही प्रयोग उनके सन्तानों तक जारी रक्खा गया अर्थात जो भोजन जिनको मिला था वही भोजन उनकी सन्तान को भी दिया गया और दूध खाने वालों की सन्तान अधिक बलवान और दीर्घ-जीवी पाई गई।

प्रोफेसर मेक्कालम और साइमड्स लिखते हैं—"इन तमाम बातों पर ध्यान देते हुये हमारी राय में इन प्रयोगों से इस राय

को पुष्टि होती है कि अनाज, धरती के नीचे की तरकारियाँ और मांस बच्चों के शारीरिक उन्नति के लिये पर्याप्त नहीं हैं।" यह भी देखा जाता है कि जिन मनुष्यों तथा जातियों को बचपन में दूध नहीं मिलता उनका दिमाग़ बुढ़ापे में शीघ्र ख़राब होता है।

अभी हाल में भारतवर्ष के भिन्न भिन्न प्रान्तों के आहार में गोशाला-पदार्थों का स्थान और रोगों की भयंकरता पर जांच करके यह पता लगा है कि जिस प्रान्त में जितना ही इसका प्रचार कम है वहाँ की दशा उतनी ही ख़राब है और राजयक्ष्मा, कोढ़, मलेरिया, आमातिसार, संग्रहणी आदि भयंकर रोगों का प्रचार उतना ही अधिक है। मद्रास और बंगाल इस दृष्टि से सब से ख़राब हैं और पंजाब सब से उत्तम।

दूध पेट में जाकर पेट के अम्ल-रस से मिलकर फट जाता है और थक्के बन जाता है जो आंतों द्वारा खूब मथे जाते हैं। इस क्रिया से उसके प्रोटीन, लवण, वसा, कबौज अलग अलग हो कर शरीर में प्रवेश करते हैं। यदि यह थक्के छोटे छोटे हुए तो उनके तोड़ने में आमाशय और आंतों को कम परिश्रम करना पड़ता है और पाचक रसों की भी कम जरूरत पड़ती है। इसलिये दूध छोटी छोटी घूटों में या चुस्की लगाकर पीना चाहिये। या पानी, जौ का पानी, चूने का पानी साबूदाना आदि के साथ खाना चाहिये। सोडा, सोडियम साइट्रेट, तथा अन्य ठोस आहार-पदार्थ जैसे रोटी, दाल आदि के साथ या पश्चात् खाने से भी

दूध शीघ्र और पूर्णतया पच जाता है और साथ वाले पदार्थों को भी अकेले की अपेक्षा अधिक और शीघ्र पचा देता है; इसके अतिरिक्त दूध का प्रोटीन और मक्खन ६५ प्रतिशत और कर्बोज ६८ प्रतिशत पचता है। अकेले गेहूँ का प्रोटीन लगभग ८५% पचता है। परन्तु दूध और दलिया के साथ से गेहूँ का प्रोटीन भी लगभग ६२ प्रतिशत पच जाता है। इसी कारण दूध दलिया तापवर्धन तथा मांसवर्धन की दृष्टि से मांस के बराबर माना जाता है।

अकेला दूध और विशेष कर ठंडा दूध दुर्बल पाचन वालों के पेट में वायु और कब्ज पैदा करता है। परन्तु अन्य पदार्थ के साथ इसका यह अवगुण चला जाता है। अतः कमजोर पाचन वालों को खाली पेट केवल दूध न पीकर उसे अन्य चीजों के साथ खाना चाहिय। यदि खाली पेट ही खाना हो तो गरम और चूने का पानी, सोडा, सोडियम साइट्रेट आदि मिला कर खाना चाहिये। परन्तु अधिक गरम दूध में सोडा या सोडियम साइट्रेट मिलाने से उसका विटामिन सी बिलकुल मर जाता है। शहद के साथ दूध की उपयोगिता बहुत बढ़ जाती है परन्तु दूध ठंडा करके तब शहद मिलाना चाहिये। दूध के साथ चीनी थोड़ी खाना चाहिये। अधिक चीनी दूध के पचने में बाधक होती है। और दूध का चूना भी कम पचता है। बच्चों के सम्बन्ध में यह ध्यान रखने योग्य बात है।

दूध के साथ नीबू या उसके जाति की अन्य खटाई जैसे नारंगी, सन्तरा, टमाटर, उसको और अधिक पाचनशील बना

देता है और आंतों की खराबी को भी लाभ पहुँचाता है। इसी लिये आमातिसार में दूध और नीबू का रस औषधि है।

दूध जितना उत्तम पदार्थ है उतना ही निकृष्ट पदार्थ भी हो सकता है। क्योंकि इसमें रोगों के कीटाणु अति शीघ्र बढ़ते हैं। गोशाले की वायु की गन्दगी और बर्तन व दुहने वाले के हाथ तथा थन की गन्दगी से दूध बिगड़ता है। दूध की खराबी से बहुधा मोतीझारा, लाल (Scarlet) ज्वर, पेचिश, दस्त, डिप्थीरिया (Diptheria) (एक गले का रोग) और राजयक्ष्मा हो जाया करते हैं। इनके अतिरिक्त दूध की खराबी से दस्तों का एक घातक रोग जो विशूचिका (हैजा) से मिलता-जुलता होता है, हो जाता है।

ऊपर का दूध पीने वाले बच्चों के अधिकांश रोग दूध ही की खराबी के कारण होते हैं। दूध की गन्दगी और शिशु-मृत्यु का भी बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। शुद्ध दूध पीने वाले बच्चों में विकृत दूध पीने वालों की अपेक्षा कम मृत्यु होती है। जीवाणु जो सयानों पर कोई हानिकारक प्रभाव नहीं डालते बच्चों में तरह तरह के घातक रोग पैदा कर देते हैं। इसलिये दूध के सम्बन्ध में बड़ी सावधानी रखनी चाहिये।

उत्तम चारा खाने वाली स्वस्थ गाय का साफ़ जगह पर सफ़ाई के साथ दुहा हुआ दूध सर्वश्रेष्ठ होता है। रोगी गायों के दूध द्वारा राजयक्ष्मा बढ़ता है। भारतवर्ष की दो तिहाई गायें रोगी पाई गई हैं। इसलिये दूध बिना उबाले कभी न खाना चाहिये।

ताजे दूध में एक उबाल आ जावे और वह ३ मिनट तक उसी आँच पर रहे तो वह खाने योग्य हो जाता है। परन्तु देर के रक्खे हुये दूध को १५७ फॅ० तापक्रम (उबलने से थोड़ा ही कम) तक १० मिनट तक पका लेना चाहिये और उसे अतिशीघ्र ठंढा कर के बन्द वर्तन में—परन्तु कुछ वायु का गुजर अवश्य हो—ठंढे स्थान में या ठंढे जल में रखना चाहिये। अगर बहुत देर तक रखना हो तो १० मिनट की जगह २०-३० मिनट तक उसी तापक्रम पर पकाना चाहिये।

साधारण घरों में दूध ठंढा रखने के उपाय निम्नलिखित अति उत्तम हैं। दूध को एक थाली तथा अन्य किसी चौड़े बर्तन में डाल कर अतिशीघ्र ठंढा कर लिया जाय। फिर उसे एक बर्तन में रखकर एक थाली तथा ऐसे ही चौड़े बर्तन में जल भर कर उस में रख दिया जाय, और ऊपर से एक मोटा साफ कपड़ा पानी में भिगो कर ऐसा बन्द कर दिया जाय कि वह दूध के बर्तन से चपका रहे और उसके किनारे नीचे के बर्तन के पानी में डूबे रहें। फिर इसे खुले स्थान में रख दिया जाय। इस प्रकार भीतर का दूध उसी प्रकार ठंढा हुआ करेगा जिस प्रकार घड़े का जल ठंढा हुआ करता है। बरसात में यह युक्ति कम सफल होगी।

दूध के अतिशीघ्र ठंढा करने का कारण यह है। साधारण गरम दूध में हानिकारक बेक्टेरिया बेहद बढ़ते हैं। इसलिये दूध १२५° तापक्रम से ऊपर रहे या ५° से नीचे। यदि दूध देर तक गरम होने के लिये रख दिया जाता है तो इतनी देर में उस

में कुछ बेकटीरिया आ जाते हैं और ठंढा होने पर और भी बढ़ा करते हैं। शीघ्र से शीघ्र उसका तापक्रम कम कर देने से यह सम्भावना कम रहती है।

दूध रखने में दो बातों का और ध्यान रहे। जगह जहाँ यह रक्खा जाय नम न हो और यह हल्के कपड़े से ढक दिया जाय। बिल्कुल बन्द न कर दिया जाय। शुद्ध वायु का गुज़र रहे!

दूध रखने के सम्बन्ध में बड़ी सावधानी रखनी चाहिये। यदि इतनी सावधानी नहीं रह सकती तो दोबारा उसका उपयोग बिना उबाले कदापि न करना चाहिये।

दूध को अधिक पकाने से उसकी उपयोगिता चार कारणों से कम हो जाती है। (१) उसका चूना कम घुलनशील हो जाता है और कुछ बर्तन ही में चपक कर रह जाता है और कुछ पेट में जाकर भी अनपचा ही निकल जाता है। (२) उसका प्रोटीन ऐसे रूप में बदल जाता है कि उसके पचने के लिये आंतों को अधिक समय तक अधिक परिश्रम करना पड़ता है और पाचक रसों की भी अधिक आवश्यकता पड़ती है। (३) उसका आयोडीन भी उड़ कर निकल जाता है और (४) उसके विटामिन मर जाते हैं। अतः यथासम्भव घरों में दूध को आवश्यकता से अधिक न पकाना चाहिये और पकाने का बर्तन फूल, लोहे या क़लई का होना चाहिये जिसमें किनारे का चपका हुआ भाग विकृत न हो जाय। इस काम के लिये लोहे का पात्र सर्वश्रेष्ठ होगा क्योंकि इस प्रकार कुछ लोहा भी दूध के साथ शरीर में जायगा

जो रक्तवर्धन में सहायता देगा। पकाये हुये दूध के लवणों की कमी फल और शाक से पूरी की जा सकती है। बच्चों के लिये इसका विशेष ध्यान रखना चाहिये।

भारतवर्ष में दूध बड़ी गन्दगी और लापरवाही से रक्खा और बेंचा जाता है। गोशाला गोबर और मूत्र से भरे होते हैं बल्कि गउओं के शरीर और थन इन से भरे रहते हैं, दुहने वालों के हाथ और बर्तन भी गन्दे रहते हैं, बच्चे के पीने के बाद थन धोया नहीं जाता, और इनके उपरान्त बाज़ारू दूध में गन्दा पानी भी मिला दिया जाता है। ब्लेकहेम ने अपने परीक्षाओं के आधार पर लिखा है कि भारतवर्ष में बहुधा दूध में गन्दे पानी से भी अधिक कीटाणु होते हैं। इसके विपरीत इङ्गलिस्तान, अमेरिका आदि देशों में दूध जाँच कर कि उसमें प्रति तोला कितने बेकटीरिया हैं और कितना मक्खन है बज़ार में बिकता है। इस ओर वहाँ की म्युनिसिपेल्टियाँ आदि संस्थायें विशेष ध्यान रखती हैं।

आयुर्वेद ने दूध का महत्व गाय के दूध का ही लिखा है और 'माता' का पद गऊ को ही दिया है। दूध के सम्बन्ध में पाश्चात देशों के विद्वानों की जो रायें ऊपर लिखी गईं हैं वह भी गाय के दूध के सम्बन्ध में हैं। वहाँ भैंस होती ही है।

दही

दूध में एक विशेष प्रकार के बेकटीरिया उत्पन्न हो जाने से दही बन जाता है। दही के बेकटीरिया दूध के लगभग अन्य

समस्त बेक्टीरियों को मार डालते हैं और पेट में आमाशय और आँतों के भी लगभग समस्त बेक्टीरियों को मार डालते हैं। इसी कारण दही आम (आंव) अतिसार, संग्रहणी, शूल, गुल्म, बवासीर आदि रोगों में केवल पथ्य ही नहीं बल्कि प्रधान औषधि भी है। इसके अतिरिक्त इन जीवाणुओं के प्रभाव से दूध के प्रोटीन आदि पौष्टिक पदार्थ अधिक पचनशील रूप में हो जाते हैं, अतः शीघ्र पचते हैं और पेट में वायु विकार नहीं पैदा करते। अनपच, मन्दाग्नि तथा अन्य उदर रोग के रोगियों को दही बड़ा गुणकारी होता है। आयुर्वेद यह कहता ही था अब डाक्टर लोग भी मानने लगे हैं कि प्रतिदिन दही खाने वाले को पेट का कोई रोग नहीं होता बल्कि उसकी आयु बढ़ जाती है। यह स्वाभाविक भी है। रोग ही से आयु घटती है और मनुष्य के लगभग सभी रोग पाचन विकार के कारण पैदा होते हैं।

दही अधजमा हानिकारक होता है, क्योंकि उसमें दही के जीवाणु पूर्ण रूप से अन्य कीटाणुओं को मार नहीं पाते। बहुधा इस से वमन, दस्त आदि रोग पैदा हो जाते हैं। इसलिये जब तक वह जम न जाय उसकी उपयोगिता सन्दिग्ध रहती है। जाड़े में कम से कम ८-१० घन्टे से पहले का दही न खाना चाहिये और गर्मियों में ४-५ घन्टे से कम का नहीं।

दही कई प्रकार का होता है। जैसे खट्टा, मीठा आदि। यह जावन के बेक्टीरियों पर निर्भर है। खटास पाचन के लिये उपयोगी चीज़ है परन्तु रक्त को अम्ल कर देती है और अम्लपित्त

(डाह जलना) और खांसी रोग पैदा कर देती है। इसलिये इन रोगों के रोगियों को खट्टा दही न खाना चाहिये। कई दिन पुराना दही भले चंगों के लिये भी कुपथ्य है।

वैज्ञानिकों की राय में बरसात के दही में अन्य हानिकारक बेक्टीरिया भी आ जाया करते हैं। इस लिये उस ऋतु में दही जमाने में बड़ी सावधानी रखनी चाहिये। दूध खूब पका होना चाहिये, दही बन्द बर्तन में जमाया जाना चाहिये और ताजा ही खाया जाना चाहिये।

बहुत गरम वस्तु में दही मिलाने से अथवा ऐसे पात्र में रखने से दही फट जाता है अर्थात् उसके वेकटीरिया मर जाते हैं।

दही को मथने से मट्ठा बनता है। मट्ठा दही की अपेक्षा अधिक पचनशील है क्योंकि एक तो उसके कण बाहर ही अलग अलग हो जाते हैं और दूसरे आक्सीजन भी उनके साथ शरीर के भीतर प्रवेश-मार्ग पा जाता है।

दही का तोड़ दही से कहीं अधिक हलका होता है और यद्यपि दही क़ाबिज होता है, वह रेचक होता है।

घी, मक्खन

कच्चे दूध का मक्खन बड़ा लाभदायक होता है क्योंकि इस में दूध के लगभग ६०%विटामिन ए और थोड़े डी आजाते हैं यद्यपि बी और सी नहीं। हरी घास खाने वाले पशुओं का मक्खन

खाली बेनौला खाने वाले पशुओं के मक्खन की अपेक्षा अधिक उपयोगी होता है। गाय का मक्खन सर्वश्रेष्ठ होता है। कच्चा मक्खन अतिशीघ्र खराब हो जाता है इस लिये भारतवर्ष जैसे देश के लिये घी अधिक उत्तम है।

घी भी ताजा अच्छा होता है। पुराने घी के विटामिन वायु की आक्सीजन के प्रभाव से कम हो जाते हैं। घी खुले वर्तन में—जैसे कड़ाही आदि में—और विशेष कर देर तक कभी न पकाना चाहिये क्योंकि ऐसे घी के विटामिन बहुत कुछ मर जाते हैं। इसी कारण नेनू या मक्खन घी से अधिक श्रेष्ठ कहा जाता है। पूड़ी आदि पकवान का घी शरीर के लिये तेल से श्रेठ नहीं पड़ता। यह गरम कम होता है और शीघ्र पचता है।

पनीर

भारतवर्ष में कुछ अंग्रेजी गऊशालायें पनीर बनाती हैं। यद्यपि पनीर पौष्टिक पदार्थ है परन्तु उस के बनाने में रेनेट (Rennet) डालते हैं। वह छोटे बछड़े के पेट से निकाला जाता है। इसलिये वह खाने योग्य नहीं होतो।

२५—मांस

मांस के दो प्रकार होते हैं। एक पट्ठे का मांस और दूसरे विशेष अंगों का जैसे कलेजी, गुर्दा, सिरी। इनमें से श्रेष्ठ द्वितीय प्रकार का होता है। पशुओं और पक्षियों को कुछ समय तक केवल पकाये हुए प्रथम प्रकार के मांस पर रखकर देखा गया कि सभी सुन्न, लकवा आदि से मर गये और एक दो जो बचे भी उनमें इन्हीं प्रकार के अनेकों रोग लगे रहे। उनके बच्चे न हुये या होकर शीघ्र ही मर गये। हाँ ताजा कच्चा मांस खाने वाले स्वस्थ रहे। इसका कारण यह मालूम हुआ कि पकाने से उसके प्रथम दो विटामिन अर्थात् ए और बी बहुत कम हो जाते हैं, सी बिलकुल नष्ट हो जाता है और चौथा इसमें होता ही नहीं। इसके अतिरिक्त लवणों में चूना इसमें बिलकुल नहीं होता। शेष जो होते हैं वह निकल जाते हैं।

कलेजी—शारीरिक स्वास्थ्य के लिए यह मांस का उपयोगी भाग है। इसमें चारों विटामिन पर्याप्त मात्रा में होते हैं। करीब करीब शाक की मात्रा तक पहुँचते हैं। इसमें लवण जैसे लोहा मेन्गनीज के लवण भी होते हैं और थोड़ा बहुत कर्बोज भी होता है। वसा (fat) भी इसमें काफी होता है। परन्तु इसका भी गुण अधिक पकाने से कम हो जाता है।

अंडा—अंडे के ठोस भाग की बनावट निम्नलिखित होती है :—

प्रोटीन	१२.५%
वसा	१२.०%
लवण	१.१%
जल	७४.४%

इस से मालूम होगा कि यह कितना अपूर्ण भोजन पदार्थ है। अंडे में चूना मनुष्य की आवश्यकता से बहुत कम होता है, इसलिये यह दूध के बाद आता है। कर्बोज बिल्कुल नहीं होता और लौह बहुत होता है।

चूने की दृष्टि से

१ पाव दूध=१० अंडा
१ औंस शलजम=४ अंडा
१ ,, सरसों का साग=६ अंडा
१ ,, दूसरे साग=४ अंडा

अंडे की तासीर आंतों में सड़न पैदा करने की है और यह अम्लकारक होता है इसलिये इसे अधिक न खाना चाहिये। जो खाया जाय वह उन पदार्थों के साथ जिनमें कर्बोज अधिक हों। दिन में एक या दो अंडे से अधिक न खाना चाहिये और वह कड़े न उबाले जावें। अंडे में विटामिन सी का अभाव है परन्तु अन्य विटामिन होते हैं। विटामनों तथा प्रोटीन की दृष्टि से ९ या १० अंडा एक सेर दूध के बराबर होता है।

गुर्दा—इसका भी प्रोटीन उत्तम प्रकार का होता है। इसमें विटामिन बी बहुत होता है। विटामिन ए और सी भी होता है।

सिरी—इसका भी प्रोटीन श्रेष्ठ प्रकार का होता है। इसमें विटामिन बी बहुत होता है उससे कम विटामिन ए और सी। इसमें फास्फोरस बहुत होता है और ताँबे का भी अंश होता है।

मछली—इसका प्रोटीन उत्तम प्रकार का होता है। इसमें विटामिन ए, बी और डी होता है परन्तु सी नहीं। इसलिये मछली खाने वालों को भी शाक और फल खाना चाहिये। शाक और फल क्षार प्रधान पदार्थ होने के कारण अंडा, मांस, मछली के अम्ल को भी मारते हैं। मछली में आयोडीन और तांबा भी होता है।

२६—दूध और मांस की तुलना

मांस मनुष्य का स्वाभाविक आहार नहीं है। कभी-कभी और थोड़ी मात्रा में शाक और फल के साथ खाने से यह शरीरोपयोगी अवश्य होता है। परन्तु अधिक हो जाने से या बिना शाक और फल के यह हानिकारक होता है, और अनपचा रह कर पेट में वैसे ही सड़ता और विषैले पदार्थ बनाता है जैसे बाहर पड़ा हुआ मांस; क्योंकि मांस में हानिकारक वेकटीरिया अतिशीघ्र फैलते हैं, जो शरीर में प्रवेश करके बुरे बुरे रोग पैदा करते हैं। मांस का अधिक हो जाना भी बहुत साधारण बात है जब कि एक साधारण शरीर के लिये इसकी आवश्यकता तोलों में पड़ती है छटाँकों में भी नहीं।

इसके अतिरिक्त मांसाहार के विरुद्ध एक प्रबल युक्ति यह है कि मांसाहारियों में सहन-शक्ति नहीं होती। अमेरिका के प्रोफेसर मेकालम और साईमण्ड महोदय लिखते हैं—"मांसाहार और शाकहार को तुलनात्मक दृष्टि से देखने से मांस के विरुद्ध एक दलील यह है कि यह अधिक शरीरोपयोगी नहीं होता और इसमें विषैले अंश काफी रहते हैं। इस राय का समर्थन कुछ प्रयोगों के प्रमाणों से होता है। ये युनिवर्सिटी के प्रोफेसर

फिशर ने शाकाहारियों और मांसाहारियों पर प्रयोग किये और यह देखा कि शाकाहारियों में मांसाहारियों की अपेक्षा तिगुनी से छगुनी तक सहन-शक्ति निकली। इन परीक्षाओं में ऐसी ऐसी कसरतें थीं जैसे हाथ फैलाये रखना, घुटने मोड़ कर खड़े रहना इत्यादि। केलाग महोदय ने भी अपनी परीक्षा फल के आधार पर यही परिणाम निकाला है।" प्रत्यक्ष भी है। मांसाहारी पशु क्रोधी और खूँख्वार होते हैं परन्तु शीघ्र हाँफ जाते हैं। उसके विपरीत बैल, खच्चर आदि शाकाहारी पशु दिन रात बोझ लाद सकते हैं। मनुष्यों की भी यही दशा है।

मांस के सम्बन्ध में लिखते हुये प्रोफेसर साइमंड लिखते हैं—"अधिक पशु प्रोटीन और कम कर्बोज से आँतों में सड़न के बेकटीरिया उत्पन्न होते हैं। काफ़ी मात्रा में दूध, विशेषकर दही, खाने के लाभदायक परिणाम का समर्थन बहुत से लोग करते हैं। हरटर और केन्डल महोदयों ने निम्नलिखित विचित्र उदाहरण मांस के प्रोटीन के शारीरिक और मानसिक प्रभाव का पेश किया है। उन्होंने बन्दरों को अंडे पर, और बिल्लियों को केवल मांस पर एक या दो सप्ताह तक रक्खा। तब उन्हें दूध और चीनी पर बदल दिया और इन दोनों अवस्थाओं में परीक्षा करके यह देखा कि मांस और अंडा बड़ी आँत में सड़न के हानिकारक बेकटीरिया पैदा करते हैं और शर्करा खमीरी—लाभदायक—बेकटीरिया। आहार के कर्बोज-प्रधान होने का भी यही गुण है। अब एक या दो सप्ताह तक दूध, चीनी पर रखने के पश्चात उन्हें फिर क्रमानुसार

अंडा और मांस पर कर दिया। इन दो सप्ताहों में उनके आंतों की हालत बदल चुकी थी। अतः खिलाना आरम्भ करते ही वे निदासे होने लगे और अपना सर हाथ में रख कर झुक कर बैठ गये। वे कुछ निर्बुद्धि से हो गये और बाहरी उत्तेजनाओं का उत्तर बहुत सुस्ती से देने लगे। भोजन वे बहुत सोच समझकर करते दिखाई पड़ते और अपनी परिस्थिति से कोई विशेष सम्बन्ध न रखते। कभी-कभी भर पेट खाना खाने के पश्चात वे अपने दाँतों से कटहरे की लकड़ी चबाते। पेशाब थोड़ा होता, दूध, और कबीज के भोजन का लगभग आधा। ज्यों-ज्यों प्रोटीन पचाने वाले बेक्टीरिया आंतों में बढ़ते गये पेशाब से भी सड़न से उत्पन्न पदार्थों का आना बढ़ गया। फिर इसके बाद उनको दूध शर्करा पर रक्खा जाने लगा और फिर उनकी शारीरिक और मानसिक दशा बदल गई। वे हाथ में सर रखकर न बैठते बल्कि सीधे बैठते, वे चैतन्य और प्रसन्न चित्त रहते और पास पड़ोस की वस्तुओं और घटनाओं से सम्बन्ध रखते। उनकी भूख बढ़ गई और भोजन बड़ी रुचि से करते। उनकी आंखें जो मांस और अंडे के समय धूमिल और आलस्यपूर्ण हो गई थीं अब चमकने लगीं। अब वे कटहरे की लकड़ी न चबाते और उनके मूत्र से विषैले पदार्थ भी लापता हो गये।"

अपने प्रयोगों के आधार पर केंडल महोदय ने लिखा है कि मांसाहारी मनुष्यों की मानसिक और शारीरिक दशा मांसाहारी पशुओं की दशा के समान ही होती है। भोजन के पश्चात् वे

आलसी हो जाते हैं और आलसी रहते हैं और काम वही पसन्द करते हैं जिसमें कम परिश्रम करना पड़े। परिश्रम करना वे तभी पसन्द करते हैं जब भूख व्याकुल करती है। इस्किमो जाति के लोग विशेष कर मांस ही पर गुजर करते हैं। डा० ग्रीनफील्ड ने लिखा है कि इस्किमो लोग अच्छे शिकारी नहीं होते। जितनी देर में यूरोप वाले १० मछली पकड़ते हैं उतने में वे एक ही पकड़ पाते हैं।

सरकालिन कैम्बेल जो भारतीय सेना के कमांडर रह चुके हैं लिखते हैं कि "अधिक मांस का प्रोटीन शक्ति देने की अपेक्षा खून में गर्मी पैदा करता है, ज्वर की सी गर्मी पैदा करता है और परिणाम स्वरूप सारे शरीर को शिथिल कर देता है। राजपूत और सिक्ख यूरोप वालों के समान शक्ति रखते हैं परन्तु अधिक थकान भी सहने की शक्ति रखते हैं।"

बहुधा मांस के समर्थन में शेर, चीता, भेड़िया आदि पशुओं तथा बाज, शिकरा आदि पक्षियों के उदाहरण पेश किये जाते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मांस में शरीर की मांसपेशियां बनाने का गुण होना इन पशुओं और पक्षियों के उदाहरण से सिद्ध होता है। परन्तु यह उस तरह मांस नहीं खाते जैसे मनुष्य खाता है। यह खाते हैं कच्चा, ताजा, रक्त-युक्त मांस और कलेजी, चर्बी, तथा अन्य विशेष विशेष भाग। ये अपनी आवश्यकता समझते हैं अतः कहीं रक्त ही पीकर छोड़ देते हैं, कहीं केवल चर्बी खा कर और कहीं कलेजी, गुर्दा आदि भाग खाकर। स्वादवश

यह अपनी आवश्यकता कदापि नहीं बनाते। परन्तु मनुष्य खाता है कई कई दिन का बासी और पकाया हुआ पुट्ठे का मांस और पट्ठे का मांस पोषण-शक्ति की दृष्टि से शरीर भर में सबसे निकृष्ट भाग है।

कुछ लोगों का कहना है कि मांसाहार भारत वासियों की उन्नति के लिये आवश्यक है। परन्तु वास्तव में शरीरबल, वीरता, बल्कि युद्ध-प्रवृति के लिये उत्तम आहार चाहिये जिसमें समस्त विटामिन और विशेषकर उत्तम प्रकार का प्रोटीन अवश्य होना चाहिये जो या दूध में मिलता है और या फिर मांस में। सिक्ख, मरहठे जाट, अहीर, राजपूत आदि मुख्यतः दुग्धहारी जातियाँ हैं और इतिहास कहता है कि यह पठान, अफगान और बंगाली से श्रेष्ठ होती हैं। यह बात डा० मेक्केरीसन ने अपने प्रयोगों से भी सिद्ध किया है। वे लिखते हैं—"चूहों की टोलियाँ—२०, २० की—भारतवर्ष के प्रान्तीय आहार पर रक्खी गई और इस बात का ध्यान रक्खा गया कि प्रत्येक जाति के रहन-सहन की पूरी पाबन्दी की जाय। चूहे सब एक ही नस्ल के थे और सब साधारण से अधिक स्वस्थ थे। प्रयोग इस प्रकार किये गये कि जल-वायु, सफाई, जाड़ा, गर्मी, बरसात, शरीर भार, आयु, नर मादा का मेल, पिंजड़ा आदि का इन्तजाम सब का समान रहे, और यह देखा गया कि आहार का पौष्टिक गुण जैसा कि शरीर भार से मालुम हो सका निम्नलिखित क्रम में था :—

आहार	टोली का औसत शरीर-भार
सिक्ख	२३५ माशा
पठान	२३० ,,
मरहठा	२२५ ,,
कनरी	१८५ ,,
बंगाली	१८० ,,
मद्रासी	१५५ ,,

सिक्ख अहार में जो सबसे अधिक पौष्टिक सिद्ध हुआ वे छने आटे की रोटियाँ, दूध के अन्य पदार्थ, घी, मक्खन, दही, दाल, गाजर, करमकल्ला तथा अन्य जड़ वाली तरकारियाँ, टमाटर और सप्ताह में एक बार मांस शामिल था। पठान आहार में दूध की जगह मांस दिया जाता था, मरहठों के भोजन में दूध थोड़ा परन्तु चावल अधिक था, कनारी बंगाली और मद्रासी आहार में दूध बिल्कुल ही नहीं था परन्तु चावल और कुछ मछली दी जाती थी।

इस प्रयोग से सिद्ध है कि दूध-प्रधान सिक्ख आहार मांस प्रधान पठान आहार से श्रेष्ठ है अर्थात् दूध मांस से श्रेष्ठ है। परन्तु दूध के अभाव में मांस आवश्यक है।

अब प्रश्न उठता है कि फिर क्यों भारतवर्ष के इतिहास का रूप ऐसा हुआ। उत्तर यह है कि शरीर बल के साथ साथ विचार-बल का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। पुराने जमाने में हमारी वीरता ने अपना नाम कमाने के लिये सङ्गठन को छोड़ कर ईर्षा का सहारा लिया और परिणाम वही हुआ जो होना चाहिये था।

इस ईर्षा का राज आज कल भी है। इसके अतिरिक्त आजकल की दशा यह भी है कि हम गोभक्ति का शोर चाहे जितना मचाते हों और दूध का माहात्म्य चाहे जितना गाते हों परन्तु ९० प्रति-शत को दूध मुयस्सर तक नहीं है। सोने के जेवर, फूल के बर्तन, रेशम के कपड़े, पक्की इमारतें तथा पान तम्बाकू सग्रेट आदि अनावश्यक आवश्यकताओं के लिये ही पैसे बचाने में मस्त रहते हैं और सबसे फालतू मद घी, दूध को समझते हैं, यहाँ तक कि बूढ़े-बुढ़ियों का शौक बच्चों की इस आवश्यकता पर प्रधानता पा गया है। दूध भी हो तो गाय भैंस का बकरी के दूध में इनको बू आता है। सत्य तो यह है कि इन्हें दुनियावी दिखावा और स्वाद अपनी जिन्दगी से भी ज्यादा प्यारा हो गया है। यह अवस्था न केवल शहरों में है बल्कि देहातों में भी है। इनकी दुर्दशा मांस की श्रेष्ठता या मांस भक्षण के रवाज बढ़ाने की कोई दलील नहीं है। मांस ही खाने से बल और वीरता आती होती तो बेचारी मांसाहारी गरीब जातियाँ इस दशा को न प्राप्त हो गई होतीं और न सियार, लोमड़ी मनुष्य की सूरत देखते भागते।

शिकार खेलने में अवश्य पाशविक वीरता आती है जो दूध में नहीं होती, परन्तु वह शुरू ही में कुछ समय के लिये। एक बार किसी पत्र में निकला था कि मिस्र में दो जोड़ी के पहलवानों में एक को दूध, बादाम आदि पर रक्खा जाने लगा और दूसरे को मांस पर और कुश्ती के समय यह देखा गया कि मांसाहारी की पहली तड़प तो बड़ी भयानक थी परन्तु थोड़े ही समय में

उसकी तेजी जाती रही और उसके साथी ने उसे सरलता से मार लिया। प्राचीन भारत में लड़ने वाली जातियों को देवी के प्रसाद-रूप में मांस खाने की आज्ञा थी स्वाद के लिये नहीं। उसका मतलब दूध-जनित शान्ति में क्रूरता और भयानकता पैदा करने का था।

प्रोफेसर साइमंड ने संसार की जातियों और उनके आहार का तुलनात्मक सर्वे करते हुये लिखा है कि "अरब-निवासियों का शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य यूरोपियनों से भी कहीं उत्तम है। उनकी आयु बहुत लम्बी होती है और बुढ़ापे में भी उनका मस्तिष्क अधिक नहीं बिगड़ता यद्यपि वहाँ का जल-वायु उष्ण है। इसका कारण है कि वे लोग बकरी, गाय और उँटनी का दूध काफी मात्रा में पीते हैं।" आगे वे यह भी लिखते हैं कि "संसार की समस्त जातियाँ जो देहातों में रहती हैं और अपने आहार में दूध और घी को मुख्य स्थान देती हैं दीर्घजीवी और बलवान होती हैं।" हम भारतवासी अपने पूर्वजों के आहार और दीर्घ आयु की कल्पना करके इसकी सत्यता को भली भाँति अनुभव कर सकते हैं।

दूध और मांस की तुलना करने के लिये निम्नलिखित बातें और भी जानने योग्य हैं।

(१) माँस का प्रोटीन शरीर की बाढ़ और पुष्टि की दृष्टि से दूध के प्रोटीन से हेठा होता है जैसा कि वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया जा चुका है ?

(२) मांस अम्ल प्रधान होता है और रक्त अम्ल बना देता है।

(३) मांस में युरिक एसिड नामी एक विषैली चीज़ होती है जो रक्त में जाकर बाई, गठिया रोग पैदा करती है।

(४) मांस बहुधा बासी और रोगी पशुओं का मिलता है।

(५) मांस में सिवाय थोड़े बहुत विटामिन २ और ६ के अन्य विटामिन नहीं होते और इन में से विटामिन २ पकाने से बहुत कुछ मर जाता है। केवल विटामिन ६ बच रहता है।

(६) दूध में मनुष्य के शरीरोपयोगी समस्त तत्व उचित मात्रा में पाये जाते हैं। मांस में ऐसा नहीं होता। इसमें कर्बोज क़रीब क़रीब बिल्कुल नहीं होता। लवणों में भी चूना और फास-फोरस जो शरीर बनाने के लिये मुख्य हैं दूध से कहीं कम होते हैं।

(७) भोजन का अधिकांश भाग कर्बोज होना चाहिये जो मांस में नहीं होता। शक्ति की दृष्टि से आध सेर कच्चा बकरे या मुर्गी का मांस या १३ पाव रोहू मछली का मांस = १ सेर गाय के दूध के और मांस प्रोटीनप्रधान होने के कारण थकान अतिशीघ्र लाता है।

(८) यदि उत्तम प्रकार के प्रोटीन की दृष्टि से मांस खाया जाय तो भी कर्बोज, विटामिन और लवणों का ध्यान रखते हुए दूध से महँगा पड़ता है।

एक साधारण मनुष्य के लिये प्रति दिन लगभग ३० माशा पशु प्रोटीन चाहिये। गाय के दूध में इतना प्रोटीन १ सेर दूध में होता है।* और बकरी क कच्चे मांस में ४½ औंस में। दूध का दाम ०–८–० आना होता है और पकाने पर मांस का दाम ०–५-३ होता है।

निम्नलिखित तालिका में उक्त दोनों के अवयवों की तुलनात्मक मात्रा ग्रामों में ज्ञात होगी :—

मात्रा	प्रोटीन	कर्बोज	चिकनाई	चूना	स्फुर	लोहा	शेष लवण	उष्णांक
दूध १ सेर	३०·०८	४३·५२	३२·६४	१·०९१	·८४	·००२	५·६२	५७६
मांस ४½ औं	३०·००		१८·७५	·०१३	·२५७	·००३	·७७	२८५
	·०८	४३·५२	१३·८९	१·०७८	·५८३		४·६५	२९१

परन्तु दूध में २९१ केलारी (उष्णांक) मांस से अधिक होतीं हैं। और यह १३·८९ या १४ माशा उत्तम गाय के घी से और ४३ माशा कर्बोज मिलते हैं।

* एक सेर कच्चा मांस का दाम १ रु० ८ आ०, २ छटाँक घी का दाम ६ आ० और मसाला लकड़ी का दाम ६ आ०, कुल २ रु० ७ आ०

१४ माशा गाय के घी का दाम घी के बाजार भाव से		रु० आ० पा०
	=	०—१—३
४३ माशा कबोज का दाम चीनी के दर से	=	०—०—६
	कुल	०—२—०

रु० आ० पा०

इस प्रकार दूध में ०—२—०, अधिक मूल्य की शक्ति मिली। अब लवणों की तुलना देखिये।

दूध में १ माशा अधिक चूना है और ·५८३ माशा अधिक स्फुर है।

४·६५ माशा अधिक अन्य लवण है जिनके बारे में हम पहले बतला चुके हैं कि यह स्वास्थ्य के लिये कितने आवश्यक हैं।

लोहा ·००१ माशा कम है। इसका मूल्य लोह भस्म के हिसाब से १ अँग्रेजी पाई हुआ। शेष ४·६५ माशा लवण निश्चय ही -) से अधिक का होता है।

रु० आ० पा०

अंडे में इतना प्रोटीन ६ अंडों में होगा और ०—२—० प्रति अंडे के हिसाब से उसका मूल्य १ रु० २ आ० हुआ और इनमें लवण केवल १·६ माशा होता है। विटामिन भी दूध से कम होते हैं।

रोहू मछली में इतना प्रोटीन ३ छटाँक में होता है। यह भी करीब करीब मांस के दामों पड़ी। इसमें भी लवण और विटामिन दूध की अपेक्षा कहीं कम होते हैं।

अब चौथी बात विटामिन की है। मांस में विटामिन के और कुछ विटामिन बी होते हैं। पकाने में विटामिन के तो नहीं परन्तु विटामिन बी बहुत कम हो जाता है। यही कारण है कि अधिक मांस खाने से पेट के रोग हो जाते हैं। इसके विपरीत दूध में समस्त विटामिन मनुष्य की बल्कि बच्चों की आवश्यकतानुसार पर्याप्त मात्रा में होते हैं। इस दृष्टि से दूध कहीं उत्तम हुआ परन्तु दाम का अन्दाजा नहीं लगाया जा सकता।

इन सबके उपरान्त दूध का प्रोटीन मांस के प्रोटीन से श्रेष्ठ होता है। दूध के औषधिगुण के बारे में आयुर्वेदिक ग्रन्थों में लिखा है कि गाय का दूध "हृदय और दिमाग को शक्ति देता और स्मरण-शक्ति बढ़ाता है......" और बकरी का दूध "ज्वर, पित्त, खांसी, राजयक्ष्मा और आंव में हितकर है ......" और गाय का "घी पेट-विकार, पित्तविकार में हितकर और बुद्धि बढ़ाने वाला होता है"...और "स्नायु रोगों में रामबाण है।"

अंडा और भी महँगा पड़ता है। ६ अंडों में १ सेर दूध का केवल चौथाई लवण होता है क्योंकि इतने दूध में कुल लगभग ७.२ माशा लवण होता है और अंडों में केवल १.६ माशा विटामिन भी कम मात्रा के कारण दूध से कम होते हैं।

मछली भी दूध से महँगी पड़ती है। ३ छटांक रोहू में ३० माशा प्रोटीन होता है। भाव इसका मांस का ही है। उसमें भी लवण कम होता है। विटामिन भी कम मात्रा के कारण कहीं कम होते हैं।

२७—अनाज

गेहूँ—अनाजों में सर्वश्रेष्ठ अनाज है। किसी भी अनाज का प्रोटीन इससे बढ़ कर नहीं होता। शरीर की बाढ़ की दृष्टि से यह दूध के लगभग बराबर है। गेहूँ खानेवाली जातियों के शरीर का आकार इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। सम्पूर्ण गेहूँ में लगभग १३ प्रतिशत प्रोटीन होता है, जिसका आधा उत्तम प्रकार का होता है। यह प्रोटीन "बीज" में अर्थात् उस भाग में जहाँ से अँखुआ निकलता है और चोकर से मिले हुए भाग में होता है। गेहूँ पिसने में ये दोनों भाग आटे के साथ बारीक नहीं हो जाते और छानने से चोकर के साथ निकल जाते हैं।

गेहूँ में पोटाश, सोडा, चूना, गन्धक, फासफोरस, मेगनीशियम, मेन्गेनीज आदि तत्व भी लगभग २·२५% रहते हैं। चूना, स्फुर और मेन्गनीज के कारण ही गेहूँ शरीर को बढ़ाता है। यह सब लवण चोकर के निचले भाग में होते हैं और चोकर के साथ निकल जाते हैं।

गेहूँ में विटामिन बी भी मनुष्य की आवश्यकता के लिये काफी होता है परन्तु यह भी चोकर के निचले भाग में होता है और चोकर के साथ निकल जाता है।

प्रोटीन, लवण और विटामिन के अतिरिक्त और भी तीन कारणों से मनुष्य-आहार में भीतरी चोकर का श्रेष्ठ स्थान है। प्रथम तो यह रेचक होता है क्योंकि इसमें फाइटेक्स नामी एक दस्तावर पदार्थ होता है, दूसरे इसके खुरखुरे कण आँतों में रगड़ पैदा कर उन्हें उत्तेजित करते हैं जिससे वे पाचन का और मल नीचे ढकेलने का काम भलीभाँति कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त यह स्वयं भी अपने बोझ से मल को नीचे ढकेलता लाता है। तीसरे यह आँतों में अनपच आदि के कारण पैदा हुये बिषैले पदार्थों को अपने में सोख कर मल क साथ बाहर निकाल देता है। इसके अतिरिक्त वह थोड़े ही में पेट भर देता है। इसलिये बैठकर काम करने वालों को जिन्हें थोड़े ही पौष्टिक पदार्थों से पेट भरना और कब्ज से बचना हो, चोकरदार मोटा आटा, सूजी या दलिया खाना चाहिये। मेहनती लोगों के लिये जिन्हें अपने साधारण भोजन ही से अपनी आवश्यकता भर शरीरोपयोगी अंश—जो बहुधा सवाये से भी अधिक चाहिये—पाना है महीन आटा अधिक उपयोगी होगा क्योंकि उसका एक एक कण पूर्णरूप से पच कर अधिक शक्ति देता है। अतः उसके भोजन में सम्पूर्ण चोकर की अपेक्षा महीन और छना हुआ चोकर का आटा—आटे के साथ मिला लेना अधिक उपयोगी होगा। मैदा या चोकर रहित आटा हर हालत में वे छने आटे सं हेठा है, बच्चों के लिये विशेष कर। गेहूँ का मैदा खाने वाले बच्चों के शरीर की बाढ़ रुक जाती है, इसलिये चोकर यद्यपि वह देखने और स्वाद में उतना अच्छा

नहीं होता, फेंका न जाना चाहिये। परन्तु चोकर की उपस्थिति में आटा शीघ्र खराब जाता है इसलिये आटा सदैव ताजा पिसा कर खाना चाहिये। खराब होने से बचाने के खयाल से बाजारू आटा मैदा बनाकर रक्खा जाता है।

जांत का आटा चक्की के आटे से बहुत श्रेष्ठ होता है। चक्की के आटे में ७५% विटामिन बी और ५०% पोटेशियम, मेन्गनीज तथा अन्य लवण नष्ट हो जाते हैं। गेहूँ का दलिया गेहूँ के आटे से अधिक पौष्टिक और रेचक होता है क्योंकि उसमें सभी लवण, विटामिन और चोकर मौजूद रहते हैं। दूध और दलिया अति उत्तम भोजन है।

वर्षा के पानी का गेहूँ सींचे गेहूँ से अच्छा होता है। और लाल गेहूँ सफेद गेहूँ से अधिक अच्छा होता है।

गेहूँ की पतली रोटी में भी तेज आँच पाने के कारण विटामिन कम हो जाते हैं। मोटी रोटी में और विशेष कर हाथ की पोई रोटी में अन्दर का भाग भाप से पकता है। इसलिये उसके विटामिनों का नाश नहीं होता।

चावल—यद्यपि इस अनाज की पैदावार और इसका प्रचार बहुत है फिर भी यह एक बहुत उत्तम अनाज नहीं है। यह ज्वार, बाजरा और मकरा से भी हेठा अनाज है। (१) इसमें प्रोटीन अन्य समस्त अनाजों से कम होता है और अच्छे प्रकार का नहीं होता। (२) इसमें लवण और विटामिन बी बहुत कम होते हैं और जो होते हैं वह कना में जो छानने में (कूटते समय साफ करने में),

धोने में तथा माँड़ के साथ निकल आते हैं। इसी कारण अधिक चावल खाने वाली जातियों की शारीरिक गठन और बाढ़ कम होती है। (३) शरीर के लिये आवश्यक मात्रा में प्रोटीन प्राप्त करने के लिये चावल अधिक मात्रा में खाना पड़ता है और इससे शुद्ध पाचन में विघ्न पड़ता है। और परिणाम-स्वरूप इसके साथ की अन्य चीजें बल्कि यह स्वयं अनपचा रहकर अनेकानेक रोगों का और पाचनेन्द्रिय को दुर्बल और रोगी बनाने का कारण बनता है। अधिक चावल खानेवालों के आँव, अनपच, दस्त, पेट में वायु-विकार तथा शूल आदि रोग आये दिन लगे रहते हैं और वे विशूचिका के भी शिकार जल्दी ही बन जाते हैं। इसलिये कम से कम उन लोगों को जिनका मुख्य खाद्य पदार्थ चावल है, हाथ का कूटा, कनादार चावल खाना चाहिये। पकने के पहले चावल को मल मल कर न धोना चाहिये, माँड न निकालना चाहिये और साथ में दूध, फल, शाक, और दाल आदि पदार्थ जो उसकी कमी को पूरा करते हों अवश्य खाना चाहिये। गरीबों को जो इस कमी को पूरा नहीं कर सकते और स्वास्थ्य के लिये खानेवालों को उसका माँड न फेंकना चाहिये। दाल चावल का कम से कम पाँचवाँ भाग अवश्य होना चाहिये। खाली चावल पूर्णतया पचता नहीं। (४) चावल में चिकनई की मात्रा बहुत कम होती है इसलिये चावल खाने वालों को घी, तेल अधिक खाना चाहिये। (५) चावल गला हुआ या कम से कम खूब चबा कर खाना चाहिये। खड़ा चावल रोटी से भी देर में पचता है। (६) लाल

चावल सफेद चावल से अच्छा होता है। वर्षा के पानी के सींचे धान का चावल कुयें तालाब के सींचे धान के चावल से अधिक उपयोगी होता है क्योंकि उसका प्रोटीन उत्तम होता है और उसमें लवण और विटामिन भी अधिक होते हैं। (७) जंगली चावल—जैसे फसही—बोये-जोते चावल से प्रत्येक दृष्टि से अच्छा होता है बल्कि उसमें थोड़ा बहुत विटामिन ए भी होता है। (८) पुराने चावल से नया चावल अधिक पुष्टिकारक होता है परन्तु पुराने धान के नये चावल से विशेष हानि नहीं होती। (९) भुजिया चावल अरवा से इस कारण से अच्छा होता है कि धान पकाने में उसका कना उसमें चिपक जाता है जिससे उसके लवण और विटामिन में अधिक हानि नहीं होती परन्तु गन्दा अधिक होता है। (१०) अधिक चावल खाने वालों को नमक कम खाना चाहिये क्योंकि यह गुर्दे को हानि पहुँचाता है। साथ में दूध, माँस, फल, शाक, टमाटर अधिक खाना चाहिये। (११) गला चावल सरलता से पचता है और १—१½ घंटे में पच जाता है। पाचन की दृष्टि से यह सबसे हलका पदार्थ है। (१) चावल के साथ दूध, दाल, सब्जी फल से चावल की उपयोगिता बढ़ जाती है।

जौ—यह अनाज करीब करीब गेहूं से मिलता है। परन्तु यह गेहूँ की अपेक्षा अधिक हलका होता है क्योंकि इसमें गेहूँ की अपेक्षा प्रोटीन कम होता है। यह केवल तीन घंटे में पच जाता है। जौ, गेहूँ, दाल आदि अनाजों की अपेक्षा शीघ्र पचता है। यह क्षुधा वर्द्धक होता है क्योंकि इसमें एक प्रकार का लवण

होता है जो बड़ा पाचक होता है। इसे वैद्यक में जवाक्षार कहते हैं। जौ का पानी यद्यपि पौष्टिक अंश अधिक नहीं रखता क्योंकि जौ केवल १% पानी में घुलनशील है, परन्तु यह आमाशय और आँतों की कोमल झिल्ली पर अपनी क्रिया द्वारा बड़ी ठंडक लाता है और भूख बढ़ाता है। इसके सेवन से प्यास शान्त होती है, पेशाब बहुत होता है, अम्लता निकल जाती है और रक्त की गर्मी शान्त हो जाती है।

बाजरा, ज्वार, मकरा—इसमें प्रोटीन गेहूँ के प्रोटीन से कम और कुछ हेठे प्रकार का होता है। परन्तु चावल के प्रोटीन से अधिक और अच्छा होता है। इसमें गेहूँ के बराबर विटामिन ए और बी होता है। यह गेहूँ और चावल से देर में पचता है। अच्छी खाद-पाँस वाली जमीन और वर्षा के पानी से सिंची उपज में खराब जमीन और कुयें, तालाब से सिंची उपज की अपेक्षा विटामिन बी अधिक होता है। बहुत खराब जमीन की उपज में यह नहीं के समान होता है। इसमें वसा की मात्रा चावल से दुगुनी है परन्तु गेहूँ से कम होती है। इसलिये इसके साथ घी, तेल का उपयोग अधिक करना चाहिये। इसमें खनिज पदार्थ कम होते हैं परन्तु, चावल की अपेक्षा विटामिन लोहा अधिक होता है। इनमें चोकर का भाग नहीं होता है। इसलिये यह सम्पूर्ण अनाज खाया जाता है। इनके साथ दूध, दही खाने से वह अधिक पचनशील और उपयोगी हो जाते हैं। मकरा में अनाजों में सब से अधिक चूना होता है।

मका—इसमें गेहूँ के बराबर पौष्टिक गुण होते हैं बल्कि चिकनाई और विटामिन ए गेहूँ से अधिक होते हैं। परन्तु इसका प्रोटीन अच्छे प्रकार का नहीं होता और इसमें विटामिन बी भी नहीं होता। इसलिये कुछ समय तक केवल मकाई खाने से प्लेगरा रोग हो जाता है। प्लेगरा एक प्रकार का चर्म रोग होता है। दूध के साथ से इसका अवगुण निकल जाता है।

दाल—अरहर, मूँग, मसूर, उड़द, चना, मटर और मोथी। समस्त अनाजों में दाल सब से अधिक पुष्ट पदार्थ है। इसमें प्रोटीन मांस के बराबर, अण्डा और गेहूँ के दुगना, चावल का चौगुना और दूध का सतगुना होता है परन्तु इसका प्रोटीन दूध, अण्डा और मांस के समान नहीं होता वरन् द्वितीय श्रेणी का होता है। इसलिये २ सेर दूध एक पाव दाल की अपेक्षा अधिक गुणकारी है।

दाल एक बहुत अम्लकारक और देरपच अनाज है बल्कि अधिक मात्रा में यह भली प्रकार पचती नहीं और पेट में वायु और शूल पैदा करती है। स्वस्थ आदमी भी आध पाव तीन छटाँक दाल से अधिक नहीं पचा सकता। अधिक दाल पेट में अनपची रहकर सड़ती, वायु, अम्लता आदि विकार पैदा करती और पाचन-शक्ति बिगाड़ती है। इसलिये दाल बहुत न खाना चाहिये, बल्कि इसकी कमी दूध, फल, शाक आदि द्वारा पूरी करनी चाहिये। मांसाहारी मांस या अण्डा खा सकते हैं। केवल शाकाहारियों के लिये और विशेषकर अधिक चावल खाने

वालों के लिये दाल और दूध एक आवश्यक आहार हैं क्योंकि ये अनाजों के प्रोटीन और विटामिन की बहुत कुछ कमी बड़े सस्ते में पूरा करती हैं।

दालों में अरहर और चना की दालें सर्वोत्तम होती हैं क्योंकि इनका प्रोटीन अन्यों की अपेक्षा श्रेष्ठ होता है और यह शीघ्र पचती भी है। इनके बाद मूँग का नम्बर आता है और उसके बाद शेष दालों का। ये अनाज आटे के रूप में ९०% पच जाते हैं। परन्तु पकाई दाल के रूप में केवल ५०%। इसलिये चना की रोटी चने की दाल की अपेक्षा अच्छी होती है। भाड़ में भुनाई दाल देरपच होती है और बहुत चबा चबाकर खायी जानी चाहिये। सम्पूर्ण दाल दली से अच्छी होती है और छिल्केदार दाल धोई से।

दालों में काफी विटामिन होते हैं। उन्हें भिगा कर अँखुआ निकाल लेने से उनमें विटामिन ए और सी भी काफी मात्रा में आजाते हैं। हरे चना, मटर में सूखे की अपेक्षा अधिक विटामिन होते हैं।

दालों में खनिज पदार्थ बहुत नहीं होते। चूना, सोडियम और क्लोरीन बहुत कम होते हैं, परन्तु फास्फोरस और लोहा काफी होते हैं; इसलिये यह हड्डी और दांत के लिये बड़ी उपयोगी होती है। लोहा सब से ज्यादा मूँग, अरहर और चना में होता है।

मटर-सेम—यह भी दाल की ही जाति के अनाज हैं और कई प्रकार के होते हैं। इनमें भी प्रोटीन अधिक होता है परन्तु दाल से कम अच्छा होता है और लगभग ७२ प्रतिशत से ८६ प्रतिशत तक पच भी जाता है। छिल्का निकाल कर खाने से छिल्कादार की अपेक्षा लगभग दसगुना अधिक पचते हैं, और अकेले की अपेक्षा अन्य पदार्थों के साथ अधिक पचते हैं। परन्तु प्रत्येक दशा में साधारणतया पचते हैं ये देर में। इनके साथ क्षार प्रधान पदार्थ अधिक खाये जाने चाहिये। इन में गन्धक, पोटाश और चूना अधिक होता है।

इनका 'बीज' पेट में जाकर तुरन्त खिरके के समान उठने लगता है और वायु पैदा करता और दस्त लाता है। यदि ये पानी में सोडा डालकर पकाए जायँ तो इनका छिलका और बीज दोनों गल जाते हैं। ऐसे पकाये हुये ये पचते भी शीघ्र हैं परन्तु छिल्का निकाल देना हर हालत में अच्छा है। बहुधा कड़े अर्थात् अधिक चूना-युक्त पानी में यह अनाज गलते नहीं परन्तु सोडा डालने से चूना नीचे बैठ जाता है और यह गल जाते हैं। लेकिन सोडा मिलाने से इनके विटामिन मर जाते हैं।

इसी जाति का एक अनाज सोयाबीन (Soyabean) होता है। यह उपयोगी अन्न है। इसमें चिकनाई और विटामिन भी बहुत होता है। इसका प्रोटीन उत्तम प्रकार का होता है, और इसमें अनाजों और मांसों में से सब से अधिक प्रोटीन होता है और अन्य पदार्थों के प्रोटीन के साथ भली प्रकार पच भी

जाता है। जापान में इसका बड़ा प्रचार है और वहाँ के चावल की खाजी को कमी को सस्ते ही में पूरा करता है।

दूध, गेहूँ, चावल की तुलना में सोयावीन के अवयव निम्नलिखित अनुपात रखते हैं;

	सोयावीन	दूध	गेहूं	चावल
प्रोटीन	४२.०%	३.५%	१.२%	८%
वसा	२०.०%	४.०%	१.७%	२%
कर्बोज	२४.०%	५.२५%	३.७%	७७%
केलारी	२१६५	३२५	१७५०	१७२०

मटर तथा अन्य दालों में यूरिक एसिड बहुत होता है और यह गाँठों में इकट्ठा होकर गठिया रोग पैदा करता है। इसलिए गठिया रोग वालों को यह अनाज छोड़ देना अच्छा है। पेट विकार वालों को भी ये अनाज—दाल, सेम, मटर आदि—कम या बिल्कुल ही न खाना चाहिये।

२८—शाक-भाजी

मनुष्य के आहार में शाकों का एक विशेष स्थान है। स्वास्थ्य के लिये ये दूध के समान गुणकारी हैं। बच्चों के आहार में शाकों के रहने से उनकी बाढ़ सिवाय दूध के अन्य समस्त पदार्थों की अपेक्षा अधिक होती है, क्योंकि उनमें चूना, फासफोरस, सोडियम, क्लोरीन, आयोडीन, गन्धक आदि बहुत होते हैं, यहाँ तक कि अनाज के दुगना से लेकर पंच गुना तक पाये जाते हैं। इसलिये ये रक्त को शुद्ध रखते हैं और उसमें क्षार तथा अम्ल का अनुपात ठीक रखते हैं। केवल अनाज या मांस खाने वालों का रक्त अम्ल हो जाता है। परन्तु साग क्षार प्रधान होता है और अम्लता नाशक होता है। (२) इनका प्रोटीन उत्तम प्रकार का होता है और अनाज के प्रोटीन की कमी को दूध के समान पूरा करता है। (३) इनमें विटामिन ए, बी और सी पर्याप्त मात्रा में होते हैं। इस दृष्टि से पालक सर्वश्रेष्ठ है। पालक और लाल चौलाई में मक्खन का तिगुना विटामिन ए होता है, विटामिन बी ए से कम और खमीर का तिहाया होता है, और विटामिन सी समस्त मेवों, फलों, और शाकों से अधिक होता है। (४) यह रेचक और मलशोधक होते हैं क्योंकि इनके डंठल, नस आदि भाग पचते नहीं और इनकी उपस्थिति के कारण मल आँतों में चपकता नहीं बल्कि उनके बोझ

से नीचे ढकिल आता है। (५) पतले दल की पत्तियाँ मोटे दल की पत्तियों की अपेक्षा अधिक गुणकारी होती हैं क्योंकि मोटी पत्तियों के गुण बहुत कुछ अनाज तथा धरती के नीचे के पदार्थों के समान होते हैं। इसी कारण चिरवां पालक मोटी पत्ती के पालक से श्रेष्ठ होती है। (६) सफेद पत्तियों की अपेक्षा हरी पत्तियों में अधिक विटामिन ए होता है इसलिये करमकल्ला आदि शाकों के ऊपर के हरे पत्ते अधिक उपयोगी होते हैं। (७) कोंपल तथा मुलायम पत्तियाँ बड़ी और पुरानी पत्तियों से अधिक उपयोगी होती हैं। अधिक शाक पेट में वायु पैदा करता है। ऐसे रोगियों को साग न खाकर उसका रस खाना चाहिये। कड़े साग जैसे करमकल्ला आदि को विशेष कर बचाना चाहिये।

पालक—इसमें तीनों विटामिन काफी होते हैं। विटामिन सी अंगूर का १५ गुना होता है। इसमें प्रोटीन अन्य शाक तरकारियों की अपेक्षा अधिक होता है, उत्तम होता है और दूध के प्रोटीन की समानता करता है। इसमें चूना, लोहा, आयोडीन, क्लोरीन गन्धक आदि समस्त तत्व मनुष्य की आवश्यकता भर पाये जाते हैं। बल्कि पालक की उपस्थिति में दूध का चूना बच्चों के शरीर में अधिक लगता है। इसलिये केवल दूध खाने वाले बच्चों की अपेक्षा दूध और पालक दोनों खाने वाले बच्चों की हड्डियाँ अधिक पुष्ट और लम्बी-चौड़ी होती हैं। लोहा पालक से अधिक क्रमशः साग चना, चौलाई और सरसों में होता है। पालक का एक विशेष अवगुण यह कि इसमें युरिक एसिड और आक्जिलेट

(Oxilate) नामी लवण अधिक होते हैं इसलिये इसका सेवन बाई और गठिया वालों के लिये वर्जित है। और जिगर की कमजोरी में भी इसका इस्तेमाल कम होना चाहिये।

चौलाई—पालक से श्रेष्ठ पड़ती है। इसमें प्रत्येक लवण पालक से ज्यादा हैं। लाल चौलाई में विटामिन ए भी पालक से अधिक होते हैं।

करमकल्ला, फूलगोभी—यह भी एक उत्तम शाक है। इसमें तीनों विटामिन काफी मात्रा में होते हैं। परन्तु विटामिन बी और सी पालक से कम होता है। विटामिन ए ऊपर के हरे पत्तों में बहुत अधिक होता है इसलिये ऊपर के पत्तों को फेंकना न चाहिये। इसमें गन्धक अधिक होता है। यह देर में पचता है और बहुधा पेट में वायु पैदा करता है। फूलगोभी, करमकल्ले ही की जाति का है। यह हल्का होता है और शीघ्र पचता है।

सलाद—(Lettuce) इसमें विटामिन ए, बी, और सी प्रचुर मात्रा में होते हैं। इसमें चूना, स्फुर, लोहा आदि लवण भी बहुत होते हैं। इसे रक्तहीनता (Anaemia) की एक प्रकार की औषधि कह सकते हैं। इसमें ३% से भी कम कर्बोज होता है इसलिये यह बहुमूत्र, मधुमेह, शोथ आदि रोगों में भी पथ्य है। इसकी २-३ इंच की पत्तियाँ बड़ी हितकर होती हैं। इसका सेवन चित्त में हल्कापन लाता है और नींद लाता है।

अजवाइन की पत्ती—यह अग्निवर्धक और वायुनाशक

होती है। इसमें विटामिन ए बहुत होता है। विटामिन बी और सी भी काफी होता है।

इनके अतिरिक्त करेमुआ, पोई, चौलाई, कुलफा, मरसा, नीम की कोमल पत्तियाँ, पुदीना, सोआ, मेथी, धनिया, राई, मूली, शलगम, सहजन और गाजर की पत्तियों के भी शाक प्रत्येक दृष्टि से बड़े उपयोगी होते हैं। चने और सरसों की पत्ती में विशेष कर चूना और लोहा बहुत होता है।

शाकों के पकाने में लवणों की हानि—पालक, करमकल्ला, प्याज आदि पदार्थों को भाप द्वारा तथा साधारण बरतन में पका कर पता लगाया गया है कि पालक के शाक को बिना पानी डाले बन्द बरतन में पकाने से उसके लवणों में कोई हानि नहीं होती। अन्यथा कुछ कमी आ जाती है।

पकाने में विटामिनों की हानि—साधारण पकाने में विटामिन ए और बी कुछ कम हो जाते हैं परन्तु विटामिन सी बहुत कम हो जाता है। केवल १० मिनट के बन्द बर्तन में पकाने से लगभग ६५ प्रतिशत विटामिन सी मर जाता है। इसलिये हरे शाक—कच्चे और पकाये दोनों—यथासम्भव प्रत्येक मनुष्य के प्रतिदिन के भोजन में होने चाहिये। कच्चे शाक बहुमूल्य फलों से भी बढ़ कर होते हैं। शाकों के धोने में बड़ी सावधानी रखनी चाहिये और विशेष कर कच्चे खाये जाने वालों के क्योंकि बहुधा रोग के कीटाणु खेतों से शाक के पत्तों के

साथ शरीर के अन्दर पहुँच जाते हैं। नमक के पानी या गरम पानी से धोना अति उत्तम होगा। गन्दे साग के कारण ही अक्सर बच्चों के पेट में कीड़े आ जाते हैं। पकाने के लिये भी पहले धोकर फिर काटना चाहिये। पकते समय शाक में जो पानी छूटता है उसे फेंकना न चाहिये नहीं तो बहुत कुछ लवण और विटामिन निकल जाते हैं।

भारतवर्ष में सरसों, मूली, पुदीना, सोया, मेथी आदि शाकों के कच्चे खाने का रवाज पहले ही से है। कच्चे खाये जाने वाले कुछ अन्य शाक जैसे पालक, या लेट्स (सलाद) का भी रवाज बढ़ना चाहिये। यह गुणकारी होने के साथ साथ स्वादिष्ट भी होते हैं। यह रायता के रूप में भी खाये जा सकते हैं।

धरती के नीचे की तरकारियां—आलू, रतालू, सूरन, शकरकन्द, अरुई, शलजम, गाजर, मूली, प्याज आदि तरकारियाँ इस श्रेणी में आती हैं। तापवर्धक पदार्थों में इनका नम्बर अनाज के बाद है। इनका प्रोटीन मध्यम प्रकार का होता है। इनमें लवण और कर्बोज पर्याप्त मात्रा में होते हैं। इनमें विटामिन ए भी काफी होता है परन्तु अनाज से कम। पीली तरकारियों में जैसे टमाटर, गाजर, शकरकन्द आदि में विटामिन ए भी होता है। इनमें थोड़ा विटामिन सी भी होता है। इन में से कुछ मुख्य मुख्य के गुण नीचे लिखे जाते हैं।

आलू—अनाज के श्रेणी की तरकारी है, यद्यपि इसमें प्रोटीन अनाज की श्रेणी का या अनाज के बराबर नहीं होता।

इसके तीन भाग होते हैं, छिलका, छिल्के के नीचे का भाग और बीच का गूदा। इसमें सबसे अधिक प्रोटीन, वसा और लवण और सबसे कम कर्बोज छिल्के के साथ लगे रहते हैं। उससे कम प्रोटीन, वसा और लवण और अधिक कर्बोज द्वितीय भाग में होते हैं और केवल कर्बोज बीच के गूदा में होता है। इसका प्रोटीन ६२ प्रतिशत पच जाता है और इसमें चूना, लोहा, पोटाश और फासफोरस काफी होते हैं। इसका चूना और फासफोरस अनाज के इन लवणों से अधिक पचनशील होता है।

आलू का प्रोटीन बहुत कुछ पानी में घुलनशील होता है, इसलिये यदि काट कर आलू पानी में भिगा दिया जाय तो लगभग ८० प्रतिशत प्रोटीन और लवण घुल कर पानी में रह जाता है, परन्तु यदि बिना छीले खौलते पानी में डाला जाय तो केवल १ प्रतिशत। इसलिये आलू का छिलका मोटा न छीलना चाहिये और न उसका पानी फेंकना चाहिए। आलू की बतियों में बड़े आलू की अपेक्षा अधिक प्रोटीन होता है और पहाड़ी आलू में देशी आलू की अपेक्षा अधिक प्रोटीन होता है। उबाला आलू २-२½ घंटे में पच जाता है परन्तु कड़ाही का तला देर में पचता है। आलू रूखा होता है क्योंकि इसमें वसा की मात्रा बहुत कम होती है। इसलिये यह चिकनाई अधिक माँगता है। सिवाय लहसुन के आलू अन्य समस्त तरकारियों से अधिक गरम है। आलू में विटामिन बी और सी भी होते हैं। इसका विटामिन सी पकाने पर भी कुछ बच रहता है। इसके कर्बोज में अम्लता

लाने का अवगुण नहीं होता जैसा कि अनाज, चीनी के साथ होता है। सुखाये आलू (Dehydrated) बराबर तौल में ताजे आलू से अधिक पौष्टिक तत्व रखते हैं। विटामिन अवश्य नहीं रहते। बड़ी जाति के आलू छोटी जाति के आलू से श्रेष्ठ होते हैं।

अंकुर निकलते हुये आलू जहरीले हो जाते हैं। इस लिए उन्हें पहले छील कर तब पकाना चाहिये।

शकरकन्द—यह आलू ही की जाति की चीज है। इसमें आलू की अपेक्षा अधिक प्रोटीन, लवण और वसा और मीठा होता है। इसमें विटामिन ए आलू की अपेक्षा अधिक होता है। परन्तु विटामिन बी आलू से कम। यह रेशों के कारण आलू की अपेक्षा कम पचनशील होता है।

आलू और शकरकन्द के अतिरिक्त मूली, गाजर, प्याज, लहसुन, शलजम, विशेष कर उल्लेखनीय हैं। मूली में एक प्रकार का क्षार होता है जो पेट के लिए बड़ा उपयोगी होता है। गाजर में चूना बहुत ज्यादा होता है। प्याज और लहसुन बड़े कृमि-नाशक होते हैं। शलजम में लोहा भी काफी होता है।

टमाटर—इस फल का प्रचार अभी हाल ही में बढ़ा है। पहले यह अमेरिका और इंग्लैण्ड में केवल बाग की खूबसूरती के लिये बोया जाता था। यह खेत में पैदा होता है और सस्ता बिकता है इसलिए तो यह तरकारी है परन्तु सन्तरा, सेव

और अंगूर के बराबर बल्कि बढ़ कर गुण रखता है इसलिये यह फल है। इसमें वह समस्त अम्ल होते हैं जो सेब, सन्तरा और अंगूर तीनों में मिलकर होते हैं। इसमें फ़ास्फ़ोरस, चूना, लोहा, गन्धक आदि लवण होते हैं जो सिवाय पालक आदि शाकों के किसी भी एक फल में एक साथ नहीं पाये जाते। इसमें विटामिन ए और बी समस्त फलों से अधिक होते हैं और विटामिन सी सन्तरे से कुछ कम परन्तु अन्यों से कहीं अधिक होता है। विटामिन सी इससे अधिक शाकों में होता है परन्तु शाकों का विटामिन पकाने में मर जाता है लेकिन इसका विटामिन पकाने में ५ मिनट तक नहीं मरता। वास्तव में पका हुआ टमाटर गरीबों का सेब, सन्तरा, अंगूर, अनार सब है। परन्तु इसमें एक लवण (oxalic acid) ऐसा होता है जो गठिया वालों के अनुकूल न पड़ेगा। इसलिये उन्हें टमाटर न खाना चाहिये। छोटे बच्चों को दूध पिलाने के ३० मिनट पहले टमाटर का रस देना चाहिये नहीं तो उनके पेट में दूध के कडे थक्के बन जाते हैं।

प्याज-लहसुन—दोनों एक ही जाति की चीजें हैं। इन में विटामिन बी और सी होते हैं परन्तु विटामिन ए नहीं होता। इनमें मुख्य लवण मामूली मात्रा में पाये जाते हैं परन्तु गन्धक अधिक होता है। इनमें एक तेल होता है जिसके कारण इन में तेज गन्ध होती है। इनका वह तेल उत्तेजक होता है। इन दोनों में कृमि नाशक गुण होते हैं और यह पेट के अन्दर सड़न को कम करते हैं। लहसुन और प्याज दोनों ही मांस पेशी सम्बन्धी रोगों में

बहुत लाभ करते हैं। कच्ची प्याज से खांसी और दमा में फायदा पाया गया है। लहसुन पाचन तथा विकृत वायु सम्बन्धी अनेकों रोगों में उपयोगी साबित होता है।

ऊँची हिन्दू जातियों में इनका बहिष्कार कदाचित् इनके दुर्गन्ध के कारण होता है। पका देने से इनका तेल उड़ जाता है और इनकी दुर्गन्ध और इनका उत्तेजक गुण दोनों दूर हो जाते हैं।

सेम—इस में विटामिन ए और बी प्रचुर मात्रा में होते हैं। इसमें कर्बोज बहुत कम होता है। इसमें क्लोम रस (insuline) स्वाभाविक होता है। इसलिये मूत्रकृच्छ्र में इस का सेवन उचित होता है। गाजर और सलाद का रस भी साथ साथ दिया जाय तब अधिक गुण करता है।

ककड़ी—इसमें अम्ल केवल ३६ % और क्षार ६४ % होता है। इसलिये यह रक्त की अम्लता नष्ट करने के लिये बड़ी उपयोगी होती है। इसके सेवन से पेशाब साफ होता है। गाजर, चुकन्दर आदि के रस के साथ यह अधिक उपयोगी हो जाती है।

मूली—मूली देर पच होती है क्योंकि इसके रेशे कड़े होते हैं। गाजर के समान इसमें भी प्रधान पौष्टिक तत्व कम होते हैं परन्तु लवण और विटामिन बी और सी होते हैं। यह कृमि नाशक होती है, अन्य चीजों के पचने में सहायता देती है और इसमें कुछ संखिया का अंश होने के कारण यह बहुमूत्र में लाभ करती है।

शलजम—इसमें भी लवण और विटामिन बी और सी होते हैं। रोगियों के लिये उत्तम तरकारी है।

रेवत चीनी—पाचक और क्षुधा वर्धक होती है। यह रेचक भी होती है और आंतों को साफ करती है। इसमें विटामिन ए और सी होते हैं। और अन्य लवणों की अपेक्षा लोहा अधिक होता है।

गाजर—शरीर बनाने तथा शक्ति देने की दृष्टि से गाजर अच्छी चीज नहीं परन्तु इसमें लोहा और चूना बहुत होते हैं और विटामिन ए, बी, और सी भी होते हैं। गाजर का रस घाव नाशक होता है और पेट के भीतर के घावों को भी यह अच्छा करता है।

२६—फल

खाद्य पदार्थों में फलों का दर्जा अतिश्रेष्ठ है। इनका शर्करा अति उत्तम प्रकार का (ग्लूकोज) होता है जिसका पाचन मुँह ही से शुरू हो जाता है। इसके लिये पाचनेन्द्रिय को परिश्रम नहीं करना पड़ता। शहद मे भी ग्लूकोज ही होता है। इसी से मीठे फलों के खाते ही चित्त प्रसन्न हो जाता है और शक्ति महसूस होती है।

इसके अतिरिक्त इनमें एक प्रकार का अम्ल और उड़नशील तैल भी होते हैं जो दोनों शरीर के लिये अति उपयोगी होते हैं। प्रोटीन और वसा इनमें अधिक नहीं होते। परन्तु प्रथम तीनों विटामिन होते हैं और सी सबसे अधिक। विटामिन सी की दृष्टि से साग इनसे उत्तम पड़ते हैं परन्तु पकाने में उनके विटामिन बहुत कम हो जाते हैं।

फल क्षार प्रधान होते हैं इसलिये इन्हें मांस, अनाज और मेवे खाने वालों के आहार के मुख्य अंग होने चाहियें।

फल खाने का सर्वोत्तम समय तीसरा पहर है। यथासम्भव फल के साथ दूसरे पदार्थ न खाये जायँ। यों ये किसी भी समय खाये जा सकते हैं, सवेरे या खाना खाने के पश्चात। फल को साफ

धोकर काटना चाहिये। जो छिलके सहित खाये जा सकते हैं उन्हें वैसे ही खाना चाहिये, और कटा फल बासी न रखना चाहिये। अक्सर बाज़ार के सड़े या देर के कटे फलों द्वारा रोग होते पाये गये हैं।

सेव—इसमें एक प्रकार का अम्ल होता है जो पेट के लिये, विशेषकर यकृत के लिये, बड़ा उपयोगी होता है। इसके छिलके में विटामिन ए गूदे का ६ गुना होता है। देर तक कटा रक्खा रहने से इसका लोहा वायु की आक्सीजन से मिल जाता है, अतः कटा भाग लाल हो जाता है और कम उपयोगी हो जाता है। खट्टा सेव पेट के लिये अधिक हितकर होता है। परन्तु खांसी लाता है। ज्वर की दशा में सेव से सन्तरा, मोसम्बी अधिक उपयोगी होते हैं।

नासपाती—यह भी सेब ही की जाति का फल है। परन्तु उपयोगिता मे उससे कम होता है।

सन्तरा—इसमें विटामिन ए, बी, सी, तीनों होते हैं। इसमें विटामिन अनार से अधिक होते हैं। केलारी भी अनार से अधिक होती है। विटामिन सी सब से अधिक होता है। यह रक्त और पाचन के लिये बड़ा उपयोगी होता है। सन्तरे की जाति के सब फल रक्त से युरिक एसिड निकालते हैं। इस लिये गठिया के रोगियों के लिये विशेष उपयोगी होते हैं।

नींबू—यह सन्तरे ही की जाति का फल है। यह ही अकेला ऐसा फल है कि जिसकी खटाई रक्त में अम्ल की जगह क्षार पैदा

करती है । इसमें विटामिन सन्तरे से कम होते हैं परन्तु लवण और साइट्रिक अम्ल सन्तरे से अधिक होते हैं जो पाचन के लिये बड़े उपयोगी होते हैं । बासी मुँह नीबू का रस, खाली या पानी और नमक के साथ, आँतों को उत्तेजित कर कब्ज दूर करता है । भोजन के पश्चात् नीबू खा लेने से मुँह साफ हो जाता है और दाँत के रोग नहीं होते । स्वास्थ्य की दृष्टि से नीबू का रिवाज बहुत बढ़ना चाहिये ।

मोसम्बी और मीठा नींबू—सन्तरे के समान गुण रखते हैं ।

इमली—यह भी नींबू की जाति की चीज है । किन्तु इसमें शर्करा तथा अन्य पौष्टिक तत्व भी होते हैं । लवण और विटामिन सी भी होता है । यह नीबू की अपेक्षा सस्ती चीज है ।

अंगूर—इसमें विटामिन बहुत कम होते हैं परन्तु इसका शर्करा अति उत्तम प्रकार का (ग्लूकोज) होता है जो मुँह ही से पचने लगता है । इसमें लोहा तथा अन्य लवण अधिक होते हैं । यह, विशेष कर इसका छिलका, रेचक होता और मूत्र साफ लाता है । किशमिश और मुनक्का सूखे अंगूर हैं ।

अनार—इसमें विटामिन बी और सी होते हैं । हृदय के लिये यह बड़ा उपयोगी होता है । इसकी में खट्टी जाति पेट के लिये उपयोगी होती है ।

अमरूद—इसमें विटामिन बी और सी होते हैं । यह कब्ज नाशक होता है ।

गन्ने का रस—यह हृदय के लिए बहुत उपयोगी होता है। गन्ना दाँत से चूसने से दाँतों को भी लाभ होता है।

पपीता—इसमें पपैन नामी एक पदार्थ होता है जो पाचन के लिये अति उपयोगी है। हमारे पेट में इसी पदार्थ के होने के कारण भोजन पचता है। अतः इसकी कमी बाहर से पपीता द्वारा पूरी की जा सकती है। परन्तु पपीता तभी फायदा करता है जब रक्त क्षार-प्रधान हो अर्थात् शाक-भाजी का सेवन अधिक हो। पपीता की तेजी का अन्दाजा इससे लगाया जा सकता है कि जो गोश्त न पकता हो पपीता डाल देने से पक जाता है। पके पपीता में विटामिन ए, बी और सी तीनों होते हैं परन्तु कच्चे में विटामिन ए नहीं होता। यह रेचक होता है।

आम—शरीर के लिये उपयोगी फल है। पका आम रेचक होता है। आम पतले रस का (देशी) गुणकारी होता है। कलमी आम भी पतला रस बना कर खाना हितकर होगा। आम खाकर दूध पीने से स्वास्थ्य और पाचन को लाभ होता है। कलमी आम पाचन के लिये हानिकारक होता है क्योंकि और इसका गूदा गड्ढा होता है और देर में पचता है। अच्छे आम में विटामिन ए बहुत होता है और सी भी काफी होता है।

केला—यह भी अति उपयोगी फल है। इसमें लोहा और कर्बोज दोनों बहुत होते हैं। इसमें विटामिन सी भी काफी होता है। दूध के साथ खाने से केला और दूध दोनों का पाचन शीघ्र और पूर्ण होता है। इसका प्रचार अधिक होना चाहिये। डाक्टरों की

राय में दूध के साथ कच्ची फली का आटा बच्चों और रोगियों के लिये साबूदाना या अरारूट से कहीं श्रेष्ठ होता है।

इनके अतिरिक्त अनन्नास, जामुन, मकोय, फालसा, शहतूत आदि, भी उत्तम फल हैं। इन मौसिमी फलों में बेल बड़ा उपयोगी होता है। बेल पाचन को उन्नत करता और कब्ज दूर करता है। परन्तु केले के समान बेल भी कम खाने से कब्ज करता है और अधिक खाने से कब्ज दूर करता है।

आँवला—इस को अयुर्वेद में रसायन कहा है। इस में विटामिन सी सन्तरे का बीस गुना होता है जो धूप में सुखाने से भी नहीं मरता। यह गुण केवल इसी में है। एक छोटे से आंवले में एक या दो बड़े सन्तरे का दुगना विटामिन सी होता है।

इस को सुखाकर रखने का उत्तम उपाय यह है कि इस के छोटे छोटे टुकड़े काट कर इसे घाम में सुखाले और उसे बंद बोतल में रख दे। सील पाकर खराब जावेगा। आँवले का सेवन समस्त पाचन रोग, रक्त पित्त, रक्त की अम्लता, तृष्णा, हृदय के रोग, नेत्र के रोग तथा अनेकों रोगों को लाभ पहुँचाता है।

३०—सूखे मेवे

गरी दार मेवे—जैसे बादाम, अखरोट, मूंगफली, काजू, चिलगोज़ा, गरी—यह बहुत ही पुष्ट पदार्थ हैं। इन में द्विदल अनाजों के सिवाय अन्य अनाजों की अपेक्षा अधिक और उत्तम प्रोटीन होता है। इनमें वसा भी अधिक होता है परन्तु कर्बोज़ कम। ये बहुत पुष्ट और गरम होते हैं और अधिक न खाए जाने चाहिये। अच्छा होगा यदि भोजन के साथ परन्तु खाने के बीच में खाए जायं। खाली पेट भी खाये जायं तो कर्बोज-प्रधान कोई भी चीज साथ में खाई जाय। घिस कर या पीस कर खाने से इनका पाचन ठीक होता है।

मूंगफली सस्ती होने के कारण बड़ी बे परवाही से खायी जाती है और यही कारण है कि इसके गरम और पेट के लिये हानिकारक होने की धारणा फैल गई है। वास्तव में यह बादाम की जाति की चीज है बल्कि पाचन में उस से अधिक गरिष्ट होती है। इसके बड़े बड़े कण जो साधारणतया बच्चों और सयानों के पेट में बिना मात्रा या समय के ध्यान के जाया करते हैं पाचन बिगाड़ते हैं। विशेष हानि यह जिगर को पहुँचाती है चानी के साथ पका कर खाने से यह सरलता से पचती है परन्तु अधिक किसी हालत में न खाई जानी चाहिये।

सूखे मेवे जैसे किशमिश मुनक्का, इन्जीर, इमली, छोहारा, खूबानी आदि में शर्करा का भाग बहुत होता है। इसी लिये यह अनाज के समान शक्ति देने वाले पदार्थ होते हैं। इनमें खनिज लवण भी काफी होते हैं। करीब-करीब सभी में थोड़े बहुत विटामिन ए और बी भी होते हैं। और ये रेचक भी होते हैं। किशमिश, खूबानी और इन्जीर में लोहा बहुत होता है। थोड़ी सी किशमिश या २-३ इन्जीर रात में भिगो दिये जाय और सवेरे खाये जाय तो कब्ज में बहुत फायदा करते हैं और खून भी बढ़ाते हैं। किशमिश यदि नींबू के रस में भिगोई जाय तो अधिक उपयोगी हो जाती है।

खजूर और छोहारा भी शक्ति देने वाले मेवे हैं। करीब करीब चावल के बराबर उष्ण होते हैं। इसमें विटामिन ए, बी के अतिरिक्त कुछ विटामिन सी भी होता है।

हमारे यहां इमली का रिवाज कुछ कम है परन्तु मद्रास में बहुत। इसमें फलों के सभी अम्ल पाये जाते हैं। इसमें पौष्टिक तत्व लवण और विटामिन बी और सी होते हैं। यह कुछ रेचक होती है। यह शीतल होती है और इसके अम्ल के कारण साधारण आंच से इसके विटामिन शीघ्र नहीं नष्ट होते।

बदाम—इसमे लोहा, चूना, फास्फोरस और पोटैशियम बहुत होते हैं। इसमें विटामिन बी भी होता है और बहुत ही कम विटामिन ए भी होता है। बदाम को घिस-पीस कर या खूब

चबाकर खाना चाहिये। कड़ुवा बदाम जहरीला होता है। क्योंकि उसमें Hydrocyanicacid होता है। परन्तु पका देने से यह तत्व निकल जाता है और यह हानिकारक नहीं रह जाता।

अखरोट—यह बदाम की अपेक्षा कम अच्छा नहीं होता है क्योंकि यह सरलता से पचता है। इसमें विटामिन बी होता है और बहुत ही कम विटामिन ए भी पाया जाता है। लोहा तथा अन्य लवण भी इसमें होते हैं।

गरी—गोला यह अपने रेशों के कारण देर में पचती है। परन्तु इस में कुछ विटामिन बी और सी होते हैं। अधिक हो जाने से यह वायु विकार पैदा कर देती है। परन्तु गरी से मांस का प्रोटीन गल जाता है। विशेष कर कच्ची गरी से।

कच्चे गोले के भीतर के पानी में बिटामिन ए और सी होते हैं। रोगियों के लिये या जो लंघन करते हों उनके लिये यह बड़ा उपयोगी होता है। यह पेशाब साफ लाता है, मतली रोकता है और प्यास शान्त करता है।

इन मेवों में विटामिन बी काफी होता है और थोड़ा विटामिन ए भी होता है।

अलसी—अलसी और तिल भी इसी जाति के पदार्थ हैं और करीब करीब इन्हीं के समान गुण-अवगुण रखते हैं। ये बहुधा लड्डू बनाकर खाये जाते हैं। इनमें भी दोनों विटामिन होते हैं। अलसी में मेवों से भी अधिक विटामिन ए होता है। यह तिल से अधिक पुष्ट होती है।

३१—तेल-मसाले

तेल—तेल घी से अधिक गरम होते हैं। और जो जितनी ही कम आंच पर पिघल या पक जाते हैं वह शरीर में उतने ही शीघ्र पचनशील होते हैं। तेलों में विटामिन बी और सी नहीं होते। विटामिन ए तेलों में वनस्पति और कोकोजेम में बिल्कुल नहीं होता। काले तिल का तेल सफेद से अधिक अच्छा होता है। मछली के तेल में विटामिन ए और डी दोनों होते हैं। जैतून का तेल पेट के लिये बड़ा हितकर होता है। लाल ताड़ के तेल (Red Palm oil) में विटामिन ए मछली के तेल से कुछ ही कम होता है। घी के अभाव में तेल और उसके साथ अन्य विटामिन वाले पदार्थ अवश्य खाना चाहिये परन्तु तेल की मात्रा घी से कुछ कम होगी। १ छटांक घी की जगह ४½ तोला तेल पर्याप्त होगा। तेलों में सब से ज्यादा आयोडिन मूँगफली के तेल में होता है। पुराना तेल अम्ल हो जाता है इस लिये तेल यथा सम्भव ताजा होना चाहिये। कडुवा तेल पकाने के लिये उत्तम होता है परन्तु शुद्ध होना चाहिये।

आजकल बेरीबेरी का कारण बाजारू कड़ुवे तेल का इस्तेमाल पाया गया है। प्रायः शहरों में बाजारू तेल खाने वालों को

यह रोग होता देखा गया है। यह संक्रामक भी होता है। सरसों में भरभण्डा के बीज मिलाये जाते हैं। उसके तेल में एक जहरीला तेजाब (HCN) होता है। इससे शरीर की नसें फूल जाती हैं, आखों की पुतली फैल जाती हैं, रक्त की तेजी कम हो जाती है और हृदय की धड़कन बढ़ जाती है। असली पीली सरसों के तेल में यह अवगुण नहीं होते। इसलिये उसका इस्तेमाल पकाने, कच्चा खाने और मालिश तीनों के लिये किया जा सकता है। लाल सरसों का तेल पीली सरसों के तेल से हेठा होता है। उसके उपयोग में भी हर्ज नहीं। परन्तु लाल सरसों से मिलते-जुलते होने के कारण भरभण्डा लाल सरसों में अधिक खप जाता है।

बाजारू सरसों का तेल हानिकारक होता है। परन्तु १ सेर कडुवे (सरसों के) तेल में १ तोला गुड़ और १ छटाँक दही डाल कर पका लेने से उसकी महक निकल जाती है। दही के अभाव में १ छटाँक गुड़ भी पकाया जा सकता है। ऐसा तेल वनस्पति के स्थान पर इस्तेमाल हो सकता है।

वनस्पति—डालदा आदि वनस्पति तेलों का प्रचार बहुत बढ़ गया है। वनस्पति मूंगफली आदि के तेलों से उनका रंग और महक निकाल कर बनाते हैं। इस क्रिया में तेल में निकिल (Nickle) का कुछ अंश आ जाता है। कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि इसके कारण आहार पदार्थों का चूना और स्फुर कमपचा ही निकल जाता है। वनस्पति खाने वालों में रोगों के बढ़ने का यही

कारण है। इसके प्रतिकूल शुद्ध तेलों का इस्तेमाल स्वास्थ्य के लिये किसी प्रकार से हानिकारक नहीं होता। परन्तु तेल ताजा होना चाहिये। पुराने तेल में तेजाबीपन आ जाता है। उसमें मिले खली के कण समय पाकर यह अवगुण पैदा कर देते हैं।

मसाले

मसाले स्वास्थ्य के लिये विशेष हितकर नहीं होते। निःसन्देह वह स्वाद बढ़ाते हैं और पाचन शक्ति को उत्तेजित करते हैं। और उनमें कुछ कृमि नाशक भी होते हैं। मसाले आँतों में पहुँच कर कुछ उत्तेजना पैदा कर देते हैं जिससे पाचक रसों का निकलना बढ़ जाता है। परन्तु अधिक समय तक उत्तेजित होते रहने से आँतों में कमजोरी आ जाती है और पाचन दुर्बल हो जाता है। कभी-कभी दुर्बल पाचन में चूरन के रूप में इन मसाले की चीजों से लाभ होता है। परन्तु वहीं तक जहाँ तक हलकी उत्तेजना की जरूरत होती है। इसलिये मसालों का उपयोग कम से कम करना चाहिये। स्वाद तो मनुष्य का बनाया होता है।

मसाले तीन प्रकार के होते हैं :—

(१) अम्ल—सिरका, खटाई, इमली इत्यादि।

(२) तीखे मसाले—मिर्चा, मिर्च, अदरख, सोंठ इत्यादि।

(३) सुगन्धित मसाले—इलायची, हल्दी, लौंग, तेज-पात, धनिया, दालचीनी, जीरा, जावित्री, हींग इत्यादि।

(१) अम्ल—यह कुछ पाचन को उत्तेजित करता है।

सिरका—इससे प्यास मरती है और पसीना भी रुकता है। परन्तु यह आँतों में खराश (Catarrh) पैदा कर देता है। बहुधा लोग शरीर क्षीण करने के लिये सिरका का उपयोग करते हैं परन्तु यह अन्त में हानि करता है।

नीबू—नीबू का रस पाचन के लिये उपयोगी होता है परन्तु रेचक होता है। इसमें लवण और विटामिन भी काफी होते हैं। यह पच जाने पर अम्ल नहीं होता।

इमली—यह भी नीबू से कुछ कम गुण रखती है।

(२) तीखे पदार्थ—

मिर्चा—हरे मिर्चा में कुछ विटामिन सी और ए भी होते हैं। परन्तु हरे या लाल मिर्चा अधिक खाने से आँतों में खराश हो जाता है।

काली मिर्च—यह पाचन के लिये उत्तेजक होती है और पेट की वायु को मारती है। परन्तु इस का भी उपयोग अधिक न होना चाहिए। इसमें लोहा और चूना काफी होता है।

पीपल—यह काली मिर्च की अपेक्षा अधिक उत्तेजक होती है।

यह कफ और खाँसी में हितकर है। इसमें लोहा बहुत ज्यादा होता है। चूना भी होता है।

राई—यह बहुत ही उत्तेजक है। अधिक उपयोग से आँतों में घाव कर देती है। कभी कभी और बहुत थोड़ी मात्रा में इस्तेमाल की जा सकती है।

अदरख-सोंठ—यह भी पाचन के लिये हितकर हैं।

(३) सुगन्धित मसाले—

इलायची—यह उत्तेजक है और पेट की वायु को नाश करती है।

दालचीनी—यह मल शोधक है और कृमि नाशक है।

लौंग—यह कृमि नाशक है। इसमें चूना भी होता है।

हल्दी—यह मल शोधक और कृमि नाशक है। यह पाचन के लिये हितकर है। इसमें लोहा होता है।

तेजपात—यह शीतल होता है।

धनिया—यह पेट की पीड़ा और वायु को नाश करती है। इसमें लोहा-चूना होता है।

अजवाइन—यह वायु नाशक होती है और पेट की पीड़ा में हितकर है।

हींग—यह पेट की पीड़ा को नाश करती है और पाचन बढ़ाती है। इसमें लोहा और चूना होता है।

जीरा—यह भी पेट की पीड़ा और वायु को नाश करता है और ठंढक लाता है। इसमें लोहा और चूना बहुत होता है। इसमें केरीटीन भी होता है।

जावित्री—यह भी पेट की पीड़ा को नाश करती है। परन्तु अधिक हानि करती है क्योंकि इसमें कुछ नींद लाने का नशा होता है।

३२—कब्ज़

शहद, गुड़, चीनी—शहद पेट में पहुँचते ही पचता है और शक्ति देता है। इसमें कुछ विटामिन ए भी होते हैं। यह रेचक होता है। गरम किया हुआ शहद कफ, दस्त आदि द्वारा शरीर-विकार को निकालता है। गरम दूध के साथ यह अधिक रेचक हो जाता है। यह रोगियों को ग्लूकोज की जगह पर इसके रेचक गुण को ध्यान में रख कर दिया जा सकता है।

शर्करा में सफेद चीनी की अपेक्षा स्वच्छ गुड़ अधिक उपयोगी है। डाक्टर प्लिमर लिखते हैं—"बहुत दिन नहीं हुये कि चीनी ताला कुंजी के भीतर रक्खी जाती थी।.........अब इसका उपयोग बेहद बढ़ गया है और बढ़ता जाता है......और केन्सर (पेट का फोड़ा) और मधुमेह, सभ्यता की दो महामारियाँ भी चीनी के अनुपात में बढ़ती जा रही हैं। देखा जाय तो मालूम होगा कि चीनी और श्वेतसार में विटामिन बी की कमी ही के कारण वह अवस्थायें उत्पन्न होती हैं जो इन रोगों में अन्त होती हैं। हमें चाहिये की हम गन्ने का समस्त रसीला भाग खायें, साफ की हुई चीनी नहीं। हमें उसी शेष भाग की आवश्यकता है जो फेंक दिया जाता है।"

सफेद चीनी अधिक खाई जाने से पेट में वायुविकार पैदा करती है।

गुड़—इस में काफी मात्रा में ग्लूकोज तथा लोहा, तांबा आदि लवण भी पाये जाते हैं। इसमें विटामिन बी भी होता है। यह आँतों को उत्तेजित करता है इसलिये पाचक और रेचक दोनों होता है। नया गुड़ पुराने की अपेक्षा अधिक उत्तेजक होता है। इसी कारण गुड़ गरम कहा जाता है।

अरारूट—यह एक वृक्ष के जड़ का सत्त है। यह मल बाँधता है। इसमें विटामिन और प्रोटीन बिलकुल नहीं होते। यह १½ घण्टे में पच जाता है।

साबूदाना—यह भी एक पेड़ के तने के गूदे की गोलियाँ है। इसमें भी विटामिन नहीं होते। इसका प्रोटीन चावल के बराबर होता है। यह भी १¾ घण्टे में पचता है। अकसर बच्चों को साबूदाना पर रखा जाता है। ऐसे बच्चों की बाढ़ रुक जाती है, और शरीर क्षीण रहता है और उसे रोग भी लग जाते हैं।

३३—मादक पदार्थ

शराब

शराब कोई आहार पदार्थ नहीं है। इसमें एक नशीली और विषैली चीज अलकोहल (alcohol) होती है जिसके तेजी का अन्दाजा इससे हो सकता है कि सौ बूँद पानी में एक बूँद अल-कोहल मिला कर उसमें एक छोटा कीड़ा डाल दिया जाय तो वह तुरन्त ही मर जावेगा। शराब में यह अलकोहल इस मात्रा में होता है—

रेकटी फ़ाइड स्प्रिट में	९०%
ब्रांडी	४०—७० ,,
रम	४०—५४ ,,
जिन	२५—५० ,,
ह्विस्की	४०—५४ ,,
पोर्ट	१५—२५ ,,
शेरी	१५—२० ,,
क्लारेट, शेम्पेन,	९—१२ ,,
बियर	५—९ ,,
हल्की बियर	२—५ ,,
देशी	७०—७५ ,,

शराब का प्रभाव समस्त पाचनेन्द्रिय जैसे पेट, आँत, यकृत, फेफड़ों, स्नायु-मण्डल (Nervous System), मांस पेशियों और मस्तिष्क पर पड़ता है। इसकी क्रिया इस प्रकार होती है।

पेट में पहुँचते ही यह आँतों द्वारा रक्त में पहुँच जाती है। खाली पेट में गले के नीचे उतरते ही यह अपना काम करने लगता है। पेट में पहुँच कर यह वहाँ की इन्द्रियों में कुछ उत्तेजना पैदा करती है। आमाशय के भीतर की झिल्ली को जो मुँह के अन्दर हलक के रंग की होती है रक्तवरण कर देती है, जैसे बरांडी आँख में डालने से आँख लाल हो जाती है। पहले कुछ दिन तक तो इस उत्तेजित अवस्था में यहाँ की क्रिया और तेज होती है परन्तु कुछ ही दिनों बाद उत्तेजना के बाद की स्वाभाविक शिथिलता आने लगती है। अलकोहल के प्रभाव से यह भाग पहले उत्तेजित और फिर शून्य होने लगता है। पाचक रस ठीक से नहीं निकलते और आँतों की चाल भी मन्द पड़ जाती है।

पेट (आमाशय) से आगे बढ़ कर इसका प्रभाव यकृत पर पड़ता है। यह भी इसके कुप्रभाव से पहले कुछ दिनों तक तो उत्तेजित और फिर सिकुड़ने, जकड़ने और शून्य होने लगता है। वहाँ के आगे यह हृदय की ओर बढ़ता है। पहले वहाँ की रक्त केशिकाओं को शून्य कर देता है और परिणाम-स्वरूप रक्त अस्वाभाविक रूप से बहने लगता है। इसके बाद यह उन नसों को जो हृदय को बाँधे रहती हैं फैला देता और शून्य कर देता है। अतः हृदय की धड़कन बढ़ जाती है। यह बात वैसी ही हानिकारक

है जैसे घोड़े की लगाम का टूट जाना या मोटर का ब्रेक टूट जाना।

हृदय की तेज धड़कन और रक्त केशिकाओं की शून्यता का परिणाम यह होती है कि अलकोहल से भरे हुये रक्त का प्रवाह फेफड़े और मस्तिष्क की ओर बढ़ता है। वहाँ के भाग भी उत्तेजित हो जाते हैं। साँस तेज और भारी चलने लगती है, आँख और चेहरा लाल हो जाता है, आँखों की पुतली फैल जाती हैं, विचारों का प्रवाह बहने लगता है, भाव जगने लगते हैं परन्तु तर्कशक्ति और मस्तिष्क बल जो विचारों और भावों को रोकने और संचालन करने का काम करती है शून्य हो जाती है। यही कारण है कि नशे में भले, बुरे, क्रूर, दयालु हर तरह के विचार और भाव आया जाया करते हैं परन्तु बेसिलसिले। यह प्रतिदिन के कुप्रभाव के कारण विचार-बल की कमजोरी ही है जिसकी बदौलत शराबी रोजाना के कसम खाने पर भी मरते दम तक यह लत नहीं छोड़ पाता बल्कि जानते बूझते हुये भी कुकर्म तक कर डालता है।

शराब के असर से पहले तो यह दशायें नशे के समय ही तक रहती हैं परन्तु कालान्तर में जब हृदय, फेफड़े और मस्तिष्क की नसें कमजोर हो जाती हैं तो उनकी यह दशायें स्थाई हो जाती हैं। उसमें अन्यान्य रोग जैसे आँखों की खराबी, मिर्गी, पागलपन, फालिज, हाथों पैरों में कंपकंपी, हृदय में धड़कन, आये दिन का जुकाम, खाँसी, दमा, मन्दाग्नि, गठिया और चर्म रोग

आ लगते हैं, और यह सभी रोग ऐसे हैं जो खान्दानी चलते हैं। अभी हाल में अमरीका के वैज्ञानिकों ने दिमागी रोगों का और विशेष कर पागलपन का कारण तीन चौथाई शराब पाया है।

बहुधा लोग इसे तापवर्धक मान कर इसका उपयोग लाभदायक सिद्ध करते हैं बल्कि छोटे बच्चों को भी पिलाते हैं। परन्तु शराब वास्तव में तापवर्धक केवल इसी अर्थ में है कि यह शरीर की गर्मी को भीतर से निकाल कर ऊपर ला देती है जिस कारण थोड़ी देर के लिये रक्त में दौरा तेज हो जाता है। परन्तु थोड़े ही समय में बाहर की ठंढी वायु के स्पर्श से यह गर्मी निकल जाती है और रक्त को ठंढा छोड़ जाती है। गर्मी कहीं से आती नहीं बल्कि शरीर के भीतर ही की गर्मी बाहर निकल जाती है। इसलिये नशे के उतार पर, जिसे खुमार कहते हैं, अपनी असली गर्मी भी गंवा देने के कारण शरीर बड़ा शिथिल हो जाता है और बिना उत्तेजक पदार्थ के साधारण काम के लायक नहीं रहता। बल्कि उस अवस्था में सर्दी लगने का भय बहुत रहता है। इन्हीं कारणों से उत्तरी तथा दक्षिणी ध्रुव प्रदेशों में यात्रा करने वाले इसका सेवन नहीं करते।

इससे स्पष्ट है कि इस में अवगुण काफी हैं और प्रलोभन वाला इत्यादि। इसलिये यह किसी भी अवस्था में आवश्यक नहीं है।

तम्बाकू

तम्बाकू भी शराब ही की जाति की चीज है। तम्बाकू के विष की तेजी का अन्दाजा इससे हो सकता है कि उसका एक बूँद

एक बिल्ली को ३ मिनट में हत सकता है। एक वैज्ञानिक ने एक बार तम्बाकू की चाय बनाकर एक बड़े पशु के शरीर पर मला और वह तीन ही घंटे में मर गया। शराब या काफी की तरह तम्बाकू से भी मस्तिष्क में एक उत्तेजना पैदा होती है, थकान और नींद दूर हो जाती है और बातें करने में अधिक मन लगता है।

एक स्वस्थ मनुष्य को तम्बाकू खिलाने या पिलाने से जो जो चिन्ह दिखलाई पड़ें उन्हीं को तम्बाकू के गुण-अवगुण समझना चाहिये। आँखों की रोशनी की कमी, दिमाग में चक्कर, स्नायु मण्डल की दुर्बलता, हाथों पैरों में कंपकंपी, दाँत की कम-जोरी भूख मर जाना इसके सेवन के परिणाम हैं। तम्बाकू से दिल का धड़का बढ़ जाता है, रक्त-चाप बढ़ जाता है, रक्त केशिकाएँ सिकुड़ जाती हैं और आँतों की साधारण क्रिया तत्काल तेज परन्तु स्वाभाविक गति में धीमी हो जाती है। अधिक तम्बाकू के सेवन से अक्सर पित्त की नली में सूजन आ जाती है, और भूख मर जाती है और दस्त आने लगते हैं।

देहातों में तथा मजदूर वर्ग में तम्बाकू खाने-पीने का रवाज बहुत है क्योंकि उनका आहार उनके शारीरिक श्रम को देखते हुए कम उष्णता रखता है और अन्य रूपों में भी असंतुलित होता है। अतः उनको हर समय उत्तेजक पदार्थ की जरूरत पड़ती है। परन्तु कालान्तर में इसके परिणाम बुरे होते हैं।

पीने की अपेक्षा तम्बाकू खाना अधिक हानिकारक है क्योंकि खाने से इसका विष (Nicotin) सीधे शरीर में जाता है और बार बार थूकने से वह पाचक रस जिसे अन्दर जाना चाहिये बाहर जाता है। पीने में भी हुक्का सिग्रेट या बीड़ी से अच्छा होता है क्योंकि हुक्के में पानी में से होकर जाने से धुंये का विष कम हो जाता है परन्तु सिग्रेट में यह सीधे अन्दर जाता है और जितना निकट से जाता है उतना ही अधिक हानि पहुँचाता है।

धुंयें में दो प्रकार के विष होते हैं। एक तो तम्बाकू का और दूसरा कार्बन मानक्साइड (Carbon monoxide) नामी वाष्प का जो अध-जली पदार्थों में पैदा हुआ करती है और यहाँ अधजली तम्बाकू से पैदा होती है। इसी कारण एक बार की अधजली सिग्रेट को फिर से न जलाना चाहिये और बहुत छोटी सिग्रेट न पीना चाहिये। तेजी से पीने वाला अधिक विष अन्दर रोक लेता है। गीली सिग्रेट जो सुलग सुलग कर जलती है अधिक हानिकारक होती हैं। बीड़ी सिग्रेट की अपेक्षा अधिक हनिकारक होती है। अभी हाल ही में अमरीका के वैज्ञानिकों ने बहुत से विद्यार्थियों पर प्रयोग करके यह पता लगाया है कि तम्बाकू न पीने वालों की स्मरण-शक्ति पीने वालों की अपेक्षा अच्छी होती है। सिग्रेट पीने वालों की अपेक्षा सिग्रेट का धुंवा लेने वालों को अधिक हानि पहुँचती है। क्योंकि पीने

वाले के भीतर केवल १५% विष रुकता है और बाहर धुवाँ लेने वालों में ३०% विष रुका करता है।

अभी हाल ही में अमरीका के डा० ने अपने अस्पताल में सिग्रेट पीने वाली ५५ माताओं के दूध की जाँच करके देखा कि उनके रक्त में तम्बाकू का विष मौजूद था। कम और कभी कभी पीने वालियों के दूध में भी था, जैसा अधिक पीने वालियों के दूध में था। फिर उन्होंने इन माताओं को अपने बच्चों को अपना दूध पिलाने की इजाजत दे दी। देखा गया कि सभी बच्चे, दूध फेकने लगे। कुछ का भार पैदा होने के समय से भी कम हो गया। कुछ का वहीं रुक गया। ११ माताओं के दूध भी काफी नहीं होता था।

चाय

इसमें शरीर के लिये कोई भी पौष्टिक पदार्थ नहीं है परन्तु यह उत्तेजक पदार्थ अवश्य है। इसमें कैफीन (Caffein), टैनिक एसिड (Taunic acid) और यूरिक एसिड (Uric acid) नामी तीन मादक पदार्थ होते हैं। इनमें से कैफीन एक उत्तेजक पदार्थ है। इसी के कारण चाय में शारीरिक और दिमागी थकान दूर करने की शक्ति होती है। यह दिल का धड़का और खून का दौरा बढ़ा देती है, नींद उचाट देती है और इन्द्रियों को कुछ शून्य कर देती है जिससे पीड़ा का अनुभव कम हो जाता है। पसीना आने के कारण शरीर की गर्मी बाहर निकल जाती है। टैनिक एसिड पाचन को शिथिल करती है, मल रोकती है और पेट में वायु पैदा

करती है। यह साधारणतया कुछ कब्ज पैदा करती है परन्तु अधिक मात्रा में या खाली पेट पहुँचने से दस्त लाती है।

चाय बनाने में सावधानी—अच्छी तरह खौलते पानी में कैफीन टैनिक एसिड की अपेक्षा अधिक घुलनशील है। इसलिये पत्तियों के ३ मिनट तक खौलते पानी में पड़े रहने से कुल कैफीन छूट आता है और कुछ टैनिक एसिड भी। परन्तु इससे देर तक रहने से टैनिक एसिड अधिक छूट आता है जो बहुत ही हानिकारक होता हैं। इसलिये पत्तियों को ३ मिनट से अधिक खौलते पानी में कदापि न रहने देना चाहिये। छानने के पहले या पीछे दूध मिलाकर १-२ मिनट रक्खे रहने से कुछ और टैनिक एसिड तलछट में बैठ जाता है और चाय कम हानिकारक हो जाती है। चाय को मलकर कभी न छानना चाहिये।

चाय गहरी, बड़े बड़े घूंट में और खाली पेट कभी न पीना चाहिये, और न गरिष्ठ भोजन जैसे मांस, पक्वान इत्यादि के साथ या पीछे पीना चाहिये अन्यथा यह मन्दाग्नि, अनपच, कब्ज और वायु की शिकायत पैदा कर देती है। खाने के बीच बीच में पीने की अपेक्षा अन्त में पीना अधिक उपयोगी है। गहरी चाय के इस्तेमाल से धड़का, कंपकंपी, सुस्ती, नींद का उचाट, मन्दाग्नि, पेट का फूलना आदि रोग हो जाते हैं। बच्चों के लिये यह एक अति हानिकारक पदार्थ है बल्कि उनके स्नायु-मण्डल के लिये विष तुल्य है।

चाय सब से अच्छी छोटी समूची पत्ती की होती है, बड़ी पत्ती का चूरा नहीं।

काफी—चाय के समान अवयव इस में भी होते हैं और फायदा भी वही होता है। लेकिन यह चाय से कम हानिकारक होती है। इसमें चाय के बराबर कैफीन होने पर भी इस का कैफीन उतना हानिकारक नहीं पाया गया। यह चाय की अपेक्षा हृदय और श्वास में कम तेजी पैदा करती है। सांस के साथ कार्बोनिक एसिड गैस की मात्रा अधिक निकालती है और गुर्दे पर असर करती और पेशाब साफ लाती है। यह भी श्वेतसार के पाचन में बाधा डालती है परन्तु चाय से कम।

इनके अतिरिक्त गांजा, भांग, अफीम, चरस आदि भी बड़े ही हानिकारक पदार्थ हैं जिनसे बचना पूर्ण स्वास्थ्य के लिये आवश्यक है।

भाग ५

३४—सर्वोत्तम प्रकार का भोजन

भोजन के सर्वोत्तम पदार्थ क्या हैं इस सम्बन्ध में हम नीचे डा० साईमन्ड्स के शब्द उद्धृत करते हैं :—

"भोजन के जिस सिद्धान्त की सिफारिश इस विश्वास के साथ की जा सकती है कि वह जाति के शारीरिक योग्यता बढ़ाने में बहुत कुछ सहायक होगा बहुत सरल है, और उस पर कार्यकारी होने में किसी बड़े त्याग की आवश्यकता नहीं है। इसमें केवल भोजन के उन समस्त सिद्धान्तों और प्रथाओं से जो मनुष्य के अनुभव द्वारा परखे जा चुके हैं और पूरे उतरे हैं उत्तम बातों का ले लेना है।"

"......सर्व-प्रथम और अति महत्वपूर्ण सिद्धान्त यह है कि गोशाला पदार्थों का इस्तेमाल बढ़ा दिया जाय, औरलग-भग १ सेर दूध प्रत्येक प्राणी खाय यही विशेषता है। प्राचीन और अर्वाचीन अनुन्नत जातियों की जिसने उन्हें शारीरिक स्वास्थ्य में श्रेष्ठ बना रक्खा है।"

"दूसरा सिद्धान्त यह है कि हरी पत्तियों का उपयोग बढ़ा

दिया जाय क्योंकि इनमें कुछ ऐसे गुण पाये जाते हैं जो सिवाय इनके अन्य किसी भी पदार्थ में नहीं पाये जाते। इन्हीं गुणों के कारण यह गरीब एशिया-निवासियों के लिये "रक्षक भोजन" माना जाता है। प्रतिदिन इनके काफ़ी मात्रा में खाये जाने से केवल यही नहीं होता कि वह पौष्टिक अंश जो अनाज, धरती के नीचे की तरकारी और माँस में नहीं होते, शरीर में आ जाते हैं; बल्कि इससे शौच साफ होता है और आँतें गन्दगी रहित रहती हैं। यह काम दूध भी करता है। पेट में जाने के बाद वहाँ इसमें वे बेक्टीरिया बढ़ते हैं जो बाहर इसे दही के रूपमें बदल देते हैं और ये पेट के उन बेक्टीरियों को मारते हैं जो पेट में अनपचे भोजन को सड़ा कर अति हानिकारक पदार्थ पैदा करते हैं।"

"एक तीसरा बहुमूल्य सिद्धान्त भी ध्यान में रखना चाहिये। प्रति दिन कुछ न कुछ कच्ची शाक-भाजी अवश्य खाई जाय।"

"यदि ये साधारण सिद्धान्त व्यवहृत किये जायँ तो किसी भी अनाज के खाने से पूर्ण आहार की मुख्य आवश्यकताएँ पूरी हो जायँगी"

"उत्तम स्वास्थ्य की नेह गर्भकाल तथा शैशवकाल में पड़ती है। इसलिये गर्भवती स्त्री तथा दूध पिलाने वाली माता के आहार पर जितना जोर दिया जाय कम है। सयानी में हम अपने बच्चों

को कोई भी ऐसी वस्तु नहीं दे सकते जो उनके उस शारीरिक गठन के अमूल्य दान की बराबरी कर सके जिसके ही द्वारा वे अपना जन्माधिकार, शारीरिक स्वास्थ्य, प्राप्त कर सकते हैं। समाज को अपनी कुशलता अपने बच्चों की कुशलता से परखना चाहिये।"

—साइमंड्स

३५—भोजन का परहेज

हमारे प्रत्येक इन्द्रिय में अपने अपने काम करने की शक्ति ईश्वर-दत्त है। हमारा कर्तव्य केवल इतना है कि हम औचित्य को स्थान में रखते हुये उस शक्ति का ह्रास न होने दें, बल्कि उससे बराबर काम लेकर उसको बढ़ावें। हमारी आँख, नाक, कान, पेट आदि सब इसी नियम और कर्तव्य के आधीन हैं। अतः जिस प्रकार हाथों से हर प्रकार का काम करके उसकी शक्ति बढ़ाई जाती है उसी प्रकार पेट से भी हर प्रकार की पोषक चीज पचा कर उसकी शक्ति बढ़ाना चाहिये। आरम्भ में थोड़े बहुत कष्ट की सम्भावना अवश्य रहेगी परन्तु जैसे गिर गिर पड़ने के कारण बच्चे को चलने से नहीं रोका जाता वैसे ही कभी कभी के विकार के कारण परहेज को जीवन के नियम बनाने की जरूरत नहीं। परन्तु जैसे अपनी शक्ति से अधिक और कुसमय अन्य किसी भी काम से बचना चाहिये वैसे ही अधिक, विकृत और कुसमय खाने से भी बचना चाहिये। परन्तु इस एहतियात की ओर विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता है क्योंकि अन्य इन्द्रियों की रुचि-अरुचि की सुनाई तो तुरन्त हो जाती है लेकिन जीभ के मारे पेट की कोई खबर ही नहीं लेता। स्वाद

मिले चाहे पेट पचा सके या न पचा सके कुछ परवाह की बात नहीं है।

क्यों हमें सभी चीजें खाना चाहिये इसका कारण और भी है। भिन्न भिन्न पदार्थों में भिन्न भिन्न अंश भिन्न भिन्न मात्रा और अनुपात में होते हैं। अतः सभी चीज खाने वालों के शरीर में सभी अंश आवश्यक मात्रा में पहुँच जाते हैं।

थोड़ी मात्रा में और कभी कभी खाने से मिर्चा पाचन के लिये हितकर है। इसमें विटामिन ए होता है इसलिये अन्य आवश्यकताओं को भी पूरी करता है। इसी प्रकार थोड़ी मात्रा में खटाई आंतों को उत्तेजित करके और पेट में पाचक रस बनने में सहायता देकर पाचन को शुद्ध करती है। बरसात में विशेषकर उपयोगी होती है। तेल घी से अधिक गरम अवश्य होता है परन्तु किसी हद तक उसकी जगह ले सकता है। गुड़, विशेष कर पुराना, चीनी की अपेक्षा अधिक उपयोगी होता है। इसमें विटामिन बी होता है। अतः यह पाचन के लिये बड़ा उपयोगी है। डाक्टर प्लिमर ने लिखा है—"सफेद चीनी के साथ साथ संसार में केन्सर (आंत का फोड़ा) भी बढ़ता जा रहा है।" अतः जैसे मैदे की जगह आटा अधिक उपयोगी है वैसे ही चीनी की जगह गुड़ अधिक उपयोगी है।

चीजों के गरम ठंढे होने का भी खयाल परहेज का मुख्य कारण है। अतः यह जानने की आवश्यकता है कि यह गर्मी, ठंढक चीज क्या है।

ऊपर बतलाया जा चुका है कि प्रत्येक खाद्य पदार्थ के शरीर में जलने से गर्मी छूटती है। यह उष्णता किसी चीज में कम है और किसी में ज्यादा। जिनके ऑषदीकरण से जितनी ही ज्यादा उष्णता निकलती है वे उतनी ही गरम मानी जाती है और जिनमें जितनी कम वे उतनी ही ठंढो मानी जाती हैं।

साधारण बोली में इसके अर्थ निम्नलिखित हैं। (१) जिन पदार्थों में जल का भाग अधिक होता है वे ठंढे माने जाते हैं (२) जो पदार्थ अपने चरपरेपन के कारण मुँह और आँतों में उत्तेजना पैदा करते और प्यास बढ़ाते हैं वे गरम माने जाते हैं। (३) जो पदार्थ रक्त में ऑषदीकरण बढ़ाते हैं, जैसे लोहे आदि की भस्म, वे गरम माने जाते हैं (४) जिन पदार्थों में प्रोटीन अधिक होता है वे भी गरम माने जाते हैं क्योंकि प्रोटीन का गुण शरीर को उत्तेजित करने का है (५) जो पदार्थ उत्तेजक होते हैं जैसे मांस, वे भी गरम मान जाते हैं। कच्चे लेहसुन में या प्याज मे जो उडन-शील तेल होता है वह भी उत्तेजक होता है। पका देने से यह उड़ जाता है।

खाने के परहेज के सम्बन्ध में बात, पित्त और कफ की तीसरी समस्या जानने योग्य है :

बात—इस रोग के रोगी का रक्त, कम से कम स्थानीय रक्त, काला देखने में आता है। मसूढ़े से बादी रक्त काला निकलता है और बाई के पीड़ा-स्थान से जोंक से रक्त काला निकलता है। इससे यह प्रगट होता है कि बात रक्त-विकार के कारण उत्पन्न

रोग का नाम है। परन्तु पेट फूलने को भी बादी कहते हैं जो पाचन की खराबी से होता है। अतः बात रोग पाचन और रक्त दोनों से सम्बन्ध रखता है।

इसके अतिरिक्त कुछ पदार्थों में ऐसे देरपच तत्व होते हैं जो रक्त और पाचन विकार पैदा करते हैं। कटहल, कुम्हडा, मटर आदि ऐसे पदार्थ हैं। साधारणतया यह देखा जाता है कि परिश्रमियों के शरीर में बादीपन नहीं रहता। भैंस का दूध भारी होने के कारण साधारण लोगों के लिये बादा होता है परन्तु परिश्रमियों के लिये नहीं। बड़ी आँत का पाचन बेकटीरियों द्वारा होता है और जैसे सना हुआ आटा देर तक रखे रहने पर फूलता और सड़ता है वैसे ही पेट के अन्दर अधिक अथवा देरपच भोजन के साथ होता है। दुर्बल पाचन में फोकदार चीजे जैसे साग भी वायु पैदा करती हैं।

रक्त में बादीपन के मुख्य दो कारण हैं (१) अहार में विटामिनों की कमी और (२) रक्त में औषदीकरण की कमी।

(१) विटामिनों के अभाव में शरीर की नसें पुष्ट नहीं बनतीं। इसलिये वे अपना काम भली भाँति नहीं कर सकतीं। बल्कि उनमें सूजन, पीड़ा, आदि अनेकों कष्ट आये दिन लगे रहते हैं।

(२) औषदीकरण की कमी के कारण आहार का वसा और कर्बोज भली प्रकार जलता नहीं बल्कि अधजला ही शरीर में इकट्ठा हो जाता है। इसी को बादी की मोटाई कहते हैं। यदि विटामिन बी की कमी के कारण रक्त केशिकायें कमजोर हुई

और इस कमज़ोरी तथा व्यायाम की कमी के कारण रक्त में तेजी न हुई तो औषदीकरण कम हो जाता है और इस अपूर्ण औषदीकरण के कारण उत्पन्न कार्बोनिक एसिड गैस नामी हानिकारक गैस तथा अन्य विषैले पदार्थ वहीं के वहीं पड़े रहते हैं, फेफड़े तक आकर शरीर से बाहर नहीं निकल पाते। इसके अतिरिक्त आक्सीजन भी पर्याप्त मात्रा में रक्त के साथ अन्दर नहीं जा पाती और वहाँ के प्रतिदिन के साधारण तथा इस विषैली वायु के कारण बढ़े हुये सड़न को दूर नहीं कर सकती। इस सबका नतीजा यह होता है कि रक्त में कूड़ा-कचरा की मात्रा बढ़ती जाती है जो कार्बोनिक एसिड गैस का साथ पाकर क्षीण स्नायु और सेलों को और भी रोगी कर देती है। इसी विषैले वायु की चाल को जो भीतर ही भीतर घूमा करती है रेयाह अथवा बाई कहते हैं।

प्रोटीन की खराबी भी बात रोग का कारण होती है। बहुत से प्रोटीनों के साथ यूरिक एसिड, क्रीटनिन आदि विषैले पदार्थ पाये जाते हैं। यदि पाचेनन्द्रिय दुर्बल हुई, रक्त में आक्सीजन कम पहुँचा अथवा रक्त में तरलता की कमी के कारण या व्यायाम की कमी के कारण उनका औषदीकरण भली प्रकार न हुआ तो वे रक्त को दूषित करते हैं, और रोग के कारण बनते हैं। सेम, मटर, कुम्हड़ा आदि इसी कारण बादी होते हैं।

यदि खान-पान में यह त्रुटियाँ न हों, भोजन खूब चबा कर

किया जाय और रक्त में ओषदीकरण पूर्ण रूप से हो तो बादीपन के दर्शन भी दुर्लभ हो जायँ। वही भैंस का दूध, कटहल, कुम्हड़ा आदि पदार्थ जो आराम तलबों को बादी करते हैं परिश्रमियों के शरीर में कोई भी विकार नहीं पैदा करते।

बहुधा यह विकार मसूढ़े, पैर की अँगुली, अँगूठे आदि दूर-स्थित अंगों से शुरू होता है और विशेष कर बुढ़ापे में तथा मद्य-मांस खाने और चारपाई की करवटें बदलने वालों को। इससे भी यही मालूम होता है कि जिनके और जहाँ के रक्त में कम दौरा होता है और विषैले पदार्थ अधिक जाते हैं उन्हीं के पास और वहीं यह रोग पहले पहुँचता है। यदि ध्यान से देखा जाय तो उत्तम प्रोटीन वाले विटामिन-परिपूर्ण तथा क्षार-प्रधान आहार खाने, और घाम में रहने, पर्याप्त मात्रा में जल पीने और काफ़ी परिश्रम करने वालों को यह रोग नहीं होता। परन्तु खाना कम खाने परन्तु परिश्रम अधिक करने वालों को भी बहुधा बुढ़ापे में यह रोग हो जाता है। कारण यह है कि ऐसी अवस्था में शरीर के आवश्यक अंशों के न पहुँचने के कारण शरीर के कोषाणु टूट टूट कर शरीर की आवश्यकता पूरी करने लगते हैं। इस क्रिया में वे विषैले पदार्थ जो रोग उत्पन्न करते हैं पैदा हो जाते हैं और शक्ति की दुर्बलता के कारण निकल नहीं पाते।

पित्त—यह पाचनेन्द्रिय का एक मुख्य पाचक रस है जो हर समय यकृत से निकला करता है और खाये हुये पदार्थों से मिल

कर उनको पचाया करता है। इसकी अधिक उपयोगिता वसा के पचाने के लिये है। पित्त की कमी में मल काला, मात्र —में अधिक, चिकना, क़ब्ज़ के साथ और बदबूदार होता है। वसा से फ़ाजिल पित्त आँतों में जाकर उन्हें उत्तेजित करता है और उन्हें प्रोटीन के पचाने के योग्य बनाता है और रेचक गुण रखने के कारण दस्त साफ़ लाता है। अधिक पित्त रक्त में प्रवेश करके फिर यकृत में आकर काम करता है। मन्दाग्नि, क़ब्ज़ और रक्तहीनता शरीर में पित्त की कमी ही के कारण होते हैं।

परन्तु पित्त की अधिकता भी उतनी ही हानिकारक है जितनी कमी। रक्त-पित्त, आँखों में जलन, सर में भारीपन, मतली, पेशाब में जलन और पीलापन आदि अनेकों व्याधियाँ पित्त की अधिकता से हो जाती हैं।

पित्त उत्पन्न करने का गुण प्रत्येक खाद्य पदार्थ में होता है, परन्तु किसी में कम, और किसी में ज्यादा। प्रकृति का यह साधारण नियम है कि जिस चीज़ के पचाने के लिये जिस मात्रा में जिस रस की आवश्यकता होती है उसमें उसके पैदा करने की उतनी ही शक्ति भी होती है। इस लिये जिस पदार्थ में जितना ही अधिक वसा और प्रोटीन होगा वह उतना ही पित्त-कारक होगा। जैसे तेलहन, गरीदार मेवे, दाल के अनाज इत्यादि। इनके पचने से पित्त का नाश भी होता है। इसी नियमानुसार कर्बोज तथा कर्बोज-प्रधान पदार्थों में पित्त पैदा करने की शक्ति नहीं के समान होती है। अतः बहुत अधिक मीठा खाने वाले को पित्त की

कमी हो जाती है। खट्टे और तीखे, पदार्थ भी पित्त कारक होते हैं क्योंकि यह यकृत को उत्तेजित करते हैं और पित्त के अवयव भी इन में होते हैं। दूसरे जल्दी जल्दी और गरिष्ठ भोजन करने और क़ब्ज़ रहने के कारण बहुधा पाचन बिगड़ जाता है, आंतों की झिल्ली कुछ मोटी पड़ जाती है और पित्ताशय में सूजन आ जाती है। जिसके कारण पित्त नीचे को न जाकर ऊपर ही को लौटता है और पाण्डु रोग उत्पन्न करता है। इसलिये गरिष्ठ भोजन और क़ब्ज़ से बचना तथा प्रोटीन की मात्रा कम कर उसके स्थान पर कर्बोज, फल, शाक की मात्रा बढ़ा देना और खूब चबा चबा कर भोजन करना पित्त की अधिकता से बचने के सरल उपाय हैं। यदि पित्त विकार हो जाय तो कै, एनिमा या दस्त से पेट शुद्ध कर लेना चाहिये। नीबू और इमली पित्त की मतली में विशेष गुणकारी होते हैं क्योंकि नीबू और इमली की खटाई अम्लकारी नहीं बल्कि अन्त में क्षार बन जाती है।

प्रयोगों के आधार पर वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि पित्त का निकलना २ बजे रात से बढ़ता है और १ बजे दिन तक बराबर बढ़ता रहता है। फिर कम होने लगता है। इसलिये सबेरे का भोजन दोपहर में १२ बजे के आस पास कर लेना और रात्रि का भोजन सबेरे की अपेक्षा हलका रखना पाचन शुद्ध रहने के लिये अत्यावश्यक उपाय हैं।

क़फ—मनुष्य-शरीर में यह एक तीसरा रस है जिसका

सम्बन्ध रक्त और फेफड़े से है। कफ का थोड़ी मात्रा में निकलना स्वाभाविक है और स्वास्थ्य की पहचान है परन्तु अधिक मात्रा में निकलना रोग का लक्षण है। जब हमारे शरीर में पित्त कम होता है और भोजन में चिकनाई का अंश बढ़ जाता है या शरीर के भीतर उन तन्तुओं में कमजोरी आ जाती है जब आँतों से रक्त में आये हुये वसा को फेफड़े तक पहुँचाते हैं तब कफ की वृद्धि हो जाती है। साधारण तौर पर रोगी के फेफड़े से वैसे ही कफ निकलता है जैसे रोगी की आंख से पानी, रोगी के मुँह से लार तथा रोगी की आँत से आँव। और जैसे अधजले घी तेल से विषैला धुवाँ निकलता है वैसे ही रक्त के अधजले पदार्थों से विषैला मैल निकल कर फेफड़े में इकट्ठा होता है और यह फेफड़े को और दुर्बल कर उनमें स्वाभाविक कफ की वृद्धि करता है। इसी कारण वसा और कर्बोज-प्रधान पदार्थ कफवर्धक माने जाते हैं। इनमें भी वसा कर्बोज से अधिक कफवर्धक होता है। कफ-नाशक पदार्थ उन्हें कहते हैं जो रक्त में औषदीकरण बढ़ाते हैं, फेफड़े में पहुँचकर एकत्रित पदार्थ को ढीला कर के बाहर निकालते तथा जलाते हैं, अथवा श्वांस-नली में अपने चरपरेपन के कारण उत्तेजना पैदा कर उसे कफ निकालने में सहायता देते हैं।

यदि कफ की वृद्धि अधिक हुई और विष फेफड़े से रक्त में भी फैला तो रक्त भी दूषित हो जाता है।

कफ से बचने के उपाय तीन हैं। (१) फेफड़े स्वस्थ हों (२) रक्त में खाद्य पदार्थों का औषदीकरण पूर्णतः हो जाया करे। (३)

पाचनेन्द्रिय स्वस्थ हों, क्योंकि यकृत का काम वसा पचाने तथा आँतों को अपना काम करने में सहायता देना है, और आँतों का काम कर्वोन्न पचाना है। उक्त तीनों परिणामों के लिये आहार में लोहा अधिक होना चाहिये, उसमें विटामिन ए और बी और सी पर्याप्त मात्रा में होना चाहिये, भोजन अपनी शक्ति भर और खूब चबाया जाना चाहिये और दिन-चर्या में व्यायाम, शुद्ध-वायु-सेवन और परिश्रम अवश्य होना चाहिये।

३६—भोजन की मात्रा

यह पहले लिखा जा चुका है कि मनुष्य के आहार के दो भाग होते हैं, (१) ताप-वर्धक या ईंधन पदार्थ जिसमें वसा और कर्बोज शामिल हैं और (२) मांस वर्धक पदार्थ अर्थात प्रोटीन । इन में भी अधिकाँश भाग ईंधन पदार्थ का होता है। प्रोटीन की आवश्यकता नये शरीर बनने तथा प्रतिदिन की क्षति-पूर्ति के लिये होती है। अतः यहाँ हम पहले प्रोटीन की आवश्यकता पर विचार करेंगे।

प्रोटीन—इसकी मात्रा एक तौल के मनुष्यों के लिये लगभग समान ही हुआ करती है। साधारण ऊँचाई मोटाई के मनुष्य को प्रति सेर शरीर भार पर डेढ़ माशा प्रोटीन चाहिये अर्थात् डेढ़ मन के मनुष्य को ९० माशा प्रोटीन चाहिये, इसका कम से कम तिहाया भाग उत्तम प्रकार का होना चाहिये, अर्थात् दूध, दही, मांस, मछली, अंडा, पालक तथा अन्य शाकों और गेहूँ के चोकर के आटे से आना चाहिये।

आहार द्वारा प्राप्त प्रोटीन के पूर्ण रीति से न पचने के कारण रक्त में यूरिक एसिड, पोटैशियम फास्फेट आदि पदार्थ बढ़ जाते हैं और यही शरीर में थकान, आलस्य, गठिया मिर्गी, रक्त-चाप तथा मूत्राशय के रोग लाते हैं। कुछ दिनों में ये मूत्रा-

शय को भी रोगी कर देते हैं। परन्तु अगर प्रोटीन कम खाया गया तो मूत्र में विषैले अंश नहीं आते और परिणाम-स्वरूप गुर्दे स्वस्थ रहते हैं, रक्त शुद्ध रहता है और शरीर अधिक फुर्तीला रहता है। यह नियम आलसी और परिश्रमी दोनों के लिये करीब करीब एक समान लागू है क्योंकि शरीर का मसाला तो दोनों को करीब करीब बराबर ही चाहिये। आलसी और परिश्रमी की आवश्यकता में भिन्नता शक्तिवर्धक पदार्थ में होती है। प्रोटीन ईंधन पदार्थ के काम में नहीं लाया जाता क्योंकि यह एक उत्तेजक पदार्थ है, इसका आधिक्य शरीर में उत्तेजना पैदा करता है जिससे शक्ति का ह्रास होता है और थकान शीघ्र आती है।

इसके अतिरिक्त शरीर की आवश्यकता से अधिक प्रोटीन पेट में सड़ता और अनेकों प्रकार के पाचन विकार पैदा करता है जिससे मल, मूत्र तथा रक्त विकार पैदा हो जाते हैं। बहुधा गठिया अथवा मूत्राशय के अनेक रोग ढलती आयु में अधिक प्रोटीन खाने के कारण हो जाते है। ऐसी दशा में ५०-५५ माशा प्रोटीन काफी होता है। कम प्रोटीन खाने के समर्थन सर होरेस फ्लेचर का मत उल्लेखनीय है।

फ्लेचर महोदय पेट के तथा अन्य अनेकों रोगों से पीड़ित रहते थे यहाँ तक कि बीमा कम्पनियों ने इनके जीवन का बीमा करने से इनकार कर दिया था। तब इन्होंने अपना आहार संभाला और कम से कम प्रोटीन पर गुजर करने लगे। भोजन भी खूब चबा कर करते। परिणाम यह हुआ कि थोड़े दिनों में यह बहुत संभल

गये और अन्त में इनका शरीर बड़ा स्वस्थ और फुर्तीला हो गया। इनके बाद इनके अन्य शिष्यों ने भी अपने ऊपर प्रयोग किया और इसी परिणाम पर पहुँचे।

इस दल वालों की राय में ४५ माशा प्रोटीन मनुष्य के लिये काफी है।

यह सत्य है कि कम प्रोटीन पर गुजर हो सकता है परन्तु बाढ़ की अवस्था में प्रोटीन की कमी कदापि न होनी चाहिये। यह कमी के विचार ढलती अवस्था के लिये हैं जब शरीर की बाढ़ नहीं होती है और पाचन दुर्बल हो जाता है। परन्तु जिस देश में लड़कपन और जवानी में उत्तम प्रकार का प्रोटीन कम मिलता है वहाँ के लोग शक्ति-हीन, पुरुषार्थहीन तथा उमंगहीन देखे गये हैं, जिनमें संक्रामक रोगों के सामना करने की शक्ति नहीं होती। अतः यह सिद्धान्त तीसरेपन के लिये और विशेष कर काम शक्ति का ह्रास चाहने वालों तथा दुर्बल पाचन वालों के लिये उपयोगी होगा। परन्तु उनमें भी कर्बोज और यदि पच सके तो कुछ वसा का उपयोग प्रोटीन की कमी पूरा करने के लिये अवश्य बढ़ जायगा नहीं तो आयु कम हो जायगी।

डाक्टर मेक्के ने भारतवासियों के आहार की जाँच करके यह लिखा है कि उसमें सब से बड़ी त्रुटि उत्तम प्रकार के प्रोटीन की है। यों तो अनाज द्वारा प्रोटीन काफी पहुँच जाता है परन्तु उत्तम प्रोटीन के अभाव में शरीर के लिये अधिक उपयोगी नहीं होता।

वसा और कर्बोज—शरीर को शक्ति देने के लिये ये दोनों चीजें चाहिये। क्योंकि जैसा लिखा जा चुका है शरीर में मुख्यतः इन्हीं के जलने से उष्णता निकलती है, और इसी गर्मी के कारण आदमी काम कर सकता है। इस उष्णांक की आवश्यकता की माप यह है:—

डाक्टर मेकर्केरिसन के मतानुसार एक उन्नतशील नवयुवक के आहार में प्रोटीन ९० ग्राम, चिकनाई ८० ग्राम और कर्बोज ४३५ ग्राम के लगभग चाहिये। इस प्रकार

प्रोटीन ९० × ४ = ३६० केलारी
चिकनाई ८० × ९ = ७२० ,,
कर्बोज ४३५ × ४ = १७४० ,,
कुल = २८२०

क्योंकि १ ग्राम (लगभग १ माशा) प्रोटीन से ४ केलारी मिलती है, १ ग्राम कर्बोज से भी ४ केलारी मिलती है, परन्तु १ ग्राम चिकनाई से ९ केलारी मिलती है।

लीग आफ नेशन्स की आहार विशेषज्ञों के कमीशन ने आवश्यक उष्णांक सम्बन्धी बयान निकाला था कि एक शीतोष्ण जलवायु में रहने वाले साधारण स्त्री पुरुष को कम से कम २४०० केलारी प्रतिदिन की आवश्यकता है। अतः ८—१०% क्षति जाने की रियाइत रख कर हम इसे २६०० केलारी भारतवर्ष के लिये रख सकते हैं। परिश्रम के साथ यह आवश्यकता भी बढ़ती जाती

है। इस आधार पर हम अपने आहार की आवश्यकता का हिसाब निम्नलिखित नियमों के आधार पर लगा सकते है।

भारत में प्रत्येक मनुष्य की जरूरत आयु और श्रम के अनुसार निम्नलिखित होती है :—

आयु	केलारी प्रति दिन
४—५	१०००
६—७	१३००
८—९	१६००
१०—११	१८००
१२—१३	२१००
१४ से ऊपर स्त्री	२१००
१४ से ऊपर पुरुष	२६००

विशेष परिश्रम करने पर :—

हल्के परिश्रम पर ७५ केलारी प्रति घण्टा अधिक
साधारण परिश्रम ७५—१५० प्रति घण्टा अधिक
कड़ी „ १५०—३०० प्रति घण्टा अधिक
बहुत कड़ी „ „ ३०० „ प्रति घण्टा अधिक

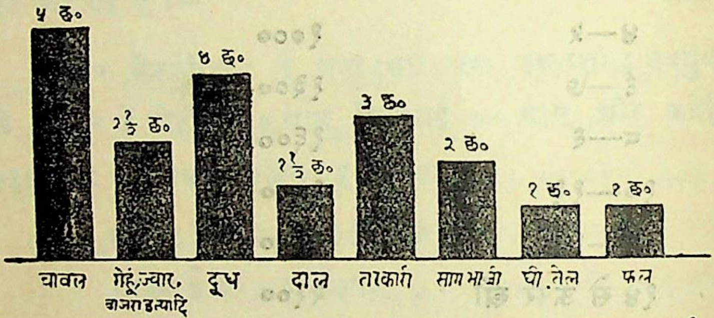
इस प्रकार परिश्रमी पुरुष को जैसे किसान को, मजदूर को या खिलाड़ी विद्यार्थियों को २८०० से ३२०० केलारी तक की जरूरत पड़ेगी।

लीग आफ नेशन्स की कमेटी की सिफारिश के अनुसार माता को २४०० केलारी चाहिये और गर्भिणी को लगभग ३०००

केलारी चाहिये। यद्यपि भारतवर्ष की स्त्रियों के लिये यह अधिक है परन्तु आवश्यकता का अनुमान मालूम हो जाता है।

सन्तुलित भोजन के नक्शे

संतुलित भोजन का नकशा जो भारत सरकार की बुलिटीन नं० २३ में दिया गया है :—



चावल और गेहूँ आदि में अदल-बदल कर दिया जा सकता है इसके अवयव ये हैं :—

प्रोटीन	७३ ग्राम
चिकनाई	७४ ,,
कर्बोज	४०८ ,,
केलारी	२५६० ,,
चूना	१.०२ ,,
फासफोरस	१.४७ ,,
लोहा	.३० से .४० मिलीग्राम
विटामिन ए	७००० या अधिक अन्तर राष्ट्रीय इकाई
विटामिन बी	४०० ,, ,,
विटामिन सी	३०-५० मिली ग्राम

दूसरे संतुलित भोजन का केलारी में मूल्य

	छटाँक	औंस	प्रोटीन	चिकनाई	कबोंज	केलारी
आटा	५	१०	३९.०	५.४०	२०३.५	१०१८.३
चावल	२	४	०९.२	.३४	८९.२	०३९६.७
दाल	१½	३	१९.५	२.९७	४८.६	०३००.०
दूध	५	१०	९.४	१०.२०	१३.६	०१८०.०
हरे साग	४	८	३.१	.२४	१०.२	००५६.०
जड़ की तरकारी	२	४	२.२	.१८	१५.९	००७४.०
फल (आम, केला इत्यादि)	२	४	.७४	.२०	२०.८	९२.०
चीनी, गुड़	½	१	०	०	२८.३	११२.०
घी	½	१	०	२३.१०	०	२०८.०
तेल	½	१	०	३४.६०	०	२५२.०
मांस	१	२	११.९४	३.९६	०	८४.०
अंडा (एक)	½	१	३.७९	२.९७	०	४२.०
	२४½	४९	९८.८७	८४.१६	४३०.१	२८१५

जो मांस और अंडा न खाते हों वह इतने हो दामों का अथवा १ पाव दूध अधिक खायें। २½ छटाँक दूध में इतने मांस और अंडे के समान शक्ति है।

परिश्रमी के लिये जैसा ऊपर लिखा जा चुका है अधिक केलारी की जरूरत होती है। संतुलित आहार के उक्त नकशे में कुछ परिवर्तन करके यह जरूरत पूरी की जा सकती है। अनाज की मात्रा ७ छटाँक से बढ़ाकर १० छटाँक कर दी जाय, तेल १ या

१½ तोला बढ़ा दिया जाय। गुड़ की मात्रा बढ़ा दी जाय। गरीबी के कारण आजकल सारी कमी घी, तेल के अभाव में केवल अनाजों से पूरी की जाती है।

मजदूर के संतुलित भोजन की मात्रा नीचे दिये नक्शे के अनुसार भी हो सकती है;

अनाज गेहूँ, चावल, चना, मटर, आदि	१०—१२	छटांक
दाल	२	,,
हरे शाक	२	,,
अन्य तरकारियाँ	४	,,
फल या कच्ची तरकारियाँ	३	,,
तेल, घी	१	,,
गुड़	१½	,,

इससे भी अधिक शक्ति की जरूरत हो तो तेल, घी, गुड़, मूंगफली, तिल, अलसी आदि बढ़ा देना चाहिये। सम्भव हो तो २ छटांक अनाज ही बढ़ा दिया जाय।

"मजदूर अक्सर दोपहर के खाने के लिये अपने काम पर से घर नहीं जा सकते, इसलिए मजदूर अपने साथ चने का सत्तू बांध कर ले जाते हैं। इसमें पोषण की सब जरूरी चीजें नहीं पाई जातीं परन्तु वह सब अच्छाइयाँ मिस्सी रोटी में मिलती हैं। इनके बनाने की तरकीब नीचे दी हुई है—

गेहूँ का आटा	५ छटांक
बेसन	१½ छटांक

प्याज	२ तोले (आधी छटांक से कुछ कम)
दूध	½ छटांक
मेथी का या अन्य साग	१¼ तोला
नमक	¼ छटांक
घी या तैल	½ तोला या कुछ ज्यादा

सिवाय घी के बाकी सब चीजों को मिला कर लोई बना ली जाय और उसकी मोटी मोटी रोटियाँ पका ली जायँ और उन पर तेल चुपड़ लिया जाय। अगर ताजा दूध न मिल सके तो उसकी जगह खोया लोई में मिला लिया जा सकता है। इस खुराक का वजन करीब आध सेर होगा। अगर मुमकिन हो तो उसमें दूध बढ़ा दिया जाय या मांसाहारी के लिये एक अंडा उसमें और मिला दिया जाय। इस तरह तैयार की हुई मिस्सी रोटी से करीब १४०० कैलोरी गर्मी मिल सकती है और करीब एक छटांक के खालिस प्रोटीन। इसे पत्ते, या कागज में लपट कर सरलता से ले जा सकते हैं।" ("हम क्या खायें" से)

एक परिवार की आवश्यकता के अनुसार भोजन की मात्रा तय करने के लिये बालकों की आयु को जोड़ कर सायानों के मूल्य में बदल लेना चाहिये। जैसे यदि एक परिवार में २ सायाने और ३ लड़के हैं जिनकी आयु १०, ८ और ६ वर्ष की है तो इसका जोड़ २४ वर्ष हुआ, पूरी मात्रा १५ वर्ष के पुरुष की मान कर यह १·६

हुये। इस प्रकार ३·६ प्राणी कुल हुये। इनकी दैनिक केलारी की आवश्यकता २६००×३·६ हुई। घर में प्रतिदिन के खर्च से यह मालूम हो सकता है कि प्रति व्यक्ति कितने केलारी पड़ता है। मान लिया कुल खाद्य पदार्थों में ७५०० केलारी आता है। अर्थात् प्रति व्यक्ति पीछे २००० केलारी हुआ। यह आवश्यकता मात्रा से कुछ कम है। यह कमी पूरी की जानी चाहिये।

साधारणतया सन्तुलित भोजन महँगा पड़ता है इस लिये कम हैसियत के लोगों के लिये यह सम्भव नहीं। परन्तु कुछ सुधार फिर भी किया जा सकता है। असली दूध की जगह मखनिया दूध इस्तेमाल किया जा सकता है। घी की जगह तेल से काम लिया जा सकता है। अनाजों में मिल का कुटा चावल कम करके जुआर बाजरा या भुजिया चावल भी खाया जा सकता है। मूँगफली का भी सेवन अधिक किया जा सकता है, परन्तु बहुत अधिक मूँगफली पचती नहीं। सस्ते साग जैसे चौलाई, सहजन का पत्ती आदि उतनी ही उपयोगी होती है जितनी महँगी सलाद इत्यादि। फल में टमाटर, केला, पपीता सस्ते और उपयोगी दोनों होते हैं। जिनके थोड़ी भी जमीन हो वे इन्हें अपने ही यहाँ उपजा सकते हैं।

भोजन की मात्रा के सम्बन्ध में तौल नाप के आंकड़ों के अतिरिक्त निम्नलिखित साधारण बातों पर भी ध्यान रखना चाहिये।

(१) कुल प्रोटीन एक ही चीज से न लेकर कई पदार्थों से

लेना चाहिये। इसलिये निश्चित अनाज जैसे रोटी, दाल, चावल, और तरकारियाँ अदल-बदल कर खाना चाहिये।

(२) आहार में उत्तम प्रोटीन अवश्य होना चाहिये। इसलिये सयानों के लिये कम से कम ½ सेर दूध और बच्चों के लिये १ सेर दूध प्रतिदिन चाहिये।

(३) आटा चोकरदार और चावल हाथ का कुटा हो तो उसके लवण और विटामिन नष्ट नहीं होते।

(४) चिकनाई में आधा घी होना चाहिये। या अगर इतना घी न मिले तो तेल ही खाया जा सकता है। परन्तु कम खाया जाना चाहिये और विटामिन के लिये दूसरी चीजें विशेष कर कच्चा शाक खाना चाहिये।

(५) साग-भाजी और फल, मांस और दाल का कम से कम चौगुना होना चाहिये। भोजन का क्षार-प्रधान होना भी अति आवश्यक है। कुछ कच्चे साग तथा अन्य तरकारियाँ जैसे मूली धनिया, सलाद आदि भी होना आवश्यक है।

(६) फल में अंगूर अनार ही नहीं जरूरी हैं। केला, पपीता आम, अमरूद, जामुन, शरीफा, नींबू, इमली, तरबूज, आंवला, टमाटर, ककड़ी आदि भी फल ही हैं।

(७) साधारण भोजन की मात्रा की यह पहचान होना चाहिये कि बिना अधिक थकान आये समय पर भूख लगे। अगर भूख के साथ अधिक थकान आ जावे तो आहार में वसा बढ़ा देना चाहिये और यदि भूख के पहले कमजोरी मालूम हो तो

शर्करा—गुड़, चीनी, मिश्री, शहद—बढ़ा देना चाहिये। छोटे बच्चों और बढ़ते हुये नवयुवकों के भोजन में उत्तम प्रोटीन के अतिरिक्त कर्बोज और वसा काफ़ी होना चाहिये जिसमें उन्हें अधिक थकान न आवे। नहीं तो प्रोटीन शरीर को शक्ति देने के काम आता है और बाढ़ रुक जाती है।

(८) भोजन में शर्करा कम से कम होना चाहिये। इसकी जगह श्वेतसार से भरना चाहिये क्योंकि शर्करा की अपेक्षा श्वेतसार कम हानि करता है। अतः चीनी, गुड़, खाने की जगह अनाज ही से इसकी पूर्ति करना चाहिये। साधारण मनुष्यों को अलग से गुड़, चीनी की ज़रूरत ही नहीं है। ये आवश्यक उनके लिये है जो अपने साधारण भोजन के हिसाब से परिश्रम अधिक करते हैं।

(९) अगर वसा भली प्रकार न पचे तो उसे कम करके उसकी जगह कर्बोज़ बढ़ा देना चाहिये।

(१०) भोजन की मात्रा पूरी भूख से कुछ कम होना चाहिये। अधिक भोजन अच्छी तरह नहीं पचता, पाचन शक्ति को बिगाड़ता है और परिणाम-स्वरूप जीवन को कम उपयोगी और आयु को कम करता है। अधिक भोजन के दुष्परिणाम उपवास से संभाले जा सकते हैं।

(११) सोडा डालकर पकाने से विटामिन मर जाते हैं।

(१२) साग-भाजी जिस पानी में पकाये जाय उसे फेंकना न चाहिये।

संतुलित भोजन और ऋतु—आवश्यक आहार की मात्रा पर जलवायु और ऋतु का भी प्रभाव पड़ता है। सर्दी में मात्रा बढ़ जाती है और गर्मी या बरसात में कम हो जाती है। इसका कारण यह है :—मनुष्य के अन्दर की गर्मी जाड़ों में बाहरी ठंडी वायु के सम्पर्क से कम हुआ करती है। अतः उस कमी की पूर्ति करने के लिये भी मनुष्य को खाना पड़ता है।

दूसरे यह कि ठंडक में मनुष्य के अधिक काम करने से अधिक शक्ति व्यय होती है जो उसे आहार से पूरा करना पड़ता है। ठंडे देशों के लोग अधिक परिश्रमी होते हैं और अधिक खाते भी हैं। अमेरिका और भारत के जलवायु के अन्तर को देखते हुये अमरीका में १०% केलारी की मात्रा अधिक होती है।

जलवायु नम होने का भी ऐसा ही प्रभाव पड़ता है। हवा नम होने से फेफड़े में जारण पूर्णरूप से नहीं होती। अतः पाचन भी शिथिल हो जाता है। बरसात श्वांस तथा पाचन सम्बन्धी रोगों के लिये हानिकारक है। इसलिये भोजन की मात्रा भी घट जाती है।

३७—आहार और रक्तवर्द्धन

रक्त ही से सारा शरीर बनता है। आहार पचने के पश्चात प्रोटीन, कर्बोज, वसा और लवण सब आँतों के छिद्रों द्वारा रक्त में पहुँच कर इसी के साथ चक्कर लगाते हुये सारे शरीर में फिरते हैं और जहाँ जिनकी आवश्यकता होती है वहाँ वे उसे पूरी करते हैं। रक्त को एक प्रकार का चलता-फिरता बाजार समझना चाहिये। यह अपने साथ शरीर के समस्त उपयोगी तत्वों को लिये फिरा करता है। रास्ते में जिसको जिसकी आवश्यकता होती है उसको वह पदार्थ दे देता है और जिसके पास अनुपयोगी पदार्थ होते हैं उन्हें ले लेता है और उन्हें लाकर फेफड़े में शुद्ध कराकर और उपयोगी रूप में बदलाकर फिर फेरी में निकल जाता है। इसी लेन-देन अदला-बदली की क्रिया द्वारा यह शरीर को जीवित और बलिष्ठ बनाये रखता है। यदि यह उपयोगी अवयवों को न पहुँचा सका या उन विषैले अंशों को जो कुपथ्य भोजन या फेफड़े में सफाई न हो सकने के कारण पैदा हुआ करते हैं और जिन्हें सेलों ने बाहर फेंक दिया है न हटा सका तो शरीर क्षीण और रोगी होने लगता है और मनुष्य अल्पायु होकर शीघ्र मर जाता है।

रक्त में दो विशेष प्रकार के सेल होते हैं, एक लाल और

दूसरे सफ़ेद। इन्हीं लाल सेलों के कारण रक्त लाल रंग का होता है। लाल सेल का काम है शरीर के भाग बनाना और सफ़ेद का काम है रोगों के कीटाणुओं का मुक़ाबिला करना। इन लाल सेलों की जिन्दगी ३० दिन की होती है और ३ से ५ फी सदी प्रति दिन मरा करते हैं। अब यदि इन मरे हुये सेलों की जगह पर नये सेल न बनें तो रक्तहीनता हो जाती है। बहुधा रक्तहीनता के कारण निम्नलिखित हैं :—

(१) अधिक रक्त का निकल जाना।

(२) शुद्ध पाचन में बाधक रोग जैसे आँव, संग्रहणी, प्लीहा, यकृत, कृमि आदि रोग।

(३) रक्त बनने में बाधक रोग जैसे सूखा, घेरा तथा तिल्ली और गुर्दा सम्बन्धी रोग।

(४) संक्रामक रोग जैसे क्षयी आदि।

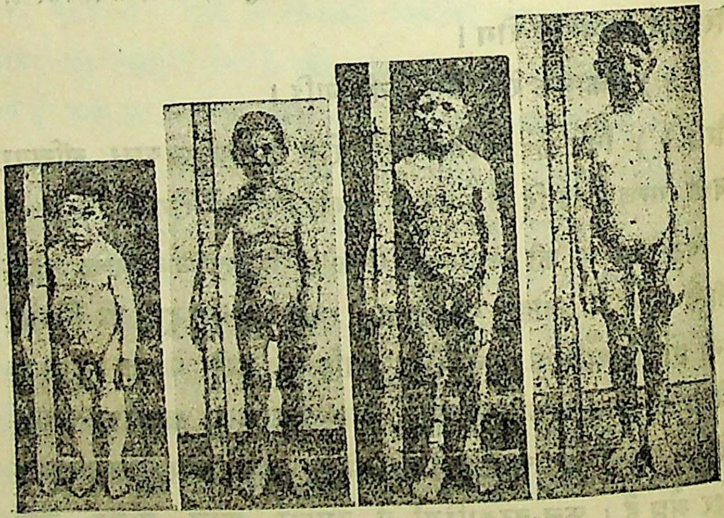
और (५) विष के कारण आये रोग जैसे अशुद्ध पारा, संखिया कुचला, गन्धक आदि के सेवन के कारण पैदा हुये रोग।

विटामिन ए की उपस्थिति में लोहे में रक्तवर्धन शक्ति बहुत होती है। दूध में लोहा कम होता है अतः केवल दूध पर निर्वाह करना हो तो अधिक दूध पीना चाहिये। शरीर में रक्त बढ़ाने के लिये शाक, फल-तरकारियों और चोकरदार आटा का सेवन करना चाहिये। शाकों में चना, चौलाई, मेथी, सरसों और पालक क्रमानुसार श्रेष्ठ है। फल-तरकारियों में टमाटर, आलू, गाजर, सूखे मेवों में खूबानी, मुनक्का, किशमिश और माँस में अंडा, कलेजी,

गुर्दा आदि विशेष भाग अधिक रक्तवर्धक होते हैं। परन्तु आहार में विटामिन ए की कमी न हो।

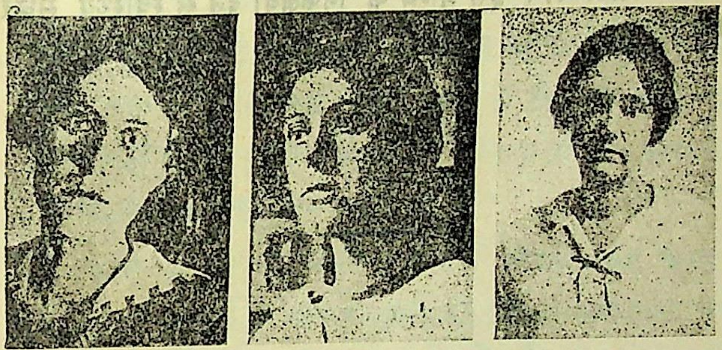
वैज्ञानिकों के मतानुसार वृक्षों के हरे अंश के और खून के तत्व एक ही हैं। शरीर में जाकर यह हरा भाग खून बनाता है।

रक्त के लाल सेल बनाने में सूर्य-प्रकाश और वायु की आक्सीजन का भी विशेष प्रभाव पड़ता है। अनुमान है कि केवल १० मिनट के सवेरे के प्रकाश से यह लाल सेल सवाया बढ़ जाते हैं और सफेद तिगुना। इसके अतिरिक्त स्वांस द्वारा अन्दर गई हुई आक्सीजन रक्त के टूटे फूटे सेलों को निकाल देती है और



१०½ ११½ १२½ १३½

शेष के विषैले भाग को जला कर उन्हें शुद्ध कर देती है। यही कारण है कि शुद्ध (आक्सीजन-युक्त) वायु और सूर्य-प्रकाश से वंचित रहने वाले व्यक्ति पीले पड़ जाते हैं और न तो उनके शरीर में बाढ़ होती है और न वे रोगों का मुक़ाबिला ही कर सकते हैं।



घेघा की ग्रन्थि (thyriod gland) के शिथिल पड़ जाने, तेज काम करने या बढ़ जाने का भी प्रभाव रक्त पर पड़ता है। यह ग्रन्थि शरीर में आयोडीन का केन्द्र है। जब आयोडीन की कमी के कारण यह मोटी पड़ जाती है तब घेघा निकल आता है। शिथिल पड़ जाने से शरीर की बाढ़ मारी जाती हैं, बुद्धि मन्द पड़ जाती है और चमड़ा मोटा हो जाता है। इसका उपाय है कि बाहर से इस ग्रन्थि का रस दिया जाय। बच्चों में इस रोग की ओर ध्यान रखना चाहिये। इसके लिये डाक्टर की राय लेनी पड़ेगी।

पिछले दो चित्र इस ग्रन्थि के शिथिल और तीव्र होने के है। छोटे लड़के की यह ग्रन्थि शिथिल थी। बाहर से इस ग्रन्थि के रस देने के तीन वर्ष में शरीर की बाढ़, चेहरे पर चैतन्यता और खाल में पतलापन आ गया।

दूसरे चित्र में बाईं ओर की स्त्री की यह ग्रन्थि बहुत तेजी से रस निकालती थी। इस ग्रन्थि के निकलवा देने से स्वास्थ्य सुधर गया।

३८—विशेष अवस्थाओं में आहार

गर्भिणी का आहार—माता के आहार का प्रश्न एक बड़ा महत्वपूर्ण प्रश्न है क्योंकि वह एक ही पेट में दो के लिये खाती है। दुगना की कौन कहे पुरानी मात्रा के लिये भी उसके पेट में जगह नहीं बचती। अतः भोजन की उत्तमता ही इस अवस्था की आवश्यकता को पूरी कर सकती है।

उत्तम भोजन उसे कहते हैं जिसका प्रोटीन उत्तम प्रकार का हो, जिसमें अधिक से अधिक लवण हों, जिसमें वसा उत्तम प्रकार का हो, जिसमें मीठा की मात्रा कम हो और जिसमें विटामिन, पर्याप्त मात्रा में हो। शुरू गर्भ में—चौथे मास तक—बच्चे की बाढ़ बहुत तेज नहीं होती। इसलिये साधारण से अधिक भोजन यदि (पच गया तो) माता ही के शरीर को फुलाता और बच्चे की बाढ़ को रोकता है। परन्तु पाँचवें मास से बच्चे की बाढ़ तेजी से होने लगती है। इस लिये उस समय से उत्तम खाद्य पदार्थ जैसे घी, दूध, बादाम, रूखे मेवे, ताजे फल और हरे शाक का सेवन अवश्य बढ़ा दिया जाना चाहिये। लेकिन भोजन हलका होना चाहिये जो शीघ्र पचे और कब्ज न करे।

गर्भिणी के आहार में चारों विटामिनों का विशेष ध्यान रखना

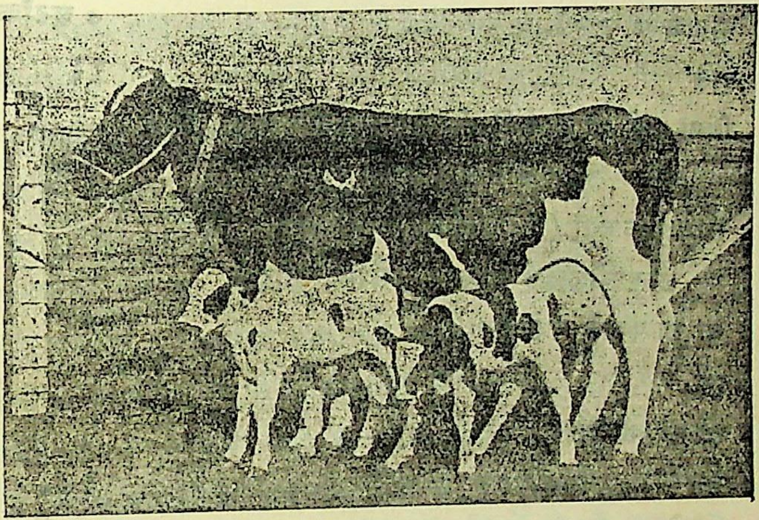
चाहिये । विटामिन ए से बच्चे का शरीर सुडौल और गठा हुआ बनता है, जिसमें कोई भी साधारण तथा संक्रामक रोग सौर में तथा उसके बाद शीघ्र असर नहीं कर पाते। नेत्र और फेफड़े खास तौर पर मजबूत बनते हैं जिनमें चेचक तक में हानि पहुँचने की सम्भावना कम रहती है और खाँसी, पसुली, आदि रोग भी बहुत ही कम होते हैं। देखा गया है कि ऊपर के दूध पीने वालों में माता के दूध पीने वालों की अपेक्षा ८५% स्वाँस मार्ग के रोग—खाँसी, पसली, दमा आदि—अधिक होते हैं और मृत्यु भी अधिक होती है। इसके अतिरिक्त इस विटामिन से स्वयं स्त्री को यह लाभ होता है कि प्रसव काल में उसको कष्ट नहीं होता और न प्रसूत आदि सौर के रोग शीघ्र हो पाते हैं।

विटामिन बी से बच्चे की पाचन शक्ति अच्छी होती है पैदा होते ही कब्ज, दस्त, वायु विकार आदि की नौबत नहीं आती, यदि माता उस काल में कोई विशेष बदपरहेजी न करे। इससे गर्भिणी की भी रुचि कुत्सित नहीं हो पाती। बहुधा स्त्रियाँ मिट्टी तथा अन्य ऐसे पदार्थ खाने लगती हैं। इसका कारण भोजन में इस विटामिन की कमी भी है।

विटामिन सी के अभाव से प्रसव के समय रक्त प्रवाह तथा बाद में अन्य रक्त सम्बन्धी रोग होने का डर रहता है।

विटामिन डी के अभाव से बच्चे की हड्डियाँ पतली बनती हैं और दाँतों की जड़ें भी ठीक से नहीं बनतीं, जिसका परिणाम आगे

चल कर दाँत निकलते समय देखने में आता है। यह कमी घास से पूरी की जा सकती है।



यह वही गाय है जिसका चित्र पृष्ठ ७० पर दिया गया है। जब इसको हरा चारा, नमक, चूना दिया गया तब इसने एक साथ दो बच्चे दिये जिनका शरीर भार १२४ पौंड था।

कैलारी गर्भिणी को २४०० चाहिये और दूध पिलाने वाली माता को ३००० तक। आवश्यकता में वृद्धि निम्नलिखित प्रतिशत होनी चाहिये :—

प्रोटीन	५०%	चूना	१००%	लोहा	५०%
चिकनाई	१०%	स्फुर	५०%	कैलारी	२५%

गर्भवती स्त्रियों के लिये संतुलित भोजन

	वजन
अनाज	७ छटाँक
दालें	१½ ,,
बिना पत्ते की तरकारियाँ (बैंगन, कद्दू, भिंडी, आलू, गाजर, लाल चौलाई, सफेद कद्दू आदि)	३ ,,
साग सब्जियाँ (करमकल्ला, सरसों, चने का साग, लाल चौलाई (मरसा), सैंजन आदि)	२ ,,
घी या पकाने वाले तेल	१ ,,
दूध	८ ,,
शक्कर या गुड़	१ ,,
फल	१ ,,
मसाले	स्वाद के लिये

पानी खूब पीना चाहिये

नोट :—अगर खर्च कर सके तो दूध को बढ़ा कर १० छटाँक कर देना चाहिये। तथा सूखे मेवे बढ़ा देना चाहिये। मांसाहारी स्त्रियाँ १ अंडा और १ छटाँक माँस एक दिन छोड़ कर खा सकती हैं।

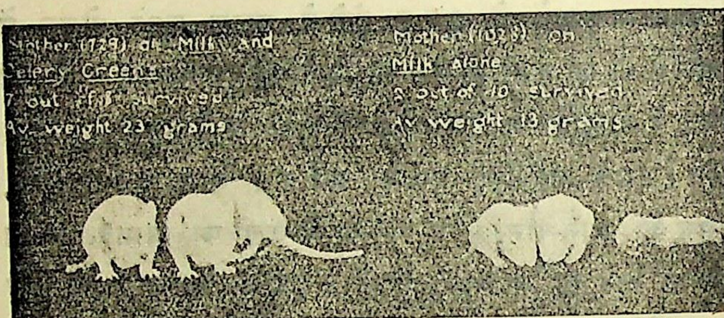
माता का आहार—दूधपिया बच्चा अपनी समस्त आवश्यकताओं के लिये माता के ऊपर निर्भर है और जिन चीजों का पहुँचाना माता की शक्ति के बाहर है—जैसे लोहा—वे उसमें पैदायशी मौजुद रहते हैं। इस लिये माता का भोजन उत्तम प्रकार

का होना चाहिये। बचपन के बहुत से रोग माता के दूध की खराबी के कारण हुआ करते हैं और दूध की खराबी उसके भोजन की खराबी के कारण होती है।

बहुधा माताओं के दूध न होने के कारण उनके भोजन में विटामिन बी की कमी भी है। यह विटामिन दूध पिलाने वाली स्त्री के आहार में साधारण की अपेक्षा तिगुना से पँचगुना तक होना चाहिये। इसके अतिरिक्त थकान लाने वाले काम, दुःख, जोश, कुसमय का खान-पान, सोच, शरीर में जल का अभाव, नियत समय पर स्तन का न खाली करना (दूध न पिलाना) भी दूध कम कर देते हैं। प्रोफेसर मेकी और आउथहाउस ने कई स्त्रियों को भिन्न भिन्न आहार पर और भिन्न भिन्न अवस्थाओं में रख कर और उनके दूध का प्रभाव चूहों पर देख कर उक्त परिणाम पाया है। उनके बाद अन्य वैज्ञानिक लोग भी इसी निर्णय पर पहुँचे हैं। अधिक तम्बाकू खाने या पीने वाली स्त्रियों के भी दूध कम होता है या नहीं भी होता है।

दूध, घी, गेहूँ, दलिया, सभी दालें, गरीदार मेवे तथा अन्य प्रोटीन प्रधान पदार्थ दूध-वर्धक होते हैं। आटा भी चोकर दार खाया जाना चाहिये। तरकारियाँ शाक, टमाटर, नींबू, गाजर, आलू बड़े लाभकारी होंगे बल्कि कोई न कोई कच्ची चीज प्रति दिन उनके भोजन में होना चाहिये। अकसर स्त्रियाँ कहती हैं कि माता के हरे शाक खाने से बच्चे के हरा पाखाना होता है। परन्तु आहार- विशेषज्ञ इस से सहमत नहीं हैं। उनकी

राय है कि यह हरी चीजों से परहेज और सफेद चावल, चीनी, आटा, तरकारी आदि से प्रेम ही का कारण है जो सफेद (रक्तहीन) माताओं के सफेद बच्चे पैदा हो रहे हैं।



बाएं चित्र में माता को दूध के अतिरिक्त साग भी मिलता था और ८ बच्चों में ७ जीवित रहे। तथा औसत शरीर भार ३२ ग्राम रहा। दाहिने चित्र में माता को केवल दूध मिला, साग नहीं। अतः १० में केवल २ जीवित रहे और औसत शरीर भार १३ माशा रहा।

माता के अहार में प्रत्येक अवयव के वृद्धि की मात्रा :—

उष्णाङ्क	२५%	चूना	१००%
प्रोटीन	५०%	लोहा	५०%
वसा	१०%	फासफोरस	५०%

माता के लिये संतुलित भोजन

अनाज	७ छटाँक
दालें	१½ ,,
बिना पत्ते की तरकारियाँ	३ ,,

पत्तेदार साग	...	...	२ छटाँक
घी या पकाने वाले तेल	...	...	१ ,,
दूध	...	...	१० से १२ ,,
शक्कर या गुड़ ...		...	१ ,,
फल और गिरीदार मेवे	...	...	२ ,,
मांस या मछली	...	...	१ ,,
अंडा	...	...	१ ,,
मसाले	...	...	स्वाद के के लिये

पानी खूब पीना चाहिये

नोट :—निरामिष भोजी मांस, अंडे और मछली की जगह २ छटाँक दूध और १ छटाँक फल बढ़ा दें।

छोटे बच्चे का आहार—माता का दूध बच्चे के लिये सर्वोत्तम पदार्थ है परन्तु तभी जब माता स्वस्थ हो, उसका भोजन उत्तम प्रकार का हो और वह संयम के साथ दूध पिलावे। लेकिन आजकल दरिद्रता, अज्ञानता और फैशनोपासना के कारण यह असंभव सा हो रहा है। इस लिये माता के दूध की त्रुटियों की पूर्ति के लिये बाह्य पदार्थों की सहायता लेने की आवश्यकता पड़ती है।

दूध पिलाने का समय बिलकुल बँधा हुआ होना चाहिये। अनियमित समय पर दूध पीने वाले बच्चे पेट के रोगी हो जाते हैं और जल्दी जल्दी दूध पिलाने से और भी अधिक। क्योंकि जल्दी जल्दी स्तन खाली होने से दूध में वसा बढ़ जाता है। अतः वह देरपच और बच्चे की पाचन शक्ति के लिये हानि-

कारक हो जाता है। गाय, भैंस का भी दूध यदि वे कई बार दुही जाँय तो मोटा हो जाता है। इसके अतिरिक्त दूध का समय बँधा रहने से बच्चे के कुसमय रोने का कारण जानने में धोखा नहीं हो सकता।

बच्चों के लिए उचित भोजन

१ से ३ वर्ष की आयु तक : ८०० से १००० केलारी

दूध	१२ छटाँक से १ सेर तक
शक्कर या गुड़	१ छटांक
साग	१ ,,
अनाज	½ ,,
फलों का रस	½ ,,
मक्खन, बदाम या एक अंडा एक दिन छोड़ कर	

४ से ५ वर्ष की आयु तक : १००० केलारी

दूध	१२ छटाँक
शक्कर या गुड़	१ ,,
सब्जियाँ	१½ ,,
अनाज	१ छटांक
फलों का रस	१ ,,
मक्खन या एक अंडा एक दिन छोड़ कर	

६ से ७ वर्ष की आयु तक : १३०० केलारी

अनाज	२ छटाँक
दूध	१२ ,,
शक्कर या गुड़	१ ,,
साग-तरकारी	२½ ,,
फल	१ ,,

बदाम या एक अंडा रोजाना

तथा

घी, मक्खन या तेल

८ से ११ वर्ष की आयु तक : १६०० से १८०० केलारी

अनाज	३ से ५ छटांक	
दूध	८	,,
दालें	½	,,
साग	१	,,
दूसरी तरकारियां	२	,,
फल	१½	,,
मक्खन	½	,,
घी या तेल	¼	,,
शक्कर या गुड़	१	,,

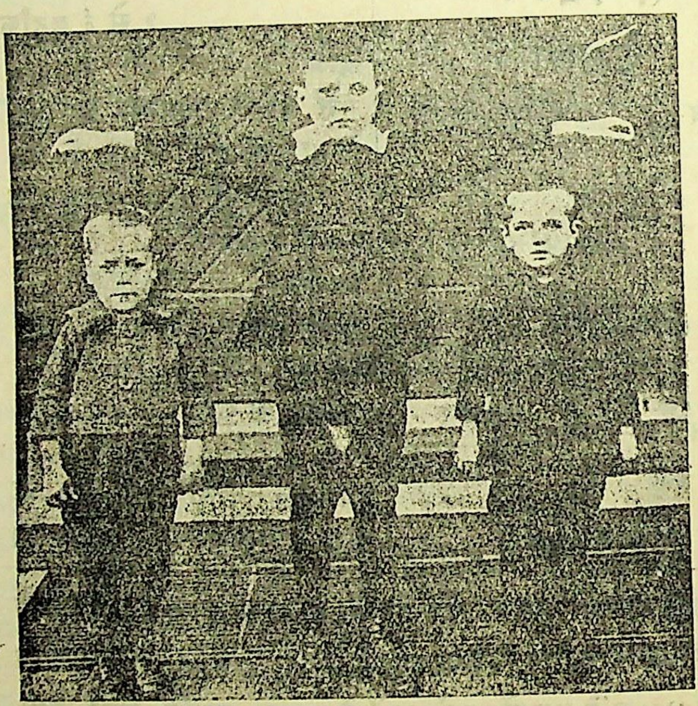
१२ से १३ वर्ष की आयु तक : २१०० केलारी

अनाज (गेहूँ या चावल)	५ से ६ छटांक	
दालें	१	,,
पत्ते वाली सब्जियां	१	,,
बिना पत्ते वाली सब्जियां	३ छटांक	
कच्ची सब्जियां	१	,,
मक्खन	¼	,,
घी या तेल	½	,,
दूध	१२	,,
शक्कर या गुड़	१	,,
फल	२	,,

मांसाहारी १ पाव दूध कम कर के १ छटांक मांस खा सकता है।

साधारणतया स्वस्थ बच्चों को आरम्भ से ३-३ घंटे में दूध पिलाना चाहिये इससे जल्दी नहीं। बहुत स्वस्थ बच्चे के लिये ४-४ घंटे तक में हर्ज नहीं है। यह अवधि सभी बच्चों के लिये चौथे मास तक में ४-४ घंटे हो जाना चाहिये। तीन तीन घंटे से कम पर कभी भी दूध न पिलाना चाहिये। अगर दो एक दिन यह आदत डालने में लगे तो कोई हर्ज नहीं है। कुसमय केवल जल दिया जा सकता है। विशेषज्ञों की राय है कि दुर्बल से दुर्बल बच्चा तीन तीन घंटे पर दूध पिलाया जाकर रक्खा जा सकता है।

उत्तम समय पहले पहर ६, ९ और १२ बजे और दूसरे पहर ३, ६ और १० बजे होंगे। इसके बाद रात्रि में जगा कर कदापि न देना चाहिये। डाक्टर ट्रुवी किंग, जो बच्चों के स्वास्थ्य और



तीनों बच्चे, ८ वर्ष की आयु के हैं। बीच के बालक उत्तम आहार खाने वाली अमरीका की जाति का है, जो दूध काफी खाती है। दूसरे दोनों गरीब परिवार के हैं जिनको पूरा भोजन तथा दूध नहीं मिलता था।

दिमागी रोगों के संसार के सर्वश्रेष्ठ विशेषज्ञों में गिने जाते हैं, लिखते हैं—"आधुनिक शिशु-पालन के इतिहास में इससे बढ़कर

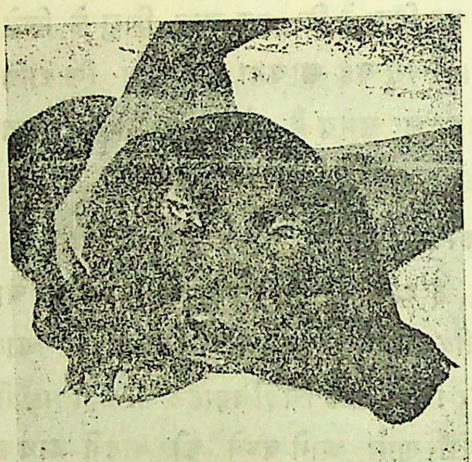
और कोई आश्चर्य की बात नही है कि मनुष्य-मात्र ने बिना स्वाभाविक-अस्वाभाविक अथवा उचित-अनुचित पर ध्यान दिये ही यह स्थिर कर दिया है कि नव-जात शिशु के लिये रात्रि-भोजन आवश्यक है। परन्तु यह सोचना भूल गया कि रात्रि पूर्ण विश्राम और गाढ़ी निद्रा का समय है भोजन का नहीं। अन्य पशु भी इस समय दूध नहीं पिलाते।"

"बच्चे को दिन रात में केवल ६ बार (सबेरे ६, ९, १२ और दोपहर बाद ३, ६ और १० बजे) दूध पिलाया जाना चाहिये। इससे माता अटूट नींद सो पाती है और बच्चे की भी आदत उचक्की नींद सोने और मिजाज के चिड़चिड़ाहट की नहीं पड़ती। इन दोनों दुर्गुणों के दुष्परिणाम आगे बच्चे की बाढ़ में बाधक होते हैं।"

आगे वे यह भी लिखते हैं कि गहरी नीद न सो सकने की आदत के कारण उनमें आगे दिमागी कमजोरी और अन्य ऐसे रोग आजाते हैं। इसलिये बच्चे को रात्रि में सोते समय कभी न जगाना चाहिये। इसके विपरीत हमारे यहाँ की यह दशा है कि बच्चा कुन्मुनाया नहीं कि माता ने स्तन से लगाया नहीं। यह माता और बच्चे के एक चारपाई पर सोने के कारण होता है। विशेषज्ञों की राय है कि आरम्भ ही से माता और बच्चे को एक खाट पर कदापि न सोना चाहिये।

विटामिन ए, बी और सी के लिये हर शाक, सन्तरा और टमाटर का रस दिया जाना उचित होगा। अक्सर अंगूर का रस दिया जाता है। यह रेचक (कब्ज नाशक) और रक्तवर्धक होता है

परन्तु विटामिनों की दृष्टि से शाक, टमाटर और सन्तरे से हेठा पड़ता है। फलों में सब से अधिक गुणकारी टमाटर और सन्तरा



पहले चित्र में विटामिन ए न पाने से आँखों के कोर फूल आये, दूसरे चित्र में इस कमी को पूरा कर देने पर आँखें अच्छी हो गईं।

हैं और शाकों में चौलाई और पालक। शाक की उपयोगिता के सम्बन्ध में एक डाक्टर लिखते हैं—'बच्चों के आहार में हरे शाकों के रस बढ़ा देने से उनके पोषण में बड़ा लाभ पहुँचता है।" दूसरे ने अपने प्रयोगों के परिणाम लिखते हुये लिखा है—"जब पालक या गाजर का रस बच्चों के भोजन में बढ़ा दिया जाता है तो दूध का चूना और अच्छी तरह पचता है।" एक तीसरे साहब लिखते हैं—"प्रत्येक बच्चे को—गोद के बच्चे को भी—बाहर से विटामिन पहुँचाना आवश्यक है।"

फलों का रस दूसरे या तीसरे महीने से शाक-भाजी का रस चौथे पाँचवें महीने से देना आरंभ करना चाहिये। शाकों को पहले स्वच्छ जल से धोकर फिर खौलता जल डाल कर धो लेना चाहिये। इससे भी उत्तम होगा यदि शाक ५ मिनट तक भाप में पका लिये जाँय।* इस प्रकार पकाने से उनमें चिपके हुये रोग के कीटाणु मर जाते हैं परन्तु विटामिन नहीं मरते। फल मीठे होने चाहियें। अगर मीठे न हों तो मिश्री मिला कर देना चाहिये। रस मलमल तथा अन्य ऐसे ही महीन कपड़े में छान कर देना चाहिये। सब से अच्छा समय दूध पिलाने के दो घंटे बाद है।

अगर मामूली दस्त आजायँ तो इस कारण जल्दी इन रसों को बन्द न कर देना चाहिये क्योंकि दस्त का कारण दूसरा भी हो

---

*यह इस प्रकार हो सकता है कि चौड़े मुँह की बटलूई में पानी खौलाया जाय और लोहे के तार की चलनी में धुला हुआ शाक रख कर उसके मुँह पर रख दिया जाय और चलनी ऊपर से ढक दी जाय।

सकता है। परन्तु इसकी जाँच कर लेना आवश्यक है। ज्यादा दस्त आने पर इन्हें तुरन्त बंद कर देना चाहिये।

विटामिन तथा शुद्ध पाचन दोनों की दृष्टि से बच्चे के शरीर पर घाम लगना भी अति आवश्यक है। अतः बच्चों को कुछ समय घाम में बिताने से रोकना न चाहिये।

बहुधा बच्चों में पाचन की गड़बड़ी दूध अधिक या समय के पहले पाने के कारण होती है। इस लिये पाचन बिगड़ने पर या तो मात्रा घटा देना चाहिये। या समय बढ़ा देना चाहिये।

बच्चों को भी जल की वैसी ही आवश्यकता पड़ती है जैसी सयानों को, विशेष कर गर्मी, ज्वर, अनपच, कब्ज, और दांत निकलते समय। इसके अतिरिक्त इससे बच्चे का मुँह साफ हो जाया करता है और मुखरोग होने की कम सम्भावना रहती है। इस लिये पैदा होने के दिन से ही उन्हें पकाया हुआ ठंडा जल कम से कम दिन में दो बार, १० बजे और ४ बजे तीसरे पहर, या इससे भी अधिक बार दूध पिलाने के समयों के बीच में देना चाहिये। बल्कि हर दूध पिलाने के बाद एक या दो चम्मच जल पाचन और मुँह की सफाई दोनों के लिये गुणकारी होता है। परन्तु जल स्वच्छ शीशी में बन्द रक्खा जाय और अधिक ठंडा न दिया जाय।

७ वें महीने में बच्चे को कुछ अनाज देना आरंभ करना चाहिये। १० वें महीने के बाद माता का दूध बन्द कर देना चाहिये।

माता के दूध से वंचित बच्चों को गाय या बकरी का दूध दिया जाना चाहिये। गाय का दूध माता के दूध से भारी होता है और बकरी का गाय से भी अधिक भारी। गधी का दूध माता के दूध से बहुत कुछ मिलता-जुलता होता है। गाय के दूध को बच्चे की अवस्थानुसार उसके योग्य इस प्रकार बनाया जा सकता है; जितना दूध हो उतना ही जल और इस प्रकार के प्रति आध पाव दूध पीछे एक चाय के चम्मच भर मामूली चीनी, या दूध की चीनी, उतना ही क्रीम और दो चाय के चम्मच भर चूने का पानी। यह दूध माता के दूध से बहुत कुछ मिलता-जुलता होता है। परन्तु नवजात शिशु के दूध में पहले एक या डेढ़ सप्ताह तक पानी दूध का दुगना होना चाहिये। इससे भी उत्तम नुसखा निम्नलिखित है :—

"गाय का दूध असली	११ औंस *	
क्रीम	२ "	(३ बड़े चम्मच भर)
चूने का पानी	१½ "	
चीनी (दूध की)	१½ "	
उबाला जल	१५½ "	

इस प्रकार कुल आध सेर दूध तैयार होगा।"

अथवा "गाय का दूध	१३ औंस	
चूने का पानी	२ औंस	
दूध की चीनी	१ "	२ बड़े चम्मच भर

(या साधारण चीनी १½ बड़े चम्मच भर)

*औंस का निशान लगा लगाया गिलास मोल लिया जा सकता है।

क्रीम १ औंस (१ बड़े चम्मच भर)

उबाल कर ठंडा किया जल १५ औंस

इस प्रकार भी कुल एक सेर दूध तैयार होगा।" (१)

बाजारू क्रीम अशुद्ध होता है अतः इस दूध को पका कर तुरन्त ठंडा कर लेना चाहिये।

गाय के दूध में माता के दूध से वसा कम होता है। इसलिये ऊपर से क्रीम मिलाने की जरूरत है। परन्तु उपरोक्त मात्रा स्वस्थ बच्चों की है। बहुधा दुर्बल पाचन वाले बच्चे क्रीम बिलकुल ही नहीं पचा सकते या कम पचा सकते हैं। क्रीम उतना ही कम कर देना या।

बचपन में क्रीम न पाने से वसा पचाने की शक्ति कम हो जाती है और शरीर की बाढ़ भी पूर्ण रीति से नहीं होती क्योंकि चिकनाई के अभाव में चूना कम पचता है।

चूने का पानी निम्नलिखित रीति से बनाया जा सकता है:

एक बड़े चम्मच भर ताजे बरी के चूने में ३-४ सेर उबाला जल डाल दिया जाय और बर्तन बन्द करके रख दिया जाय जिसमें कोई चीज पड़ न जाय। १२ घंटे बाद यह फेंक दिया जाय। फिर उसमें उतना ही जल डाल कर हिला कर पूर्ववत् रख दिया जाय। १२ घंटे बाद इस जल को निथार कर बोतल में बन्द करके रख दिया जाय। इसे वायु से बचाना चाहिये।

---

(१) डा० किंग की पुस्तक 'The care of the Baby' से।

दूध या तो बनाकर ठंढे स्थान में रक्खा जाना चाहिये या फिर प्रत्येक बार गर्मा कर पिलाया जाना चाहिये क्योंकि गुनगुने दूध में बेक्टरियों का प्रभाव अधिक होता है। यथा-सम्भव दूध गरम ही रखना चाहिये। इसके लिये दूध को या तो आग पर रखना चाहिये या थरमस फलास्क का इस्तेमाल करना चाहिये। दूध रखने के पहले फलास्क और उसके कार्क को गरम पानी और सोडा से खूब धो लेना चाहिये। फिर गरम दूध (जिसका ताप-क्रम १५५° फे० से कम न हो) उसमें रख दिया जाय। परन्तु उसका तापक्रम १३०° से कम न होने पावे। १०-१२ घंटे तक तो कम न होगा। यदि कम होने लगे तो फिर गरमा कर भर दिया जाय। १३०° से कम पर दूध खराब होने लगता है। हलवाई के यहाँ का दूध बच्चों को कदापि न देना चाहिये।

यदि ठंढा रखना हो तो ४०° से कम रखना चाहिये। इसका उपाय यह है कि गरम करने के बाद दूध तुरन्त बिलकुल ठंढा कर ले और ४०° से कम होने पर बाहर छिछले बर्तन में ठंढा पानी रख कर ठंढे दूध का पात्र उसमें रख दे। ऊपर से दो परत का एक ऐसा भीगा कपड़ा डाल दे जो बर्तन से चिपका रहे और नीचे के पानी में चारों ओर डूबा रहे। इस प्रकार दूध बराबर ठंढा रहेगा। परन्तु यह तरकीब जाड़े गरमी के लिये ठीक है बरसात के लिये उतनी नहीं। क्योंकि गीली वायु में पानी कम उड़ता है। यदि संभाल कर रक्खा जाय तो एक बार का पकाया दूध ५, ६ घंटे तक न बिगड़ेगा और बच्चे को देने लायक रहेगा।

जहाँ दूध की शुद्धता और स्वच्छता में तनिक भी सन्देह हो

वहाँ उसे लगभग उबलने के तापक्रम तक गरम करके ५ मिनट तक उसी तापक्रम पर रख कर तब पिलाना चाहिये।

बच्चे गाय के दूध का चूना आधे से कम ही—केवल ४५%—पचा पाते हैं। अतः उन्हें फल, या शाक का रस और चूने का पानी अवश्य दिया जाना चाहिये।

दूध पिलाने के लिये दूध पिलाने की बोतल बड़ी ही उत्तम चीज है। परन्तु उसके सफाई में बड़ी सावधानी रखनी चाहिये। बोतल सवेरे पहले ठंडे पानी से, फिर खौलते पानी और सोडा से ब्रश की सहायता से साफ कर लेना चाहिये। बोतल प्रत्येक बार नमक के पानी से या सोडा के पानी से धोई जाकर तब ही काम में लाई जानी चाहिये।

प्रत्येक बार पिला चुकने के बाद रबर भी भीतर बाहर नमक के पानी से रगड़ कर धोकर सुखा लिया जाना चाहिये और सूखे कपड़े में लपेट कर रक्खा जाना चाहिये। नम रहने से खराब हो जाता है। उसका छिद्र भी पतला होना चाहिये। बड़ा छिद्र अधिक दूध निकालता है। इसलिये एक के खराब होते ही दूसरा बदल देना चाहिये।

फलों का रस इन्हें दूसरे ही मास से आरम्भ किया जा सकता है। पहले केवल ८, १० बूंद दिया जाय, फिर बढ़ाया जाय। जितना ही दूध पका कर दिया जाय उतना ही अधिक फल शाकों के रस दिये जाने चाहिये। गाय का दूध बिना फलों के रस अथवा चूने के पानी के बच्चे के पेट में अम्ल बढ़ाता है।

आज कल स्वच्छ दूध नहीं मिलता इस लिये डब्बों का दूध पिलाया जाता है। ऐसी दशा में भी फलों का रस उतना ही आवश्यक है। यथासम्भव दूध ताज़ा ही दिया जाना चाहिये, परन्तु स्वच्छ हो।

विलायती दूध तीन प्रकार के होते हैं :—

(१) सुखाये हुये दूध जैसे ग्लेक्सो (Glaxo) और काऊ ऐंड गेट (Cow and Gate)। इन दूधों में वसा और विटामिन सी की कमी रहती है। दुर्बल पाचन वालों के लिये यह ठीक पड़ते हैं परन्तु स्वस्थ के लिये इनमें क्रीम मिलाने की आवश्यकता पड़ती है। सन्तरे का रस इनके साथ अवश्य दिया जाना चाहिये।

सुखाये दुध में चूना कम हो जाता है। उसके लिये कैल्शियम लैक्टेट अलग से दिया जाना चाहिये।

(२) जमाये हुये दूध जैसे नेसेल्स और मिल्कमेड (Nestles and Milkmaid)। यह हल्का होता है और जल्द पचता है। अक्सर दुर्बल बच्चों के लिये यह दूध औरों की अपेक्षा अधिक उपयोगी होता है। ऐसे दूधों के साथ क्रीम और फलों और शाकों के रस की भी आवश्यकता पड़ती है। ऐसे दूध के अधिक उपयोग से पाचन-शक्ति कमजोर हो जाती है।

(३) बनाया हुआ दूध जैसे एलेनबरीज (Allenbury's food) और हार्लिक्स माल्टेड मिल्क (Horlicks malted milk)। ये दूध सुखा कर और उसमें कुछ अन्न और शर्करा मिला कर विशेष कर बच्चों के लिये बनाये जाते हैं। इनके साथ भी क्रीम, मछली का तेल या सन्तरे के रस की आवश्यकता पड़ती है।

समय और मात्रा की सूची :—

बच्चे की औसत तौल	बच्चे की आयु	कितने बार पिलाया जाय	प्रत्येक बार की मात्रा औंस में	२४ घण्टे की पूरी मात्रा	दूध की बनावट		दूध पिलाने की अवधि	दूध पिलाने के समय
					बनाया हुआ दूध	उबाला जल		
७ पौंड	३रे दिन ...	६	१	६	१½	४½	३	६,९,१२,३,६,१०बजे
	४ थे दिन ...	६	१½	९	३	६	३	,,
	५वें और ६ठवें दिन...	६	२	१२	५	७	३	,,
७½ ,,	७वें से ९वें दिन तक	६	२½	१५	७½	७½	३	,,
	१० वें से १४ वें दिन तक	६	३	१८	११	७	३	,,
	३रे सप्ताह में ...	६	३½	२१	१४	७	३	,,
	४थे सप्ताह में ...	६	४	२४	१८	६	३	,,
८½ ,,	२रे मास के आरंभ में	६	४½	२५½	२१½	४	३	,,

८¾ ,,	२रे मास के मध्य में...	६	४¼	२५½	२५½	...	३	,,
१०½ ,,	३रे ,, ,, आरम्भ में	६	४½	२७	२७	...	३	,,
	३रे ,, ,, मध्य में	५	५½	२७½	२७½	...	४	६,१०,२, ,१० बजे
१२¾ ,,	४थे ,, में	५	६	३०	३०	...	४	,,
१३¾ ,,	५वें ,, ,,	५	६½	३२½	३२½	...	४	,,
१५ ,,	६ठें ,, ,,	५	७	३५	३५	...	४	,,
१६ ,,	७वें ,, ,,	५	७½	३७½	३७½	...	४	,,
	८वें और ९वें मास में	५	८	४०	४०	...	४	,,

डा० किंग की पुस्तक से । भारतवर्ष के लिये औसत तौल और आहार की मात्रा ८-१०% घटा देना चाहिये ।

सातवें मास से बच्चे को अनाज भी दिया जाना चाहिये जिनमें कुछ सूखी चीजों के रूप में हो और कुछ गीली चीजों के रूप में। सूखी चीज चबाने से उनके मसूढ़े कड़े पड़ते हैं, लार भी अधिक निकलती है और वे आगे चबा कर खाना सीखते हैं। परन्तु कड़ी चीज खिलाते समय पहले उनकी निगरानी रहनी चाहिये कि बिना चबाये ही न निगल जायँ। अनाज के अतिरिक्त उबली तरकारी और शाक भी देना चाहिये। साल भर के पश्चात् बच्चे को शाक, फल, आदि अपने दाँत से काट कर खाना सिखलाना चाहिये। परन्तु गरीदार मेवे पहिले ही से पीस कर देना चाहिये क्योंकि यह इनके चबाने की शक्ति के बाहर होते हैं।

दसवें मास के बाद बच्चों की आवश्यकता में बड़ा अन्तर पड़ जाता है परन्तु निम्नलिखित आँकड़े ८ से १०% तक घटा कर भारतवर्ष के औसत बच्चों के लिये ठीक होंगे।

	बनाया दूध	असली दूध	अनाज,	कितनी बार
१० वें महीना में	३५ औंस	५ औंस	३ औंस	५
११ ,, ,,	३० ,,	१० ,,	५ ,,	५
१२ ,, ,,	२० ,,	१५ ,,	७ ,,	५
१३, १४ ,,	१५ ,,	१५ ,,	१० ,,	५
१५-१६,१७,,	१० ,,	१५ ,,	१० ,,	५
१८ ,, ,,		२० ,,	१० ,,	४

अनाज में कुछ गली चीजें जैसे गला भात, गली दाल, गेहूँ

तथा जव की दलिया और कुछ कड़ी चीजें जैसे रोटी का छिलका, बिस्कुट, मठरी आदि होना चाहिये।

अनाज जितना पचे उतना ही बढ़ाना चाहिये। एक ही समय में कुल अनाज देने की जगह यह अच्छा होगा कि दो बार अनाज और दूध दोनों दिये जायँ और तीन बार केवल दूध। इसमें भी पहले अनाज खिला कर तब दूध पिलाना चाहिये। तरकारी अनाज के साथ देना चाहिये। दूध के साथ भी दी जा सकती है। भोजन के एक घन्टे पहले नीबू या संतरे का रस भूख बढ़ाता है।

बच्चों के भोजन के सम्बन्ध की कुछ बातें विशेष ध्यान रखने की हैं।

(१) शर्करा पदार्थ कदापि न बढ़ने पावें नहीं तो दाँत और स्वास्थ्य दोनों बिगड़ जाते हैं। खाने के बाद दाँत जरूर साफ कर लें। कुछ देर तक मुँह मीठा रखने से तेजाब बन जाता है, दाँत की पालिश कट जाती है और दाँतों में कीड़े लग जाते हैं।

(२) बंधे समयों पर भोजन मिले। बीच में सिवाय जल के कोई भी चीज, मिठाई, खटाई आदि चखने तक को न दी जानी चाहिये। यदि ऐसी कोई चीज देने को हो तो अगले भोजन के समय के लिये रख दी जानी चाहिये। आज कल अज्ञानतावश माता पिता बच्चे के हर समय मुँह चलाते रहने में सहायक होते

हैं। इसके दुष्परिणाम लड़कपन की अपेक्षा सयानी में अधिक कष्टदायक होते हैं।

(३) रुचि किसी हद तक स्वाभाविक हुआ करती है परंतु बहुत कुछ यह बनाई जाती है, और बचपन ही वह अवस्था है जब यह बनती है। बचपन में नमकीन खाने वाले सयानी तक नमकीन ही खाते हैं और मीठा खाने वाले मीठा। आज कल के बच्चों का स्वाद इस लिये बिगड़ जाता है कि लड़कपन से ही वे चाट-चटनी के आदी बना दिये जाते हैं। यदि बचपन ही से वे सादे भोजन तथा शाक-भाजी खाने के आदी बनाये जायँ तो सयानी में स्वाद के पीछे बरबाद होने की नौबत न आवे।

(४) बहुधा यह देखा जाता है कि कुछ माताएँ बच्चों के खाने में हर समय बदहज़मी का नाम लेकर रूकावट डाला करती हैं। परन्तु यह भारी भूल है! बच्चों को बंधे समय पर सादा भोजन दिया जाय तो वे कभी भी अधिक न खायँ। या यदि पाचन-शक्ति की वास्तविक दुर्बलता के कारण आवश्यकता हो तो उलांक (अर्थात् देखने में अधिक परंतु पुष्टिकारक पदार्थ कम रखने वाले) भोजन जैसे दूध, दलिया, चोकरदार आटा, शाक, भाजी आदि पदार्थ दिये जाँय।

(५) बच्चों को विदेशी पुरानी, टीनों में बन्द चीजें यथा सम्भव नहीं देना चाहिये। उसके खाने में सफाई का भी अधिक ध्यान रखना चाहिये। अकसर जो पदार्थ सयाने स्वयं खाना

नहीं पसंद करते वे बच्चों को दे देते हैं। इससे बढ़ कर भूल और क्या हो सकती है।

(६) अनाज तथा किसी भी खाद्य पदार्थ के खराब होने के डर से तथा बच्चे के मोह वश उस को उसकी भूख से अधिक कभी न खिलाना चाहिये। इससे कुछ दिनों में बच्चे को अपने भोजन के आवश्यक मात्रा की पहिचान नहीं रह जाती और उसका स्वास्थ्य भी बिगड़ जाता है। इसलिये न बच्चे को खाते समय रोकना ही चाहिये और न उसकी इच्छा के विरुद्ध खिलाना ही चाहिये। पहले ही समझ-बूझ कर उसके सामने भोजन रक्खा जाय तो इसकी नौबत न आवेगी।

(७) एक बार बच्चा इनकार कर दे, तो फिर दुबारा उसे ललचवाना न चाहिये। यदि दूध जैसी आवश्यक चीज के प्रति बच्चा अरुचि प्रगट करता हो तो कुछ दिनों तक बराबर पहले उस चीज को खिला कर तब उसे रुचि की चीज देना चाहिये। उसके सामने यह कहना कि तुमको यह नहीं अच्छा लगता, वह नहीं अच्छा लगता भूल है। बच्चों में बहुधा यह दोष माता पिता की रुचि के कारण आता है और कुछ उनकी स्वाभाविक रुचि के न सुधारे जाने के कारण।

(८) बच्चे को अधिक खिलाने की नीयत कभी न रहे। कभी कम हो जाय तो कोई हानि नहीं। इससे लड़के असंतोषी नहीं हो पाते। गर्मी और बरसात में इसका विशेष ध्यान रहे कि खाना कम हो।

(९) ज्योंही बच्चा अपना भोजन अपने हाथों खाने योग्य हो उसे पूर्ण अवसर दिया जाना चाहिये कि वह अपना काम स्वयं कर लिया करे। माता-पिता को पहले देख-भाल रखनी चाहिये कि वह चबा कर खाता है, सफाई से खाता है, कोई हानिकारक चीज नहीं खा जाता और खाने के पश्चात् मुँह, हाथ धुला दिया जाता है या वह स्वयं धो लेता है।

(१०) अगर समय और मात्रा का ध्यान रहे तो बच्चों को हर प्रकार की चीज खाने को देना चाहिये। बचपन में परहेजगारी दुर्बल पाचन की नींव है।

बुढ़ापे का आहार—अवस्था ढलने पर मनुष्य के शरीर में नये सेलों का बनना रुक जाता है और प्रोटीन की आवश्यकता कम हो जाती है। इसके अतिरिक्त परिश्रम कम पड़ने के कारण तापोत्पादक पदार्थों की भी कम आवश्यकता पड़ती है। अतः तीसरेपन में मनुष्य का अहार बहुत हल्का हो जाना चाहिये। मांस खाने वालों को भी मांस की आवश्यकता नहीं रहती। इस लिये यदि खाया भी जाय तो कभी कभी, नहीं तो यह बहुमूत्र या गठिया आदि रोग लाता है। शर्करा पदार्थ और वसा की अधिकता बादी की मोटाई लाती है। बुढ़ापे की मोटाई उन्नति की नहीं बल्कि अवनति की निशानी है। ४० वर्ष की आयु के बाद २०% मोटाई बढ़ने से ३०-४०% आयु घट जाती है। इस आयु में प्रोटीन की मात्रा कम करना चाहिये और ४५-५० तक घटा देना उचित होगा।

कब्ज में आहार—कब्ज आँतों की निर्बलता और आहार की खराबी में से किसी एक या दोनों का परिणाम हो सकता है। यदि आँतों में चिकनाहट काफी न हुई, आँतें लवणों और विटामिनों की कमी के कारण दुर्बल होकर मल को नीचे ढकेलने के अयोग्य हो गईं या आहार में खुज्झीदार पदार्थों की कमी या जल की कमी के कारण मल को नीचे आने का बोझ न मिला तो कब्ज हो जाता है। अतः खाने में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिये :—

(१) फोक प्रधान चीजें अधिक खाना चाहिये जैसे चोकरदार आटा और छिलकेदार दाल, तरकारी, फल, शाक आदि। इनके बोझ से मल नीचे ढकिलता है और आँतों में चिपकने नहीं पाता।

(२) जल अधिक पीना चाहिये। यह भी मल को नीचे ढकेलने में आँतों को सहायता देता है। रात में सोते समय जल पीना और सवेरे जल पीकर शौच जाना अति उपयोगी संयम हैं।

सवेरे नेहार मुँह हल्का गुनगुना जल पीकर शौच जाने से अथवा इस जल में सेर पीछे २ चाय के चम्मच निमक मिला कर पीने से कब्ज दूर होता है। मात्रा जो जितना पी सके, एक प्याले से १ सेर तक। पानी पीने के बाद लेट रहना चाहिये या बैठ जाना चाहिये। खड़े रहने से यह जल रक्त में चला जाता है और आंतों पर असर नहीं रखता। आध घन्टे इन्तिजार कर के शौच जाने से अधिक हितकर होता है। परन्तु यह सब प्रत्येक व्यक्ति के अपने

स्वभाव पर भी निर्भर है। पुराने रोगियों को विशेष कर गुर्दे के रोगियों को यह अनुकूल नहीं पड़ेगा। सम्भव है कि उनकी कमजोर आँतें इसे रोक लें और रक्त में नमक बढ़ जाने से गुर्दों को निकालने में हानि पहुँचे। इस लिये तीन चार दिन इस का असर देख कर तब निश्चय करना चाहिये।

(३) भोजन में वसा भी आवश्यक मात्रा में होना चाहिये क्योंकि अनपचा वसा आँतों में चिकनाहट लाकर मल को नीचे ढकिलने में सहायता देता है। परन्तु इसका बहुत अधिक होना भी ठीक नहीं है। इससे पित्त मर जाता है और कब्ज हो जाता है।

(४) खट्टी जाति के फल जैसे नींबू, टमाटर, आँवला आदि का सेवन आँतों को उत्तेजित करता है; सवेरे खाली पेट ये अधिक उपयोगी होते हैं। नींबू के रस में रात भर भीगी किशमिश बासी मुंह गरम पानी के साथ खाने से पुराना कब्ज दूर होता है।

(५) रेचक पदार्थ जैसे चना, गेहूँ का चोकर, खूबानी, किशमिश, मुनक्का, इञ्जीर तथा पेट में वायु पैदा करने वाले पदार्थ जैसे गुड़, शहद, पालक, प्याज, पौंड़े की गंडेरी मल को नीचे लाते हैं। दस्तावर औषधियों से बचना चाहिये क्योंकि ये आँतों को और निर्बल कर देती हैं। इनसे पहले तो पेट साफ हो जाता है परन्तु आगे चलकर आँतों की दशा और बिगड़ जाती है।

आंवला और बेल समय के उत्तम क़ब्ज नाशक फल हैं। यह दोनों फल सुखा कर भी रखे जा सकते हैं। आम, अमरुद, पपीता कब्ज नाशक होते हैं।

रोगों में पथ्य-कुपथ्य

रोगों में पथ्य-कुपथ्य चिकित्सक ही निश्चित कर सकता है और उसकी अक्षरशः पाबन्दी प्रत्येक रोगी का प्रथम कर्तव्य भी है। परन्तु चिकित्सक के सहयोग में निम्नलिखित जानकारियाँ उपयोगी सिद्ध होंगी।

ज्वर में आहार—ज्वर बहुधा थकान, चोट, फोड़ा आदि विकार, पाचन शक्ति की खराबी, तथा संक्रामक कीटाणुओं के कारण आता है। ज्वर में गरमी बढ़ जाने का अर्थ है कि रक्त में औषदीकरण बढ़ जाता है, रक्त का दौरा तेज हो जाता है, रक्त अम्ल हो जाता है, स्वांस की गति बढ़ जाती है और शरीर के कोषाणु टूट टूट कर जलने लगते हैं। इस कारण ज्वर, पाचन-शक्ति को उत्तेजित और कमजोर और सारे शरीर को दुर्बल बना देता है। वास्तव में ज्वर रक्त को विकार से शुद्ध करने की प्रकृतिक क्रिया है। इसलिये ज्वर में निम्नलिखित बातों पर ध्यान रखना चाहिये।

(१) ज्वर में शरीर को पूरा आराम देना चाहिये क्योंकि ज्वर की हालत में रक्त में तेजी और गर्मी आजाने के कारण शक्ति अधिक व्यय होती है। इधर भोजन कम हो जाता है। अतः शारीरिक थकान से बचकर जितनी भी शक्ति बचाई जा सके अच्छा है।

(२) भोजन बिल्कुल बन्द कर दिया जाना चाहिये और जल काफी दिया जाना चाहिये। जितना ही जल अधिक दिया जायगा

उतना ही शरीर विकार मूत्र या पसीने द्वारा बाहर निकलेगा, अम्लता कम होगी और तापमान भी कम होगा। फलों के रस ज्वर की हालत में दिये जाते हैं। यह क्षार प्रधान होने के कारण उपयोगी होते हैं। परन्तु फल मीठे हों। खट्टे से खांसी का डर रोगी को रहता है। ज्वर में बहुधा दूध साबुदना खिलाया जाता है। परन्तु यह ज्वर की अवधि बढ़ा देता है। इस से डरना नहीं चाहिये कि लंघन से रोगी कमजोर हो जाता है। लंघन से रक्त विकार शीघ्र जल जाता है और रोगी जल्दी चंगा हो कर अपना पुराना स्वास्थ्य पा लेता है। हम देखते हैं कि रोगी होने पर पशु तुरन्त खाना छोड़ देते हैं। हमें रोग में तुरन्त लंघन की आवश्यकता पशुओं से सीखना चाहिये।

मोती झरा में आँतों में दाने पड़ जाते हैं और आँतें कुछ पचा नहीं सकतीं और दस्त आने लगते हैं। इस लिये लंघन इस रोग की एक औषधि है। परन्तु इस में विषैले तत्व रक्त में आ जाते है और रक्त को अम्ल और शरीर को क्षीण किया करते हैं, इस लिये फलों का रस दिया जा सकता है, जैसे मीठे अनार, मुसम्मी, मीठे नींबू, गरी का पानी दिये जा सकते हैं। पतला जव का पानी भी दिया जाता है। दूध इस रोग में हितकर नही होता। रस थोड़ा थोड़ा करके बार बार दिया जाना चाहिये एक बार में ज्यादा नहीं। पानी जितना अधिक दिया जा सके दिया जाय। इस से अन्दर का विष निकल जाता है और रोग बिगड़ता नहीं। परन्तु पानी पकाया देना चाहिये।

ज्वर छूटने के बाद पथ्य देने में भी बड़ी सावधानी रहनी चाहिये। काफी समय के बाद अन्न दिया जाना चाहिये नहीं तो रोग लौट आता है।

इस रोग से शरीर इतना क्षीण हो जाता है कि इस के बाद खाने-पीने में शीघ्रता या कमी रही तो रोगी के शरीर पर स्थाई रूप से बुरा प्रभाव पड़ जाने की सम्भावना रहती है।

पित्त के उभार में—अक्सर लोगों को पित्त की अधिकता के कारण मतली और उल्टी की शिकायत हो जाती है। इसका कारण यह है—अधिक प्रोटीन और वसा और कम जल और क्षार के उपयोग से आमाशय और आँतों की भीतरी झिल्ली कुछ ऐसी कोमल हो जाती है कि किसी भी पदार्थ का स्पर्श सह नहीं सकती। इसके अतिरिक्त पित्ताशय की नली भी सूजकर पतली हो जाती है। अतः पित्त नीचे आँतों की ओर नहीं जा पाता। ऐसी अवस्था में किसी भी पदार्थ के आमाशय में जाते ही वहाँ उत्तेजना पैदा होती है और पित्त ऊपर की ओर आजाता है। पित्त के नीचे न जाने से मतली और उल्टी आने लगती है। यह दशा कुछ समय तक रहने से पित्त रक्त में प्रवेश कर जाता है और शरीर पीला हो जाता है। इसी को कमल भी कहते हैं। पित्त विकार रोकने के लिये निम्नलिखित उपचार करने चाहियें।

(१) अनाज, मांस, वसा तथा अन्य चिकने और गरिष्ट पदार्थों का उपयोग बन्द कर दिया जाय। मक्खन निकाला दूध लिया जा सकता है। घी, तेल, मसाले बिल्कुल वर्जित हैं।

(२) फलों और शाकों का उपयोग बढ़ा दिया जाय, विशेष कर नींबू का।

(३) जल पर्याप्त मात्रा में पिया जाय और आंतें धो भी दी जायँ।

आँव के दस्तों में—(१) एनिमा द्वारा आतें धो दी जायँ। ८-१० दिन तक प्रति दिन एनिमा लेने से स्थाई लाभ होता है।

(२) २४ घंटे का उपवास फिर २-३ दिन तक फल का रस, इसके बाद मट्ठा या पानी मिला दूध और केले का आटा पथ्य होंगे। साबूदाना, आरारूट भी दिये जा सकते हैं। रोगी को पानी काफी दिया जाना चाहिये। तरकारी और अनाज देने में शीघ्रता न करना चाहिये।

(३) शर्करा का उपयोग बहुत कम कर देना चाहिये। यह आमाशय और आँतों की झिल्ली को उत्तेजित करती है और वायु भी पैदा करती है। खाली पेट में ऐसे पदार्थ और भी अधिक हानि पहुँचाते हैं।

(४) पुराने रोग में अधिकांश में दूध, मठा, फल और शाक तरकारी का भोजन उत्तम होगा।

(५) नये या उग्र अवस्था में खाने में कोई भी कड़ी या फोक प्रधान पदार्थ न खाना चाहिये क्योंकि आँव आँतों में रोग के कीटाणुओं द्वारा खराश के कारण बनती है। यदि कड़ी चीज गई तो उन में रगड़ पैदा करती और रोग बढ़ा देती है। दस्त या

आंत्र में साग आदि बोझीली चीजें भी बन्द कर देना चाहिये। केवल दूध, दही, मांड़ी फल के रस, साबूदाना या गला चावल दिया जाना चाहिये।

मन्दाग्नि—यह रोग बहुधा खान-पान के कुसंयम अर्थात् भूख के समय भोजन न करने, भूख मर जाने पर भर पेट भोजन करने तथा कुपथ्य भोजन करने से होता है। भोजन के बाद तुरन्त परिश्रम करने, आँतों की शक्ति पेट की आवश्यकता के समय भोजन न पाने और कुसमय लाद दिये जाने से क्षीण हो जाती हैं और पाचन बिगड़ जाता है। कुछ समय तक ऐसा होने से पाचन स्थाई रूप से कमजोर हो जाता है।

पहले यह बतलाया जा चुका है कि पेट में प्रोटीन देर में पचता है और अधपचा देर तक रहने से सड़ता और विकार उत्पन्न करता है। अतः दुर्बल पाचन वालों को प्रोटीन कम से कम मात्रा में खाना चाहिये। जो खाये जाये वह उत्तम प्रकार के हों और ऐसे रूप में हों जिसके पचने में देर न लगे और आमाशय को शक्ति से अधिक परिश्रम करने की आवश्यकता न हो। शरीर की शेष आवश्यकता कर्बोज और वसा से पूरी की जाय। इनमें भी वसा देरपच है। अतः कर्बोज का उपयोग प्रधान रहे। परन्तु कर्बोज के लिये विटामिन बी की आवश्यकता है। इस लिये वह भी काफी मात्रा में हो। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित सावधानियाँ भी बरतनी चाहिये।

(१) दांत साफ़ रहें। खाने के पहले और पीछे विशेष कर साफ़ कर लिये जायं।

(२) भोजन धीरे धीरे खूब चबा कर किया जाय और पूरी मात्रा से कुछ कम ही खाया जाय। रात का भोजन सोने के कम से कम ३ घन्टे पहले खाया जाय। सूर्यास्त के पहले खा लेने का नियम हितकर होगा। भोजन के समय अधिक जल कदापि न पिया जाय और न भोजन के ग्रास पानी से उतारे जाँय।

(३) भोजन बँधे समय पर किया जाय। दो समयों के बीच में अवधि इतनी हो कि भोजन इस बीच में भली प्रकार पच जाय। परन्तु बिना भूख समय पर भी न खाना चाहिये।

(४) बहुत गरम भोजन, गरिष्ठ भोजन, बासी भोजन, और दोबारा पकाये भोजनों से बचना चाहिये।

भोजन सादा होना चाहिये। मट्ठा, दूध, शाक-भाजी की मात्रा बढ़ाकर अनाज, मांस और घी तेल की मात्रा कम कर देना चाहिये। परन्तु कड़ाही का पकाया दूध गरिष्ठ होता है। अनाजों में गेहूँ का चोकरदार आटा या दलिया या जव अधिक उपयोगी होंगे। दाल हानिकारक होती है अतः जितनी ही कम खाई जाय अच्छा होगा। अधिक मांस और घी तेल के पकाये पदार्थों से बिल्कुल ही बचना अच्छा होगा।

(५) चाय, मसाला, मिठाई, गरीदार मेवे, अधिक शर्करा से बचना चाहिये। पक्के फल, विशेष कर खट्टे जैसे टमाटर, नींबू, सन्तरा, सेब आदि का उपयोग लाभदायक होगा क्योंकि खटास विशेष कर इन फलों की आँतों को उत्तेजित करती है जिससे पाचन ठीक होता है। पपीता कच्चा और पक्का—बड़ा गुणकारी फल है। तीसरे पहर केवल फल खाना अधिक हितकर है।

(६) दो भोजनों के बीच में पानी काफ़ी पीना चाहिये। दिन रात में कम से कम ३ सेर पानी पीना चाहिये। भोजन के आध घंटे पहिले एक गिलास गरम पानी पीने से भूख खुलती है। बरफ़ का अधिक उपयोग हानिकारक है। एक बार में पाव, सवा पाव से अधिक जल न पीना चाहिये।

(७) किसी भी शारीरिक परिश्रम करने या घाम और आंच में रहने के बाद तुरन्त भोजन पर न बैठना चाहिये और भोजन के तुरन्त बाद घाम, आंच और शारीरिक या मस्तिष्क के परिश्रम से बचना चाहिये।

(८) व्रत के तथा भूख मरने के बाद तुरन्त भर पेट भोजन न करना चाहिये। पहले कोइ हल्की चीज़ जैसे दूध, मट्ठा, फल बहुत थोड़ी मात्रा में खाना चाहिये और आध घंटा पौन घंटा बाद जब भूख लगे तब भोजन करना चाहिये। तुरन्त भोजन करने से पेट बिगड़ जाता है और पाचन-शक्ति दुर्बल हो जाती है।

(९) मन्दाग्नि के रोगी विटामिन बी और बी काम्पलेक्स बाहर से खा सकते हैं। यह खमीर में बहुत होते हैं।

आमातिसार में—मेकेरीसन लिखते हैं कि आँव का रोग उन भारत-निवासियों में अधिक होता है जो मैदे की रोटी, सफ़ेद चावल, अधिक पकी हुई तरकारियाँ, अधिक घी, अधिक चीनी, अधिक मांस, नक़ली खाने और ज्यादा पकाया हुआ दूध खाते हैं। अनुभव से मालूम हुआ है कि यह रोग बुद्धिमत्ता पूर्ण चुने

हुये भोजन से दबाया जा सकता है। आँव के दस्त, साधारण दस्त, और विकृत भूख ऐसे आहार के सामने भाग जाते हैं।

यकृत रोग में—इस रोग में वसा से बचना चाहिये क्योंकि यकृत का काम मुख्यत: वसा को पचाना है। अक्सर आहार में वसा ही की अधिकता से यकृत बिगड़ता है। इस लिये घी, तेल, दूध तथा अन्य ऐसे पदार्थ बन्द कर देना चाहिये। दूध के स्थान पर मक्खन निकाला दूध देना चाहिये। मकोय की पत्ती का साग बड़ा उपयोगी होता है।

बादी की मोटाई में—मनुष्य अपने आहार के कर्बोज़ और वसा से शक्ति पाता है और शारीरिक परिश्रम द्वारा उसे व्यय करता है। अब यदि वह अधिक खाना खाकर अधिक शक्ति प्राप्त करता है परन्तु कम काम करके कम शक्ति खर्च करता है तो बचा हुआ कर्बोज चर्बी के रूप में शरीर में तह दर तह जम जाता है। यह दशा सब के साथ नहीं हो सकती क्योंकि एक तो मोटाई माता-पिता से प्राप्त प्रकृति पर अवलम्बित है और दूसरे बहुधा कम परिश्रम के परिणाम-स्वरूप पाचन-शक्ति दुर्बल हो जाती है जो आवश्यकता से अधिक आहार के मार्ग में दैवी बाधा है।

शरीर में मोटापन आते देख यह समझ लेना चाहिये कि आहार में तापवर्धक पदार्थ अर्थात् वसा और शर्करा पदार्थ आवश्यकता से अधिक हैं। अतः भोजन से उन्हें तुरन्त काट देना चाहिये या अगर खाने की मात्रा उतनी ही रखना है तो मेहनत बढ़ा देना चाहिये। मेहनत करने से भूख बढ़ेगी परन्तु उसे मारना चाहिये

जिसमें शरीर ही का बादी भाग जले। अगर यह रोग आगया हो तो (१) यथा सम्भव केवल प्रोटीन पर रहना चाहिये। घी, तेल, मीठा, मांडी आदि, तापोत्पादक पदार्थ आहार से बिल्कुल कम कर देना चाहिये। (२) खाने की मात्रा घटा देना चाहिये। कोई हर्ज नहीं यदि दिन में एक ही बार खाया जाय या आधे-आधे पेट दो बार खाया जाय। और (३) सप्ताह में दो एक बार व्रत कर डालना लाभदायक होगा। भूख मारने और कम खाने में कोई चिन्ता की बात नहीं है। जब शरीर साधारण हो जाय तो कुछ दिन तक उसी आहार पर गुजर करके धीरे-धीरे मामूली भोजन कर देना चाहिये। परन्तु आगे मेहनत और भोजन का अनुपात ठीक रखना चाहिये।

मलाई निकाला दूध और दही, चना, गेहूं का चोकर, ताजे फल और आलू, सिवाय अरुई तथा अन्य बादी तरकारियों के अतिरिक्त अन्य समस्त तरकारियाँ विशेष कर शाक खाना चाहिये। शाकों का इस्तेमाल रोज और काफी मात्रा में रखना चाहिये। क्योंकि एक तो इनमें सबसे कम कर्बोज होता है और दूसरे ये शरीर में उत्तम प्रोटीन लवण और विटामिनों की कमी नहीं आने देते।

मधुमेह में—यह उन अमीरों का रोग है जो चर्बी दार मांस, मछली तथा अन्य गरिष्ठ भोजन अधिक करते हैं परन्तु विटामिन बी और सी की कमी, आराम तलबी, दिमागी काम की अधिकता और शरीर में घाम न लगने के कारण उनको पेट में पचा और रक्त में जला नहीं सकते। इन सब का परिणाम यह होता है कि

क्लोम ग्रन्थि कम रस निकालती है, और आहार का शर्करा तथा वसा अनपचा ही रक्त में जाता है। इस प्रकार जब रक्त शर्करा से लद जाता है तब जितना कर्बोज खाया जाता है अनपचे शर्करा के रूप में मूत्र द्वारा बाहर निकला करता है। इस लिये इस रोग में सर्वप्रथम आवश्यकता इस बात की है कि भोजन से कर्बोज और चिकनाई वाले पदार्थ निकाल दिये जायँ और केवल प्रोटीन प्रधान चीजों का उपयोग किया जाय।

पुराने रोग में बहुधा पहले एक या दो दिन का अनशन करके शरीर का रहा-सहा कर्बोज जला देते हैं। परन्तु इस बीच में भी सोडे (खाने वाले) का उपयोग जारी रखते हैं। उसके बाद प्रोटीन प्रधान चीजों का सेवन आरम्भ किया जाता है।

अनाजों में गेहूँ की सूजी, जौ तथा दाल के अनाज खाना चाहिये। मांसाहारियों को मांस हितकर है। चावल बिल्कुल छोड़ देना चाहिये।

तरकारियों में आलू, अरुई और शकरकंद में सब से अधिक कर्बोज होता है। ककड़ी, खीरा, टमाटर, लौकी आदि में कम कर्बोज होता है। इनसे भी कम हरे शाकों में होता है। शाक क्षार-प्रधान होने के कारण और भी उपयोगी होते हैं। सेम में इनसुलीन नामी तत्व होता है जो मधुमेह की औषधि है। इस लिये यह काफी खाई जा सकती है।

फलों में भी मीठे फलों और मेवों का उपयोग किया जा सकता है। इनकी शर्करा मुंह ही में पच जाती है।

इस रोग के रोगी को अपने आहार में विटामिन और क्षार प्रधान चीजें काफ़ी रखना चाहिये। घास लेना, घास में रक्खी चीजें खाना और कबीज का उपयोग कम से कम रखना भी अति आवश्यक है।

गठिया में—यह अमीरों का रोग है। कुछ खाद्य पदार्थों में यूरिक अम्ल बहुत होता है। जब वह रक्त में रुक जाता है तो, वह हड्डियों के जोड़ों में इकट्ठा होकर गठिया पैदा कर देता है। अतः इससे बचने के दो उपाय हैं। एक यह कि शरीर में जावे ही कम और दूसरे जो जावे भी वह रक्त में जल जाय या बाहर निकल जाय, रुके नहीं।

यह रोग बहुधा पाचन विकार से शुरू होता है। खट्टी डिकार का आना, पेट में वायु भरना, क़ब्ज़ रहना, मूत्र का रंग अति पीला हो जाना बहुधा इस रोग के सूचक होते हैं। वृद्धावस्था में आहार के विषैले भाग जो साधारणतया बाहर निकल जाते हैं रक्त में ही रह जाते हैं। अब यदि रक्त में औषदीकरण की कमी हुई जो जल कम पीने, क्षार कम खाने, घास कम खाने और परिश्रम कम करने से होती है तो रक्त का भी यूरिक एसिड नहीं जल पता। ऐसी दशा में गुर्दे को भी रोगी कर देता है। अम्ल पित्त के कारण शरीर में पानी बढ़ जाता है और यूरिक एसिड निकलने में और कठिनाई होती है। अतः प्रथम उपाय इस रोग से मुक्त होने का उपरोक्त त्रुटियों को दूर करना है। परन्तु केवल जल अधिक पीने से यूरिक एसिड घटने की जगह बढ़ता है जब तक क्षार भी साथ साथ न खाये जाय।

यह पदार्थ मांस में बहुत होता है, इससे कम मटर, सेम, मसूर, उड़द आदि दालों से तथा प्याज, पालक, चाय, क़हवा आदि में होता है। शराब इसके रक्त से निकलने में बाधा डालती है इस लिये उसे बिलकुल ही छोड़ देना चाहिये।

दूध, शाक (सिवाय असपरेगस और पालक के), मेवे, फल, अनाज (सिवाय दाल के), तरकारी, घी, तेल और अण्डे में यह नहीं होता। गठिया वाले के लिये लहसुन, ककड़ी, चुकन्दर और गाजर विशेष कर उपयोगी हैं। इनके रस पीने से पेशाब साफ होता है और रोग को बड़ा लाभ होता।

गुर्दे के रोगों में—अनपचे प्रोटीन से जो विषैले पदार्थ बनते हैं वे मुख्यतः गुर्दे को हानि पहुँचाते हैं। इसलिये अधिक और ख़राब प्रोटीन से बचना चाहिये।

गुर्दे के रोगों में मांस, दाल, गरी दार मेवे, मदिरा, मसाला, भूने और गरिष्ठ भोजन वर्जित हैं। दूध, शाक, तरकारी, फल, अनाज लाभदायक होते हैं। जल का उपयोग बहुत अधिक न करना चाहिये। इसकी जगह जव के पानी तथा अन्य ऐसे पतले पदार्थों का इस्तेमाल बढ़ाना चाहिये, गरम, खुश्क तथा अन्य गरिष्ठ पदार्थों और शारीरिक परिश्रम से बचना चाहिये। नमक कम खाना चाहिये। सूजन आगई हो तो नमक बिलकुल बन्द कर देना चाहिये।

भोजन के पश्चात् पेशाब करने से यूरिक एसिड तथा मूत्र के अन्य विषैले अंश अधिक मात्रा में निकल जाते हैं।

रक्तचाप में अहार—रक्त चाप का कारण यह है कि रक्त-केशिकाओं की भीतर की झिल्ली कुछ मोटी हो जाती है। इस लिये रक्त का प्रवाह अवरुद्ध हो जाता है और रक्त चाप बढ़ जाता है। अत: उत्तेजक पदार्थ न खाना, मात्रा से कम खाना और शाक-सब्जी आदि पदार्थ अधिक खाना पथ्य है। रोगी को मांस, अंडा, दाल, गरीदार मेवे, मसाले, गरिष्ट पकवान, चाय, पान, तम्बाकू आदि पदार्थों को बिल्कुल छोड़ देना चाहिये और अधिकांश फल, साग, तरकारी, दूध, मट्ठा तथा अन्न का हलका भोजन करना चाहिये। आधे आधे पेट या ऐसा ही हलका भोजन और सायंकाल का भोजन सूर्यास्त के पहले उत्तम है। कभी कभी का उपवास गुणकारी होगा।

प्रति औंस खाद्य पदार्थों का संगठन

[+++, +++, क्रमानुसार बहुत ही ज्यादा, +++ = बहुत, ++ = काफी, + कुछ, ० = कुछ नहीं, २८·४ग्राम = १ औंस = ½ छटाँक ।]

खाद्य पदार्थ	प्रोटीन ग्राम में	वसा ग्राम में	कर्बोज ग्राम में	केलारी प्रतिऔंस	विटामिन १	विटामिन २	विटामिन ३	विटामिन ४	लवण १०० ग्राम में चूना	स्फुर	लोहा
गाय का दूध	०·६४	१·०२	१ ३६	१८	+++	++	+	+	·१२	·०६	·२
स्त्री का दूध	०·४२	१·५०	०·७५	१८	+++	+	+	...	·०२	·०१	·२
क्रीम(कच्चे दूध की मलाई)	०·७०	५·२४	१·२७	५५	+++	++	+	+	...	...	...
पनीर	७·३५	८·८८	०·५०	१११	+++	बहुत कम	...	...	·७६	·५२	२·१
मट्ठा	०·८५	०·१४	१·३६	१०	+	+	+	...	·०३	·०३	·८
मक्खन निकाला दूध	०·६६	०·०८	१·४४	१०	+	+	+	...	·१२	·०६	·२
दही	१·४०	१·००	०·८०	१८	++	+	+	...	·१२	·०६	·३
खोवा (भैंस का)	४·१४	८·८६	५८२	१२०	०	०	०	...	·६५	·४२	५·८

बकरी का दूध	१·२१	१·१३	१·२१	२०	+++	+	+	+	·१७	·१२	·३
भैंस का दूध	१·३५	२·१८	१·२४	३०	+++	+	+	+	·२१	·१३	·२
मांस, अंडा											
भेड़ का मांस	५·६७	१·६८	...	४२	बहुत कम	+	कम	+	·१५	·१५	२·५
बकरे का मांस	७·२०	०·७५	...	३६	०	+	कम	०	,,	,,	,,
सुअर का मांस	६·०५	३·१४	...	५३	०	+	०	...	·०३	·२	२·३
Bacon रक्खा हुआ सुअर का गोश्त	५·००	१५·००	...	१५५	०	...	...	...	...	...	...
यकृत (जिगर)	६·११	१·७०	०·७६	४३	+++	+++	+	+	·०१	·३८	६·३
वृक्क (गुर्दा)	४·५४	१·३६	०·०५	३१	++	++	...	...	...	...	...
मस्तिष्क (दिमाग)	२·६०	२·७७	...	३७	+	++	...	...	...	...	...
जिह्वा (जबान)	४·४१	५·४३	......	६७	०	+	...	...	...	...	...
रोहू मछली	५·३२	३·७०	......	५५	+++	++	...	...	·२०	·१६	·६
बिना चरबी की मछली	५·१५	०·२०	......	२२	......	+	...	...	...	...	...

खाद्य पदार्थ	प्रोटीन ग्राम में	वसा ग्राम में	कर्बोज ग्राम में	केलारी प्रतिऔंस	विटामिन १	विटामिन २	विटामिन ३	विटामिन ४	लवण १०० ग्राम में चूना	लवण १०० ग्राम में स्फुर	लवण १०० ग्राम में लोहा
झींगा मछली	५·६०	·७८	...	२४	कुछ	कुछ	+	...	·०६	·२४	.८
मुर्ग	६·७४	०·३८		३०	+	+	...	...			
बतख	५·८०	२·६४		५०	+	+	...	...			
कबूतर	६·२५	१·८७	...	४२	+	+	...	...			
अंडा	३·७६	२·६७	...	४२	+++	++	..	+	·०६	·२२	२·१
पशु-वसा											
भेड़ की चर्बी	०·३४	२६·४०	...	२३६	++	......	...	...			
सुअर की चर्बी	......	२६·८०	...	२४१	०, या बहुत कम	... ...	...	.			
मक्खन, घी	......	२३·१०	...	२०८	+++	......	...	+			
मछली का तेल	......	२८·००	...	२५२	+++	बहुत कम	..	+			
बनस्पति-तैल											
लाल ताड़ का तेल	......	२८·००	..	२५६	+++	......	...	...			

नारियल का तेल	......	२८·००	......	२५२	बहुत कम	०	०	०			
तिली का तेल	......	२८·००	......	२५२	बहुत कम	०	०	०			
अलसी ,,	......	२८.००	......	२५२	बहुत कम	०	०	.			
मूँगफली ,,	......	२८·००	......	२५२	बहुत कम	०	०	०			
जैतून ,,	......	२८·००	......	२५२	बहुत कम	०	०	..			
बिनौला ,,	......	२८·००	......	२५२	बहुत कम	०	०	...			
सरसों ,,	......	२८·००	......	२५२	०	०	०	...			
कोकोजेम	......	२८·००	......	२५२	०	०	०	...			
शर्करा, श्वेतसार											
सफेद चीनी	......	.....	२८·३०	११३	०	०	०	...			
लाल शक्कर	......	......	२६·८६	१०८	०	०	०				
गुड़	०·०८	....	२५·००	१०६	०	बहुत कम	०	...	४·०	·०८	११·४
शहद (मधु)	०·१४	....	२०·७३	६२	......	.....	कुछ	...	......	.	......

खाद्य पदार्थ	प्रोटीन	वसा	कर्बोज	केलारी	विटामिन				लवण १००ग्राम में		
	ग्राम में	ग्राम में	ग्राम में	प्रतिऔंस	१	२	३	४	चूना	फ़ुर	लोहा
गराजा ताड़ी (नीरा)	०.०५	०.०१	४.०६	१००	१०	०	०	...	·१५	·०१	·३
साबूदाना	२·१८	०·०४	२२·०	६७	०	०		...	·०२	·०१	१·३
अरारोट	·०५	०२	२३·६०	६५	...	...	+	...	·०१	·०२	१·०
गन्ना का रस	०·४२	०.१६	६·२०	२८	......	+		...	·०१	·०१	१·१
अनाज											
गेहूँ का चोकरदार आटा	३·६०	०·५४	२०·३५	१००	+	++	०		·०४	३२	·७३
मैदा	३·१४	०·३७	१७·३०	६६	०	बहुत कम	०	...	·०२	·०६	१·०
मीजरी चोकर का आटा	३·२०	०·५८	१७·४०	८८	०	+++	०	...			
बिनाछरा (कनेदार) चावल	२·३०	०·०८५	२२·३०	६६	बहुत कम	+	०	...	·०१	·२१	३·६
धुला हुआ चावल	१·७२	०·१५	३६·३४	६६	०	०	०	...	·०१	·१६	१·६
छरा (कनानिकांला) चावल	१·७६	०·१३	२६·०६	६८	०	बहुत कम	०	...	·०५	३५	८·८
बजरा	२·७८	०·४६	२३·३५	१०६	+;++	++					
जुआर	२·६०	१·१७	१६·७०	१०१	+	++	०	...	·०३	·२८	६·२
जौ	२·६७	०·६२	२०·६०	१००	+	++	०	...	०३	·२३	३·७
मकरा (मेडुवा)	२·०१	·३६	२१·६०	६८	+	+		...	·३३	·२७	५·४
कूटू	२·६	·६८	१८·६०	६८	...	++	...	...	·०७	·३	३·२
मक्का	२·०३	०४·८	२०·८०	६६	++	++	०	...			

कूटू	९.६	.६८	१८.९०	९८	...	++	...	...	.०७	.३	३.२
मक्का	२.०३	०४.८	२०.८०	९६	++	++	०	...			
मैदा की पाव रोटी	२.१०	० ३३	१४.८०	७०	०	+	०	...			
सूजी	४.२०	०.६८	१४.२०	८०	+	+++	०	...			
दाल, मटर इत्यादि											
ताजा चौड़ा लोबिया	२.६६	०.११	६.४५	१८	+	++	++	...			
ताजा फ्रांसीसी लोबिया	० ४५	० ०३	१.३६	२८	+	++	++				
सूखी मटर	१.८५	०.१७	४.७५	८९	+	++	०	...	.०७	.३०	४.४
मसूर	७.१	०.१९	१६.९५	९९	...	++	..	...	.१३	.२५	२.०
दाल अरहर	६.५०	० ९९	१६.२०	९५	+	++	०	...	.१४	.२६	८.८
चना छिलकोर	५ ७०	१.३०	१७.३८	१०३	+	...	०	...	.१९	.२४	९.८
चनाभुना (बिनाछिलका)	६.६९	१.२०	१६.७२	११८	...	... ..	...	...	.०७	.३१	८.९
भटवांस	११.७२	४ ९०	६ ८४	१०६	...	++	...	...	.२१	.६०	९.९
उर्द बिना छिलका	६.८१	०.३९	१७.०४	९९	+	......	०	...	.२०	.३७	९.८
खड़ी मूँग	६.८१	०.३८	१६.०७	९५	...	......	...	...	.१४	.२८	८.४
गरीदार मेवे											
बदाम	५ २६	१५.९६	४.३०	१८२	बहुत कम	++	०	...	.२३	.४९	३.५
पिस्ता	५.६२	१५.१९	४.६०	१७८	++	+	०	...	.१४	.४३	१३.७
तिल	५.१९	१२.३०	७.१५	१६०	+	+	०	...	.१४५	.५७	१०.५

खाद्य पदार्थ	प्रोटीन ग्राम में	वसा ग्राम में	कर्बोज ग्राम में	केलारी प्रतिऔंस	विटामिन १	विटामिन २	विटामिन ३	विटामिन ४	लवण १०० ग्राम में चूना	स्फुर	लोहा
गोला गरी	१·६१	१४ ३१	७ ६०	१६७	+	+	०	...	.०१	२४	.१७
मूँगफली कच्ची	७·३०	१०·६२	६ ६०	१५५	बहुत कम	+	०	...	०५	३६	१·६
अखरोट	३ ८५	१६ ६२	३ ६६	२२१	बहुत कम	+	०	...	·१	·३८	१ ८
अन्य गरीदार-मेवे	५·००	१६·५०	३·६०	१८३	बहुत कम	+	०	...			
	६·४०	६·५०	७·६०	१४२	+++	+	०	...	·१७	३७	२·७
साग-तरकारियाँ											
आलू	०·७०	०·०४	८·१५	३६	बहुत कम	+	+++	...	·०१	·०३	·७
चुकंदर	०·३४	०·०३	१·७५	६	बहुत कम	+	+	...	·२	·०६	१·०
अजवाइनकीपत्ती सलेटी	०·१७	०·०३	१·०७	५	... ...	+++	++	...	·२३	१४	६·३
प्याज	०·३७	०·०३	३·०६	१८	बहुत कम	++	+	...	१८	०५	·७
लहसुन	१·६२	०·०३	७·६०	४०	०	+	+++	...	·०३	·३१	·११
	०·२५	०·०३	२·२६	१०	+++	++	+++	...	·०८	·०३	·३५
सैंजन	०·७१	०·०३	१·०१	७	+++	+	++	...	·०३	·११	·५३
हरा मिर्चा	०·८२	०.१७	१·७३	१२	++	+	++	...	·०३	०८	१·८
चने का साग	२·३३	० ०१	७·५६	४१	+++	++	+++	..	·३४	·१२	२३·८

हरा मिर्चा	०·८२	०.१७	१·७३	१२	++	+	++	...	·०३	०८	१·८
चने का साग	२·३३	० ०१	७·५६	४१	+++	++	+++	..	·३४	·१२	२३·८
मरसा लाल (चौलाई)	१ ३६	०·१०	१·६१	१३	+++	++	+++	...	·५०	·१०	२१·४
चौलाई	·८५	० ०८	२·३	१३	+++	++	+++	...	·८०	·०५	२२·६
मूली	०·२८	०·०३	० ६३	६	कम	+	+	...	·०५	·०३	·४
शलजम	०·३४	०·०३	१·२५	१०	कम	++	+	...	·०३	·०४	·४
अरवी	१ २६	०·०२	६.२७	२६	कुछ	कुछ	कुछ	...	·०४	·१४	२·१
वथुआ	०·३८	० ११	१·५	११	+++	++	+	...	·१५	·०८	४·२
करमकल्ला	० ३६	०·०३	१·२७	६	+++	++	+++	.	·०३	·०५	·८
लेट्टूस (सलाद)	० ३१	०·०६	० ५४	७	+++	++	+++	...	·०५	·०३	२·४
पालक	०·५१	०·०६	०·८२	६	+++	++	+++	...	·०६	·०१	५·०
टमाटर	०·२०	० ०३	१·२७	६	++	+	+++	...	·०२	·०४	२·४
सिंघाड़ा	१ २३	०·०८	६·७८	३३	......	....	+++	...	·०२	·१५	·०८
खीरा, ककड़ी	०·१७	०.०२	०·५७	३	बहुतकम	+	+	...	·०१	·०३	१·५
कुम्हड़ा	०·२८	०·०३	१·४७	७	......	+	+	...	·०१	·०३	०·७
बैंगन	०·३४	०·०६	१·४४	८	......	+	++	...	·०२	·०६	१·३
फूल गोभी	०·५४	०.०६	१·६७	६	+	++	++	...	·०३	·०६	१·३
भिंडी	०·५७	०·३३	१·७०	१२	+	+	+	...	·०६	·०८	१·५

खाद्य पदार्थ	प्रोटीन ग्राम में	वसा ग्राम में	कर्बोज ग्राम में	केलारी प्रति औंस	विटामिन १	विटामिन २	विटामिन ३	विटामिन ४	लवण १००ग्राम में चूना	लवण स्फुर	लवण लोहा
गाँठ गोभी	०.३१	० १६	१·६७	६	बहुतकम	+	+	...	·०२	·०४	·१
करेला	.८२	०·२	२ ७८	१७	+	+	+	...	०·०५	०·१४	६·४
ताजे फल											
सेब	०·०६	०·०६	३·५४	१५	......	+	+	...	·०१	०२	१·७
केला	०·४५	०·०३	१०·२६	४३	बहुत कम	+	+	...	·०१	·०५	०·४
अंगूर	०·१७	०·०३	३·६३	१७	....	+	+++	...	·०३	·०३	०·२
नीबू	०·१४	०·१४	० ८८	१५	......	+	+++	...	·०६	·०२	०·३
नारंगी शंतरा	०·२५	० ०३	२ ६६	१२	+	+	+++	...	·०५	·०२	०·१
नाशपाती	०·०६	०·०३	२·२६	१६	......	+	+	...	·०१	·०१	०·७
अनार	०·१८	...	०·१६	१८	......	+	+	...	०१	०७	०·३
आड़ू	०·१६	०·०३	२ ६६	१२	......	...	++	...	०१	·०३	१·७
अनन्नास	० ११	०·०६	२·७५	१२	......	...	++	...	०२	·०१	०·६
तरबूज	०·११	०·०६	१·६०	६	......	...	+	...	०१	·०१	०·२
पपीता	०·१६	...	०·१०	११	+	+	++	...	·०१	०१	०·४
आँवला	·१८	·०२	४	१७	...	...	+++	...	·०५	·०२	१·२
लीची	०·८४	०·०७	१·६०	१२	+	+	++	...	·०१	·०२	·०३

आँवला	·१८	·०२	४	१७	...	...	+ + +	...	·०५	·०२	१·२
लीची	०·८४	०·०७	१·६०	१२	+	+	+ +	...	·०१	·०२	·०३
आम	०·०४	०·२२	५·२०	१३	+ + +		+	...	·०१	·०४	·१०
अमरूद	०·३७	०·२०	२·२७	१६	+	+	+ +	...			
सूखे फल											
मखाना	२·३५	·०२	२१·८४	६६	बहुत कम	..	...		·०२	·०६	१·४
जर्द आलू	१·५६	०·०६	१४·०४	६३	.. ..	...	०	...	·०२	·०२	·५
मुनक्का	०·४८	०·०६	११·८६	५०	.....	+	०	...	·१०	·०८	४·०
खजूर	०·४५	०·०३	१६·७३	८१	......	+	०	.	·०७	·०८	१०·६
अंजीर	०·५६	०·१४	१५·६६	६७	+	+	०	..	·०६	·०३	१·२
आलू बुखारा	०·८५	०·०६	११·४३	५०	......	+	०	...			
किशमिश	०·६२	०·०६	१७·३२	७३	......	+	०	..	·१०	·०८	४·०
इमली (गूदा)	·८८	......	१६·१४	८२	......	+	+	..	·१७	·११	१०·६
अन्य चीजें											
मुरब्बे	०·०६	......	६१·८१	७६	०	०	०	.			
मार्मलेड	०·०६	......	६६·४१	७८	०	०	०	...			
शीरा	०·०६	......	६६·६५	६८	०	०	०	..			

खाद्य पदार्थ	प्रोटीन ग्राम में	वसा ग्राम में	कर्बोज ग्राम में	केलारी प्रति औंस	विटामिन १	विटामिन २	विटामिन ३	विटामिन ४	लवण ग्राम में १०० चूना	लवण ग्राम में १०० स्फुर	लवण ग्राम में १०० लोहा
पान	.८८	.२२	१.७३	१२	+++	...		+	.२३	.०४	५.७
पापड़	५.३३	.०८	१५.३६	८२	+	...		..	.०८	.३०	१७.२
अदरख	.६५	१.२५	३.४६	१६	+	...		+	.०२	.०६	२.६
मेथी	७.४४	१.६४	१२.५२	६५	+	...		०	.१६	.३७	१४.१
जीरा	५.३१	४.२६	१०.३६	१०१	++	...		+	१.०८	.४६	३१.०
धनिया	४.०	४.५७	६.१३	८२	++	...		कुछ	.६३	.३७	१७.६
लौंग	१.४७	२.५२	१३.२	८३	......	...		...	.७४	.१०	४.६
सूखे मिर्चा	४.५१	१.७६	८.६७	७०	++	...		+	.१६	.३७	२.३
काली मिर्च	३.२६	१.६३	१४.०५	८७	......	...		...	.४६	.२०	१६.८

खमीर (सूखी)	११·२	०·१७	११·१०	६१	+	+++	०		·४४	१·५६	४३·७
डिब्बे का दूध	२·४६	२·३५	१५·३१	१२	+	+	०				
अचार (Pickles)	०·३१	०·११	१·१३	७	.....	......	......	...			
टीनों में बन्द शिशुओं के खाने	३·५६	०·६३	२१·५६	१०६	......	......	०	...			
सन्देश	५·४०	६·००	१२·००	१२४	०	०	०	...			
मेथी (पत्ती)	१·३५	·२५	२·७८	१६	+++	++	कुछ	...	·४७	·०५	१६.६
धनिया (पत्ती)	०·६३	·१७	१·८४	१३	+++	....	+++	...	·१४	·०६	१०·०
पुदीना (पत्ती)	१·३६	·१७	२·२७	१६	+++	....	....	...	·२०	·००	१५·६

इंग्लैन्ड के बालक बालिकाओं की आयु.

ऊँचाई और शरीर-भार के आंकड़े ।

	बालक			बालिकायें		
आयु	ऊँचाई		भार	ऊँचाई		भार
वर्ष	फी०	इं०	पौं०	फी०	इं०	पौं०
१	२	५½"	१८½	२	३½	१८
२	२	८½	३२½	२	७	२५½
३	२	११	३४	२	१०	३१½
४	३	१	३७	३	०	३६
५	३	४	४०	३	३	३९
६	३	७	४४½	३	६	४१¾
७	३	१०	४६¾	३	८	४७½
८	३	११	५५	३	१०½	५२
९	४	१¾	६०½	४	०½	५५½
१०	४	३ ५/८	६७ ५/८	४	३	६२
११	४	५½	७२	४	५	६८
१२	४	७	७६ ५/८	४	७½	७६½
१३	४	९	८२½	४	९¾	८७
१४	४	११½	९२	४	११¾	९६ ५/८

भारतवर्ष के लिये एक वर्ष पीछे के आंकड़े अर्थात् ५ वर्ष वाले के लिये ४ वर्ष के आंकड़े लगभग ठीक होंगे ।

उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश

की

आयु, ऊँचाई और शरीर भार के आँकड़े

ऊँचाई	४'-१०"	५'	५'-२"	५'-४"	५'-६"	५'-८"	५'-१०"	६'
आयु	पौं०	पौं०	पौं०	पौं०	पौं०	पौं०	पौं०	पौं०
२०	१०२	१०६	११०½	११५½	१२१	१२८	१३६	१४५
२५	१०५	१०९	११४	११८½	१२४	१३१	१३९	१४९
३०	१०९	११३	११८	१२४	१३०	१३६	१४४	१५४
३५	११२	११६	१२२	१२७	१३३	१४०	१५०	१६०
४०	११६	१२०½	१२६	१३२	१३८	१४६	१५६	१६६
४५	१२०	१२५	१३०	१३६	१४२½	१५०	१५८	१६७
५०	१२१	१२६	१३२	१३८	१४५	१५४	१६४	१७२